जनवरी, 2015

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

महत्वपूर्ण निर्णय

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 [सपठित भारत का संविधान, 1950 का अनुच्छेद 136] – हत्या – उच्चतम न्यायालय की हस्तक्षेप करने की शक्ति – निचले न्यायालयों द्वारा साक्ष्य का त्रुटिपूर्ण मूल्यांकन – अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अनुचित होने या असंगत साक्ष्य के आधार पर निकाले जाने की स्थिति में, उच्चतर न्यायालय को निर्णय में हस्तक्षेप करने की पूर्ण शक्ति होगी ।

आनंद पुजारी बनाम **कर्नाटक राज्य** 72

पृष्ठ संख्या 1 – 159 **[2015] 1 उम. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

डा. संजय सिंह,
सचिव, विधायी विभाग

श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार,
विधि मंत्रालय

प्रो. डा. वैभव गोयल,
सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ
विधि विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल, विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, वि.सा.प्र.

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ला, असलम खान और राकेश उपाध्याय

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 19

वार्षिक : ₹ 225

© 2015 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – जनवरी, 2015 [पृष्ठ संख्या 1 – 159]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

जनवरी, 2015

निर्णय-सूची

पृष्ठ संख्या

आनंद पुजारी **बनाम** कर्नाटक राज्य 72

एस. दिनेश कुमार **बनाम** निरीक्षक और एक अन्य की मार्फत राज्य 154

ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन आफ इंडिया लिमिटेड (मैसर्स) **बनाम** गणेश प्लोएटैक्स लिमिटेड (मैसर्स) 95

नर सिंह **बनाम** हरियाणा राज्य 126

मोफिल खां और अन्य **बनाम** झारखंड राज्य 40

राजेन्द्र कुमार अग्रवाल **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 12

सांगिली **बनाम** तमिलनाडु राज्य 1

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (1986 का 68)

– धारा 21(क)(i) [सपठित सीमा-शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 40, 41, 50, 51 और निर्यात रिपोर्ट (प्ररूप) विनियम, 1976 का विनियम 3 और 4] – विदेश में माल परिवहन करने की संविदा – सेवा में कमी – प्रतिकर का दावा – परिवहन कंपनी-अपीलार्थी को सौंपे गए माल के पांच परेषणों में से चार परेषणों को उसके द्वारा बांग्लादेश सीमा-शुल्क स्टेशन पर परिदत्त किए जाने का अभिवाक् – अपीलार्थी के पक्षकथन का सर्वोत्तम सबूत यह होता कि वह विवादग्रस्त चार परेषणों के परिदत्त किए जाने की बाबत सीमा-शुल्क के उचित अधिकारी द्वारा सम्यक्तः पारित किए गए निर्यात पत्र और विहित प्ररूप में निर्यात रिपोर्ट की प्रतियां पेश करता, जिन्हें पेश करने में वह असफल रहा है, इसलिए राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निपटान आयोग द्वारा मंजूर किए गए प्रत्यर्थी के दावे में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है ।

ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन आफ इंडिया लिमिटेड (मैसर्स) बनाम **गणेश प्लोएटैक्स लिमिटेड (मैसर्स)** 95

– धारा 313 – अभियुक्त की परीक्षा करने की शक्ति – विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषसिद्ध और दंडादिष्ट करने के लिए अवलंब ली गई प्राक्षेपिकी विज्ञानी की राय पर अभियुक्त से प्रश्न न करने से उस पर पड़ने वाले तात्विक प्रतिकूल प्रभाव को ध्यान में रखते हुए दोषसिद्धि और दंडादेश को अपास्त करते हुए मामले को धारा 313 के अधीन कथन अभिलिखित करने के प्रक्रम से पुनःविचारण करने

पृष्ठ संख्या

के लिए प्रतिप्रेषित करना उचित होगा ।

नर सिंह बनाम **हरियाणा राज्य** 126

– धारा 313 और 386 – अभियुक्त की परीक्षा करने की शक्ति – अपराध में आलिप्त करने वाले तात्विक साक्ष्य के बारे में विचारण न्यायालय द्वारा प्रश्न करने में लोप किया जाना – अभियुक्त द्वारा अपील न्यायालय में लोप के कारण अभियुक्त पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव को दर्शित किया जाना – विचारण न्यायालय को पुनःविचारण के लिए मामला प्रतिप्रेषित करने की अपील न्यायालय की शक्ति – जब अभियुक्त द्वारा यह दर्शित किया गया हो कि विचारण न्यायालय द्वारा तात्विक साक्ष्य पर प्रश्न करने में किए गए लोप के कारण उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, तो अपील न्यायालय धारा 313 के अधीन कथन अभिलिखित करने के प्रक्रम से मामले का पुनःविचारण करने के लिए मामले को प्रतिप्रेषित कर सकता है ।

नर सिंह बनाम **हरियाणा राज्य** 126

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27] – हत्या – मृतक का उसके विद्यालय की छात्रा के साथ प्रेम प्रसंग – अपीलार्थी द्वारा मृतक के इस कृत्य पर आपत्ति – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का अभाव – पारिस्थितिक साक्ष्य की शृंखला का पूर्ण न होना – मामले में कोई भी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी न होने पर संदेह कितना भी प्रबल क्यों न हो वह सबूत का विकल्प नहीं हो सकता, अभियुक्त को संदेह का लाभ दिया गया और परिस्थितियों की शृंखला पूर्ण न होने की स्थिति में अपीलार्थी की दोषसिद्धि न्यायोचित नहीं ठहराई गई।

सांगिली बनाम **तमिलनाडु राज्य** 1

पृष्ठ संख्या

– धारा 302 – हत्या – संपत्ति विवाद – अपीलार्थियों द्वारा अपने ही परिवार के सदस्यों की हत्या किया जाना – निचले न्यायालयों द्वारा कम आयु वाले अभियुक्तों को आजीवन कारावास और अपीलार्थियों को मृत्यु दंड दिया जाना – अपीलार्थी ने अपने भाई के परिवार को पूरी तरह सोच-समझकर संपत्ति हड़पने के लिए बर्बरतापूर्ण रीति में हत्या की – ऐसी स्थिति में अपीलार्थियों के मृत्यु दंड का लघूकरण आजीवन कारावास में नहीं किया जा सकता और अल्प आयु के अभियुक्तों को मृत्यु दंड से कम दंड दिए जाने का लाभ अपीलार्थियों को नहीं दिया जा सकता ।

मोफिल खां और अन्य बनाम **झारखंड राज्य** 40

– धारा 302 – हत्या – विरल से विरलतम मामला – बिना प्रकोपन के हत्याएं करना – अपीलार्थियों का समाज के लिए संकट बनना – सुधार और पुनर्वास की संभावना न होना – अपराध की गंभीरता का दंड के अनुपाती होना – अपीलार्थियों ने अपने कृत्य के परिणामों को समझने के बावजूद जान-बूझकर अपराध करने की योजना बनाकर बिना किसी प्रकोपन के अपने ही परिवार के आठ सदस्यों की हत्या की, अतः यह मामला विरल से विरलतम मामले की कोटि में आएगा ।

मोफिल खां और अन्य बनाम **झारखंड राज्य** 40

– धारा 302 – हत्या – अपीलार्थी द्वारा अपनी माता की अभिकथित हत्या करना – मृतका द्वारा अपीलार्थी के पक्ष में निर्विवादित रूप से विल निष्पादित किया जाना – हेतु का अभाव पाया जाना – मृतका ने पालित माता के रूप में अपीलार्थी के पक्ष में पहले ही अपनी संपत्ति के विल निष्पादित कर दी थी और वह वृद्धावस्था के अंतिम पड़ाव पर थीं – ऐसा हत्या करने

पृष्ठ संख्या

का हेतु साबित नहीं किया गया – अतः निचले न्यायालयों द्वारा की गई अपीलार्थी की दोषसिद्धि न्यायोचित नहीं है – उसे हत्या के अपराध का दोषी नहीं ठहराया जा सकता ।

आनंद पुजारी बनाम **कर्नाटक राज्य** 72

– धारा 302 [सपठित भारत का संविधान, 1950 का अनुच्छेद 136] – हत्या – उच्चतम न्यायालय की हस्तक्षेप करने की शक्ति – निचले न्यायालयों द्वारा साक्ष्य का त्रुटिपूर्ण मूल्यांकन – अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अनुचित होने या असंगत साक्ष्य के आधार पर निकाले जाने की स्थिति में, उच्चतर न्यायालय को निर्णय में हस्तक्षेप करने की पूर्ण शक्ति होगी ।

आनंद पुजारी बनाम **कर्नाटक राज्य** 72

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49)

– धारा 7, 13(1)(घ) और 13(2) – विक्रय कर के बकाया के कारण शिकायतकर्ता की मशीनरी को मुहरबंद किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा बकाया कर के 50 प्रतिशत का संदाय करने पर मशीनरी को मुहर-रहित करने का निदेश दिया जाना – अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा शिकायतकर्ता से 1,000/- रुपए के अवैध परितोषण की मांग करना – रंगे हाथों पकड़े जाना – 1,000/- रुपए की रकम कर के बकाया के रूप में दिए जाने के आधार पर विशेष न्यायाधीश द्वारा अभियुक्त को दोषमुक्त किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति के निर्णय को उलटते हुए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया जाना – बकाया कर के 50 प्रतिशत के रूप में केवल 1,000/- रुपए की रकम का संदाय और उसे स्वीकार करने की बात कल्पना से परे है और अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा रिश्वत की मांग करने और उसे स्वीकार करने की बात पूर्ण रूप से सिद्ध होने पर

पृष्ठ संख्या

उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के निर्णय को उलटकर न्यायोचित किया है ।

एस. दिनेश कुमार बनाम **निरीक्षक और एक अन्य की मार्फत राज्य** 154

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 14, 16 और 226 [सपठित उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद् (मुख्य इंजीनियर की नियुक्ति और सेवा-शर्तें) विनियम, 1990 का विनियम 20 और उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक प्रोन्नति के लिए अर्हक सेवा में शिथिलता नियम, 2006 का नियम 20] – मुख्य इंजीनियर के पद पर प्रोन्नति – उच्चतम न्यायालय द्वारा पूर्व मुकदमे में मुख्य इंजीनियर का अतिरिक्त प्रभार धारण करने के लिए चयन समिति का गठन करने और उपयुक्त अभ्यर्थी का चयन करने का निदेश दिया जाना – समिति द्वारा नियमित नियुक्ति करने की राय देना – परिषद् द्वारा 2006 के उत्तर प्रदेश प्रोन्नति नियमों को देखते हुए पात्रता कसौटी को शिथिल करना – चूंकि उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद् को पात्रता कसौटी को शिथिल करने की शक्ति प्राप्त है – शिथिलीकरण किसी एक अभ्यर्थी के लिए नहीं बल्कि तीन अभ्यर्थियों के लिए था इसलिए शिथिलीकरण की शक्ति का यह प्रयोग असद्भाविक नहीं कहा जा सकता है ।

राजेन्द्र कुमार अग्रवाल बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** 12

सांगिली

बनाम

तमिलनाडु राज्य

10 सितम्बर, 2014

न्यायमूर्ति जे. चेलमेश्वर और न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27] – हत्या – मृतक का उसके विद्यालय की छात्रा के साथ प्रेम प्रसंग – अपीलार्थी द्वारा मृतक के इस कृत्य पर आपत्ति – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी का अभाव – पारिस्थितिक साक्ष्य की शृंखला का पूर्ण न होना – मामले में कोई भी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी न होने पर संदेह कितना भी प्रबल क्यों न हो वह सबूत का विकल्प नहीं हो सकता, अभियुक्त को संदेह का लाभ दिया गया और परिस्थितियों की शृंखला पूर्ण न होने की स्थिति में अपीलार्थी की दोषसिद्धि न्यायोचित नहीं ठहराई गई ।

इस मामले में अपीलार्थी का विचारण सेशन न्यायालय, मदुरै द्वारा किया गया और उसे दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया । विचारण न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर अभियुक्त-अपीलार्थी ने मद्रास उच्च न्यायालय की मदुरै न्यायपीठ के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के आदेश को मान्य ठहराते हुए अपीलार्थी की अपील खारिज कर दी । अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की और उच्चतम न्यायालय ने निचले दोनों न्यायालयों के निर्णय को अपास्त करते हुए अपीलार्थी की अपील मंजूर की । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस मामले में कोई भी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है । दोषसिद्धि पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर की गई है । ऐसे मामले में,

साक्ष्य की संपूर्ण श्रृंखला सिद्ध होनी चाहिए जिससे अभियुक्त की अपराधिता इंगित होती हो । साक्ष्य की ऐसी श्रृंखला बननी चाहिए जिससे कि अभियुक्त के दोषी होने के सिवाय बिना किसी संदेह के अन्य कोई निष्कर्ष न निकाला जा सके । वर्तमान मामले में, प्रथमदृष्ट्या न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अपीलार्थी को इस संदेह के आधार पर अपराध से संबद्ध किया गया है कि इस मामले में त्रिकोणीय प्रेम प्रसंग था और चूंकि वह अभि. सा. 3 से भी प्रेम करता था, इसलिए उसने जब यह पाया कि मृतक और अभि. सा. 3 एक दूसरे से प्रेम करते हैं तब उसने मृतक की हत्या कर दी । तथापि, न्यायालय का यह मत है कि यह हेतु साबित नहीं किया गया है । अंतिम बार देखे जाने का साक्ष्य भी सिद्ध नहीं किया गया है । मृतक के पिता ने केवल यह कहा है कि मृतक को टेलीफोन कॉल प्राप्त हुई थी और कॉल प्राप्त करने के पश्चात् वह घर से गया था । इस साक्षी ने अपने अभिसाक्ष्य में यह स्वीकार किया है कि उसने अपीलार्थी को पहले नहीं देखा था और उसने उसकी आवाज की भी शनाख्त नहीं की । अतः वह यह कथन नहीं दे सका कि टेलीफोन की वह कॉल जो उसने प्राप्त की थी वह अपीलार्थी ने की थी या नहीं । आगे कार्यवाही करते हुए, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि मृतक के अपने घर से चलने के पूर्व उसे किसी भी व्यक्ति ने नहीं देखा था । जब न्यायालय इन सभी तथ्यों पर उपर्युक्त संदर्भ में पूर्ण रूप से विचार करता है तो न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि न केवल साक्ष्य की श्रृंखला अपूर्ण है अपितु उपर्युक्त बरामदगियों के आधार पर अपीलार्थी को दोषसिद्ध करना भी कठिन है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के संबंध में महत्वपूर्ण बात यह है कि अभियुक्त के प्रकटीकरण कथन के आधार पर तात्विक वस्तु की बरामदगी की जाती है किन्तु मात्र ऐसे प्रकटीकरण कथन से स्वतः ही इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा जा सकता है कि अपराध अभियुक्त द्वारा कारित किया गया है । वास्तव में, इसके पश्चात् साबित करने का भार अभियोजन पक्ष पर पड़ता है कि वह तात्विक वस्तु की बरामदगी अभियुक्त से संबद्ध करे और यह साबित करे कि उसका प्रयोग अपराध करने में किया गया है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन केवल वह जानकारी स्वीकार्य है जिसके आधार पर बरामदगी की गई है न कि अभियोजन पक्ष द्वारा दी गई कोई राय । यह विधि की सुस्थापित स्थिति है कि संदेह कितना भी प्रबल क्यों न हो, वह सबूत का विकल्प नहीं हो सकता । ऐसे मामले में जो

केवल पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित होता है, परिस्थितियों की शृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि उनसे केवल यही निष्कर्ष निकले कि अभियुक्त दोषी है । न्यायालय के मतानुसार, अपीलार्थी के दोषी होने का निष्कर्ष अभिलिखित करना उचित नहीं होगा और अपीलार्थी संदेह का लाभ पाने का हकदार है । (पैरा 22, 25 और 26)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	(2011) 11 एस. सी. सी. 724 : **मुस्तकीम** उर्फ **सिराजुद्दीन** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	25
[2011]	(2011) 14 एस. सी. सी. 117 : **मंथुरी लक्ष्मी नरसय्या** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	24
[2009]	(2009) 17 एस. सी. सी. 273 : **मणि** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ।	23

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2011 की दांडिक अपील सं. 639.

मद्रास उच्च न्यायालय की मदुरै न्यायपीठ द्वारा 2004 की दांडिक अपील सं. 506 में तारीख 6 जनवरी, 2010 को दिए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री आर. बालासुब्रामण्यिन ज्येष्ठ अधिवक्ता, बी. करुणाकरण और एस. गोथामन
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री एम. योगेश कन्ना और ए. सांता कुमारन्

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति जे. चेलमेश्वर ने दिया ।

न्या. चेलमेश्वर – यह अपील मद्रास उच्च न्यायालय की मदुरै न्यायपीठ द्वारा 2004 की दांडिक अपील सं. 506 में तारीख 6 जनवरी, 2010 को दिए गए निर्णय से उद्भूत हुई है ।

2. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा 2003 की सेशन मामला सं. 490 अपीलार्थी की भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन में सेशन न्यायालय, मदुरै द्वारा अधिनिर्णीत दोषसिद्धि और आजीवन कारावास के दंडादेश और दस हजार रुपए के जुर्माने के निर्णय की पुष्टि

की थी ।

3. मृतक मुथुरामालिगम बारहवीं कक्षा में पढ़ने वाला एक बालक था । अभि. सा. 1 और 2 उसके माता-पिता हैं । रामाथिलागा (अभि. सा. 5) एक अन्य जवान लड़की भी उसी विद्यालय की छात्रा थी जहां मृतक पढ़ रहा था । इस मामले में का अपीलार्थी अभि. सा. 5 के पिता के लिए काम करता था ।

4. अभियोजन पक्षकथन के अनुसार तारीख 12 जून, 2002 को अपराह्न लगभग 5.15 बजे इस मामले में के अपीलार्थी द्वारा मृतक को फोन किया गया था जो प्रारंभ में अभि. सा. 1 द्वारा उठाया गया था । अभि. सा. 1 के अनुसार फोन करने वाले ने अपना नाम बताया (जो कि अपीलार्थी का ही नाम है) । फोन करने वाले से कुछ बातचीत करने के पश्चात् मृतक साइकिल से अपने माता-पिता को यह सूचित करके बाहर चला गया कि वह जल्दी वापस आ जाएगा । दुर्भाग्यवश वह कभी वापस नहीं आया । तारीख 14 जून, 2002 को पूर्वाह्न लगभग 10.00 बजे अभि. सा. 1 ओमाचिकुलम पुलिस थाने गया और वहां पर इस संबंध में एक परिवाद प्रदर्श त-1 दर्ज कराया कि मुथुरामालिगम लापता है ।

5. अभि. सा. 12 प्रधान कांस्टेबल ने परिवाद प्राप्त किया और 2003 की अपराध सं. 2004 रजिस्ट्रीकृत की । टी. आर. पोन्नूचेमी (अभि. सा. 15) ऊपर वर्णित पुलिस थाने का पुलिस निरीक्षक है ।

6. उसी दिन अपीलार्थी को अपराह्न लगभग 8.00 बजे गिरफ्तार किया गया था । अभियोजन पक्ष के अनुसार अपीलार्थी ने एक संस्वीकृति कथन किया था जिसके आधार पर कुछ बरामदगियां की गई थीं । अपीलार्थी द्वारा किए गए कथन का ग्राह्य भाग प्रदर्श त-5 है । ऐसे कथन के आधार पर अभि. सा. 15 ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में परिवर्तन किया और मामला भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन रजिस्ट्रीकृत किया और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट न्यायालय में भेज दी । तत्पश्चात् अभियुक्त उन्हें उस स्थान पर ले गया जहां से मृतक का शव अपराह्न लगभग 9.45 बजे बरामद किया गया था । तत्पश्चात्, उन्होंने मृत्यु समीक्षा कराई और रिपोर्ट प्रदर्श त-18 पूर्वाह्न लगभग 2.30 बजे पर तैयार कराई थी अर्थात् तारीख 15 जून, 2002 की अत्यंत सुबह । शव को शवपरीक्षा के लिए अस्पताल भेजा गया । तत्पश्चात् अभि. सा. 15 अपीलार्थी के घर की ओर अग्रसर हुआ और उसने वहां से अपीलार्थी के मकान के पिछवाड़े से

तात्विक वस्तु 7 और 8 (दो चाकू) अभिगृहीत किए । इसके बाद वे पूर्वाह्न लगभग 3.30 बजे अपीलार्थी के बताए जाने पर अभि. सा. 9 के मकान पर पहुंचे और उन्होंने साइकिल तात्विक वस्तु सं. 1 बरामद की । तत्पश्चात् नागाराजन (विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किए गए अभियुक्त सं. 2) को गिरफ्तार किया गया । अन्वेषण के पूरा होने के पश्चात् पुलिस निरीक्षक (अभि. सा. 16) ने अभि. सा. 15 (जो तत्कालीन पुलिस निरीक्षक थे) के उत्तरवर्ती के रूप में आरोप पत्र फाइल किया ।

7. अभियोजन ने कुल मिलाकर 16 साक्षियों की परीक्षा की और 18 दस्तावेजों को चिह्नांकित किया और इस मामले में के अपीलार्थी की दोषिता को साबित करने के लिए 8 तात्विक वस्तुओं को प्रस्तुत किया । अभियोजन पक्षकथन पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है । परिस्थितियां निम्न हैं :–

(i) मृतक अभि. सा. 5 को फुसलाने का प्रयत्न कर रहा था जिस पर इस मामले में के अपीलार्थी द्वारा आपत्ति की गई थी और इस संदर्भ में अपीलार्थी द्वारा मृतक को पीटे जाने की एक इसके पहले भी घटना हुई थी ;

(ii) मृतक दुर्घटना वाले दिन अपीलार्थी से फोन पर बात करने के पश्चात् घर से गया था और तत्पश्चात् कभी भी वापस नहीं आया ;

(iii) अपीलार्थी यह जानता था कि मृतक का शव कहां पड़ा हुआ है और वह स्थान भी जानता था जहां से मृतक की साइकिल बरामद की गई थी ;

(iv) अपीलार्थी यह भी जानता था कि तात्विक वस्तु सं. 7 और 8 (दो चाकू) जो कि मृतक की हत्या करने में प्रयुक्त किए गए बताए गए हैं, कहां छिपाए गए थे ।

8. विचारण न्यायालय ने ऊपर वर्णित परिस्थितियों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी मुथुरामालिगम की हत्या करने का दोषी है तथा उस निष्कर्ष की उच्च न्यायालय द्वारा भी पुष्टि की गई है ।

9. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री आर. बालासुब्रामण्यिन ने यह तर्क दिया कि अभिलेख पर का साक्ष्य अपीलार्थी के विरुद्ध दोषिता का निष्कर्ष निकालने के लिए पूर्णतया अपर्याप्त है ।

(क) यह दलील दी गई कि अभि. सा. 3 से 5 जिनकी अपराध के हेतु और उसकी पृष्ठभूमि साबित करने के लिए परीक्षा की गई थी वे पक्षद्रोही हो गए थे । इसलिए हेतु को साबित करने के लिए अभिलेख पर कोई भी साक्ष्य नहीं है । (ख) यह तथ्य कि मृतक घटना वाले दिन इस मामले में के अपीलार्थी से फोन प्राप्त करने के पश्चात् अपने निवासस्थान से गया था, यह भी स्पष्ट रूप से साबित नहीं किया गया है क्योंकि यह इंगित करने के लिए अभि. सा. 1 के साक्ष्य में कुछ नहीं है कि वह टेलीफोन पर बातचीत से पूर्व अपीलार्थी को जानता था और वह अपीलार्थी की आवाज को पहचान सकता था । बहस के लिए यह मान लेते हुए कि फोन करने वाले स्वयं को "सांगिली" बताया था, यह इस बात का निश्चायक नहीं है कि फोन करने वाला इस मामले में का अपीलार्थी था । अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि किसी ने मृतक और अभियुक्त दोनों को दुर्घटना वाले दिन सायंकाल एक साथ देखा था । (ग) प्रदर्श त-5 के अनुसरण में की गई बरामदगियां अत्यंत ही संदिग्ध हैं क्योंकि अभि. सा. 7 जो कि अपीलार्थी की गिरफ्तारी और प्रदर्श त-5 के अनुसरण में की गईं विभिन्न बरामदगियों का भी एक पंच साक्षी था, का साक्ष्य विरोधाभासों से पूर्ण है और यह साक्षी की सत्यता के लिए बिल्कुल भी विश्वासोत्पादक नहीं है ।

10. दूसरी ओर राज्य की ओर से उपस्थित हुए विद्वान् काउंसेल श्री एम. योगेश कन्ना ने यह तर्क दिया कि दोनों निचले न्यायालयों और अभिलिखित किए गए तथ्यपरक समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए और इस न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन एक अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं करना चाहिए ।

11. इस संबंध में कोई दूसरा मत नहीं हो सकता कि यह न्यायालय अनुच्छेद 136 के अधीन अपनी अधिकारिता के प्रयोग में साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं करता । किन्तु जब दलील यह दी गई है कि इस मामले में कोई भी साक्ष्य नहीं है, तब हम मामले की परीक्षा करने के लिए आबद्ध हैं ।

12. हमने विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय के निर्णयों का परिशीलन किया है । हमें अभिलेख पर यह लाने में खेद है कि दोनों निर्णयों में कुछ और किया जाना ईप्सित है ।

13. इस संबंध में कोई चर्चा नहीं है कि निचले न्यायालयों ने किस

आधार पर यह निष्कर्ष निकाला था कि अपीलार्थी का मुथुरामालिगम की हत्या करने के लिए हेतुक था । अभि. सा. 3 से 5 जिनकी हेतुक को साबित करने के लिए परीक्षा की गई है, वे पक्षद्रोही हो गए हैं । अभि. सा. 1 ही अकेला साक्षी है जिसने हेतुक के संबंध में बताया है किन्तु उसने हेतुक के संबंध में कोई व्यक्तिगत जानकारी होने का दावा नहीं किया है । अधिक से अधिक हेतुक के संबंध में अभि. सा. 1 का साक्ष्य केवल अनुश्रुत साक्ष्य है ।

14. इस परिस्थिति पर विचार करते हुए कि मृतक दुर्घटना वाले दिन इस मामले में के अपीलार्थी द्वारा अभिकथित रूप से की गई फोन कॉल प्राप्त करने के पश्चात् अपने घर से गया था, अभियोजन ने उक्त तथ्य को अभि. सा. 1 और अभि. सा. 8 के साक्ष्य के आधार पर साबित करने की ईप्सा की है, जिसमें से अभि. सा. 8 पक्षद्रोही हो गया । अभि. सा. 1, मृतक के पिता ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि दुर्घटना वाले दिन मृतक को इस मामले में के अपीलार्थी से फोन कॉल अपराह्न लगभग 5.15 बजे प्राप्त हुई थी और यह फोन कॉल प्रारंभ में मृतक के पिता ने प्राप्त की थी और उनके पूछताछ करने पर फोन करने वाले ने अपना नाम "सांगिली" बताया था । अपनी प्रतिपरीक्षा में उन्होंने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि पुलिस द्वारा अपीलार्थी की गिरफ्तारी किए जाने के पूर्व न तो उन्होंने उसे देखा था और न ही वह उसे जानते थे । वे अपीलार्थी के निवास-स्थान, पिता के नाम इत्यादि के संबंध में भी कुछ नहीं जानते थे । अकेला अन्य साक्षी जिसकी इस संदर्भ में परीक्षा की गई थी अभि. सा. 8 था जिसने अभिकथित रूप से पुलिस निरीक्षक (अभि. सा. 15) के समक्ष यह कथन किया था कि घटना वाले दिन अपीलार्थी के साथ एक अन्य व्यक्ति था जो कि टेलीफोन बूथ पर गया था और यह बताया गया कि वहां अभि. सा. 8 कार्य करता था और मृतक को फोन किया था । जैसाकि अवेक्षा की गई है अभि. सा. 8 ने अभियोजन पक्षकथन का समर्थन नहीं किया । ऐसा मामला होने पर, अभिलेख पर यह निष्कर्ष निकालने के लिए कोई विधिक रूप से ग्राह्य साक्ष्य नहीं है कि मृतक केवल इस मामले में के अपीलार्थी द्वारा बुलाए जाने के पश्चात् ही घर से गया था ।

15. अभियोजन द्वारा अवलंब ली गई अन्य परिस्थिति जो दोनों न्यायालयों द्वारा स्वीकार की गई है, तात्विक वस्तु सं. 1 (साइकिल) और तात्विक वस्तु सं. 7 और 8 (दो चाकू) की बरामदगी है जो अपीलार्थी द्वारा पुलिस के समक्ष दिए गए कथन के अनुसरण में की गई है, जिसका ग्राह्य

भाग प्रदर्श त-5 है ।

16. मतिबनन् (अभि. सा. 7) और शेनवागामूर्ति को अपीलार्थी की गिरफ्तारी और ऊपर वर्णित तात्विक वस्तुओं की बरामदगी का पंच साक्षी बनाया गया है किन्तु शेनवागामूर्ति की परीक्षा नहीं की गई है ।

17. चिन्नाथंबी (अभि. सा. 9) वह व्यक्ति है जिसके साक्ष्य के अनुसार तारीख 12 जून, 2002 को अपराह्न लगभग 7.00 बजे इस मामले में के अपीलार्थी ने साइकिल (तात्विक वस्तु सं. 1) को उसके निवास पर छोड़ा था । तथापि, अपीलार्थी साइकिल लेने कभी वापस नहीं आया । दूसरी ओर, तारीख 15 जून, 2002 के प्रातःकाल पूर्वाह्न लगभग 3.30 बजे पर अभि. सा. 15 और अन्य उसके निवास पर आए थे और तात्विक वस्तु सं. 1 साइकिल को अभिगृहीत कर लिया था ।

18. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अभि. सा. 7 के साक्ष्य में विसंगतियां हैं और इसलिए उसके साक्ष्य का अवलंब नहीं लिया जा सकता और उसका साक्ष्य त्यक्त किया जाना चाहिए । अपीलार्थी के बताए जाने पर अभिलेख साइकिल (तात्विक वस्तु सं. 1) और दो चाकू (तात्विक वस्तु 7 और 8) की बरामदगी की सत्यता को साबित करने के लिए अभिलेख पर कुछ नहीं है ।

19. विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि अभि. सा. 9 ने कभी यह कथन नहीं किया था कि जब अभि. सा. 15 के नेतृत्व में पुलिस दल उसके निवास से तात्विक वस्तु सं. 1 को अभिगृहीत करने आया था, तब पुलिस दल के साथ अपीलार्थी था और इसलिए साइकिल की बरामदगी भी अविश्वसनीय साक्ष्य है ।

20. हमने अभियोजन साक्षी 7 और 9 के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक संवीक्षा की है । हम एक पहलू महत्वपूर्ण पाते हैं । अभियोजन पक्ष के अनुसार अपीलार्थी ने संस्वीकृति कथन किया था ; रक्त की बरामदगी है ; चाकू की बरामदगी है ; और साइकिल की बरामदगी है । इन बरामदगियों के लिए बनाए गए पंचनामें में केवल एक व्यक्ति है अर्थात् थंगामणि का पुत्र मतिबनन् (अभि. सा. 7) जो अभिकथित रूप से इन बरामदगियों का साक्षी है । यद्यपि यह स्वतः अत्यंत संदिग्ध नहीं है फिर भी जब हम इस पहलू की अभिलेख पर प्रस्तुत अन्य साक्ष्य के साथ में परीक्षा करते हैं, तब ऐसी बरामदगियां थोड़ा संदेहपूर्ण बन जाती हैं । स्वयं अन्वेषक अधिकारी ने जो अभि. सा. 15 के रूप में उपस्थित हुए, अपने अभिसाक्ष्य में यह कथन

किया है कि साक्षी, जिसने अपीलार्थी के संस्वीकृति कथन पर हस्ताक्षर किए थे, थंगामणि का पुत्र मतिबनन् नहीं है और एतद्द्वारा अभि. सा. 7 के पुत्र पर संदेह होता है । वह रीति भी संदेहपूर्ण है जिसमें अभि. सा. 7 घटनास्थल पहुंचा और अन्वेषक अधिकारी ने अभिकथित रूप से उसे बरामदगियों का साक्षी बनने के लिए साथ चलने का अनुरोध किया । इसके आगे अपनी प्रतिपरीक्षा में उसने यह कथन किया है कि उस दिन पूर्वाह्न 8.00 बजे से अगली सुबह पूर्वाह्न 3.30 बजे तक वह अभि. सा. 15 के अनुरोध पर पुलिस के साथ था । अपनी प्रतिपरीक्षा में उसने यह कथन किया है कि उसे अपराह्न 6.00 बजे के लगभग पुलिस थाने थोड़ी देर के लिए ले जाया गया था और तत्पश्चात् पुलिस द्वारा जाने दिया गया था । इन सभी तथ्यों पर एक साथ विचार करने पर, जिन पर कि निचले न्यायालयों द्वारा विचार नहीं किया गया है, ये बरामदगियां थोड़ी संदेहपूर्ण हो जाती हैं ।

21. इस प्रक्रम पर इस पर बारीकी से ध्यान दिया जाना चाहिए कि तथाकथित बरामदगियों के सिवाय ऐसी अन्य कोई परिस्थिति नहीं है जो कि अपीलार्थी के विरुद्ध साबित की गई है ।

22. ऊपर की गई चर्चा का सार यह है कि यह हत्या का अत्यंत अस्पष्ट मामला है । इस मामले में कोई भी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है । दोषसिद्धि पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर की गई है । ऐसे मामले में, साक्ष्य की संपूर्ण शृंखला सिद्ध होनी चाहिए जिससे अभियुक्त की अपराधिता इंगित होती हो । साक्ष्य की ऐसी शृंखला बननी चाहिए जिससे कि अभियुक्त के दोषी होने के सिवाय बिना किसी संदेह के अन्य कोई निष्कर्ष न निकाला जा सके । वर्तमान मामले में, प्रथमदृष्ट्या हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अपीलार्थी को इस संदेह के आधार पर अपराध से संबद्ध किया गया है कि इस मामले में त्रिकोणीय प्रेम प्रसंग था और चूंकि वह अभि. सा. 3 से भी प्रेम करता था, इसलिए उसने जब यह पाया कि मृतक और अभि. सा. 3 एक दूसरे से प्रेम करते हैं तब उसने मृतक की हत्या कर दी । तथापि, हमारा यह मत है कि यह हेतु साबित नहीं किया गया है । अंतिम बार देखे जाने का साक्ष्य भी सिद्ध नहीं किया गया है । मृतक के पिता ने केवल यह कहा है कि मृतक को टेलीफोन कॉल प्राप्त हुई थी और कॉल प्राप्त करने के पश्चात् वह घर से गया था । इस साक्षी ने अपने अभिसाक्ष्य में यह स्वीकार किया है कि उसने अपीलार्थी को पहले नहीं देखा था और उसने उसकी आवाज की भी शनाख्त नहीं की । अतः

वह यह कथन नहीं दे सका कि टेलीफोन की वह कॉल जो उसने प्राप्त की थी वह अपीलार्थी ने की थी या नहीं । आगे कार्यवाही करते हुए, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि मृतक के अपने घर से चलने के पूर्व उसे किसी भी व्यक्ति ने नहीं देखा था । जब हम इन सभी तथ्यों पर उपर्युक्त संदर्भ में पूर्ण रूप से विचार करते हैं तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि न केवल साक्ष्य की शृंखला अपूर्ण है अपितु उपर्युक्त बरामदगियों के आधार पर अपीलार्थी को दोषसिद्ध करना भी कठिन है ।

23. **मणि** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इस पहलू पर निम्न मत व्यक्त किया है जो कि अत्यंत महत्वपूर्ण है :–

> "26. बरामदगी एक दुर्बल साक्ष्य है और उसका पूर्ण रूप से अवलंब नहीं लिया जा सकता है तथा ऐसे गंभीर मामले में बरामदगी के आधार पर दोषसिद्धि नहीं की जा सकती । जब एक बार बरामदगी निष्फल हो जाती है तब अभियोजन पक्षकथन साबित करने के लिए वास्तव में कुछ भी नहीं रह जाता है ....।"

24. **मंथुरी लक्ष्मी नरसय्या** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में ऐसे ही विचार को दोहराया गया है जो कि निम्न प्रकार है :–

> "6. यह सुस्थापित हो चुका है कि पारिस्थितिक साक्ष्य के मामले में अभियोजन पक्ष का कर्तव्य साक्ष्य की शृंखला को साबित करना है और यदि इस शृंखला की कोई भी कड़ी टूट जाती है तब अभियुक्त को उसका लाभ मिलना चाहिए । हमारा यह मत है कि वर्तमान मामले में कोई भी साक्ष्य नहीं है ।"

25. **मुस्तकीम** उर्फ **सिराजुद्दीन** बनाम **राजस्थान राज्य**[3] वाले मामले में इस न्यायालय ने ऐसा ही मत व्यक्त किया है :–

> "24. इस न्यायालय के अत्यंत सुज्ञात मामले अर्थात् शरद बिरधी-चंद शारदा **बनाम** महाराष्ट्र राज्य [(1984) 4 एस. सी. सी. 116] वाले मामले के पैरा 153 में पारिस्थितिक साक्ष्य के मूल्यांकन संबंधी कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांत परिकल्पित किए गए हैं । जब मामला पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित होता है तब निम्न संघटकों का

---

[1] (2009) 17 एस. सी. सी. 273.
[2] (2011) 14 एस. सी. सी. 117.
[3] (2011) 11 एस. सी. सी. 724.

अनुपालन किया जाना चाहिए । इन सारभूत संघटकों की एक बार पुनरावृत्ति करना लाभकारी होगा जो निम्न प्रकार हैं –

'(i) जिन परिस्थितियों से अभियुक्त के दोषी होने का निष्कर्ष निकाला जाना है वे पूर्ण रूप से सिद्ध की जानी चाहिए, न कि सिद्ध किए जाने की केवल संभावना हो ।

(ii) सिद्ध किए गए तथ्य अभियुक्त के दोषी होने की परिकल्पना के साथ ही संगत होने चाहिए अर्थात् उनसे अभियुक्त के दोषी होने के सिवाय अन्य कोई परिकल्पना न की जा सके ;

(iii) परिस्थितियों की प्रकृति और प्रवृत्ति निश्चायक होनी चाहिए ;

(iv) परिस्थितियां ऐसी होनी चाहिए कि उनसे सभी संभावित परिकल्पनाएं वर्जित हो जाए सिवाय उस परिकल्पना के जो साबित की गई है ; और

(v) साक्ष्य की शृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि उससे इस निष्कर्ष पर पहुंचने का कोई भी युक्तियुक्त कारण न दिखाई दे कि अभियुक्त निर्दोष है और उन परिस्थितियों से यह दर्शित होना चाहिए कि सभी मानवीय संभाव्यताओं के आधार पर अभियुक्त द्वारा ही अपराध किया गया है ।'

25. साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के संबंध में महत्वपूर्ण बात यह है कि अभियुक्त के प्रकटीकरण कथन के आधार पर तात्विक वस्तु की बरामदगी की जाती है किन्तु मात्र ऐसे प्रकटीकरण कथन से स्वतः ही इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा जा सकता है कि अपराध अभियुक्त द्वारा कारित किया गया है । वास्तव में, इसके पश्चात् साबित करने का भार अभियोजन पक्ष पर पड़ता है कि वह तात्विक वस्तु की बरामदगी अभियुक्त से संबद्ध करे और यह साबित करे कि उसका प्रयोग अपराध करने में किया गया है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन केवल वह जानकारी स्वीकार्य है जिसके आधार पर बरामदगी की गई है न कि अभियोजन पक्ष द्वारा दी गई कोई राय ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

26. यह विधि की सुस्थापित स्थिति है कि संदेह कितना भी प्रबल क्यों न हो, वह सबूत का विकल्प नहीं हो सकता । ऐसे मामले में जो केवल पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित होता है, परिस्थितियों की शृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि उनसे केवल यही निष्कर्ष निकले कि अभियुक्त दोषी है । हमारे मतानुसार, अपीलार्थी के दोषी होने का निष्कर्ष अभिलिखित करना उचित नहीं होगा और अपीलार्थी संदेह का लाभ पाने का हकदार है । अतः हम अपील मंजूर करते हैं और अपीलार्थी की दोषसिद्धि तथा दंडादेश को अपास्त करते हैं । यदि अपीलार्थी अन्य किसी मामले में वांछित नहीं है, तो उसे छोड़ा जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

अस./अनू.

[2015] 1 उम. नि. प. 12

राजेन्द्र कुमार अग्रवाल

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

23 सितम्बर, 2014

न्यायमूर्ति फकीर मोहम्मद इब्राहिम कलीफुल्ला और
न्यायमूर्ति शिव कीर्ति सिंह

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 14, 16 और 226 [सपठित उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद् (मुख्य इंजीनियर की नियुक्ति और सेवा-शर्तें) विनियम, 1990 का विनियम 20 और उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक प्रोन्नति के लिए अर्हक सेवा में शिथिलता नियम, 2006 का नियम 20] – मुख्य इंजीनियर के पद पर प्रोन्नति – उच्चतम न्यायालय द्वारा पूर्व मुकदमे में मुख्य इंजीनियर का अतिरिक्त प्रभार धारण करने के लिए चयन समिति का गठन करने और उपयुक्त अभ्यर्थी का चयन करने का निदेश दिया जाना – समिति द्वारा नियमित नियुक्ति करने की राय देना – परिषद् द्वारा 2006 के उत्तर प्रदेश प्रोन्नति नियमों को देखते हुए पात्रता कसौटी को शिथिल करना – चूंकि उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद् को पात्रता

कसौटी को शिथिल करने की शक्ति प्राप्त है – शिथिलीकरण किसी एक अभ्यर्थी के लिए नहीं बल्कि तीन अभ्यर्थियों के लिए था इसलिए शिथिलीकरण की शक्ति का यह प्रयोग असद्भाविक नहीं कहा जा सकता है ।

प्रस्तुत मामले में अपीलार्थी तथा मुकदमा लड़ने वाले प्राइवेट प्रत्यर्थी परिषद् में मुख्य इंजीनियर के एकमात्र पद के लिए आकांक्षी हैं जो जनवरी, 2011 में रिक्त हुआ । इसके पश्चात्, यद्यपि नरसिंह प्रसाद अन्य कई व्यक्तियों से कनिष्ठ था तो भी उसे तारीख 30 सितम्बर, 2011 को मुख्य इंजीनियर के पद का स्थानापन्न प्रभार सौंपा गया था । अनिल कुमार जैन ने उच्च न्यायालय में समावेदन किया और एक खंड न्यायपीठ ने तारीख 30 सितम्बर, 2011 के आदेश को अभिखंडित कर दिया और नियमित प्रोन्नति करने का निदेश दिया । नरसिंह प्रसाद ने 2012 की सिविल अपील सं. 3153 फाइल की जो कि तारीख 27 मार्च, 2012 को सीमित सीमा तक मंजूर कर ली गई थी । इस न्यायालय ने आदेश के पैरा 8 में यह पाया कि कतिपय ऐसी अपीलें लंबित थीं जिनमें प्रोन्नति संबंधी पदों के संबंध में यथापूर्व स्थिति बनाए रखने का आदेश पारित किया गया था । इस न्यायालय ने यह पाया कि उस कारण कोई नियमित प्रोन्नति नहीं हो सकी थी और इसलिए उच्च न्यायालय का आदेश कायम रखने योग्य नहीं था । इन परिस्थितियों में इस न्यायालय ने यह निदेश दिया कि बोर्ड द्वारा चार सप्ताह के भीतर चयन समिति का गठन किया जाए जो कि मुख्य इंजीनियर के पद का अतिरिक्त प्रभार धारण करने के लिए सभी पात्र अभ्यर्थियों की उपयुक्तता पर विचार करेगी । इस न्यायालय ने परिषद् को मुख्य इंजीनियर के पद पर स्थानापन्न प्रभार धारण करने के लिए किसी व्यक्ति का चयन करने की अनुज्ञा दे दी थी किन्तु यह स्पष्ट कर दिया गया था कि किसी अभ्यर्थी के पक्ष में किए गए ऐसे विनिश्चय से उसे नियमित नियुक्ति के लिए विचार करते समय कोई फायदा नहीं मिलेगा । किन्हीं कारणवश इस न्यायालय द्वारा स्थानापन्न व्यवस्था करने के लिए दिए गए समय के भीतर कोई चयन नहीं किया जा सका था किन्तु इसी बीच 2011 की सिविल अपील सं. 2608 का अन्य संसक्त अपीलों के साथ तारीख 27 अप्रैल, 2012 के निर्णय द्वारा अंतिम रूप से विनिश्चय किया गया । इस न्यायालय के तारीख 27 मार्च, 2012 के आदेश से एक मास के भीतर मुख्य इंजीनियर के पद को नियमित प्रोन्नति के आधार पर भरने के संबंध में एकमात्र अड़चन अस्तित्वहीन हो गई और इसलिए परिषद्

ने तारीख 14 जून, 2012 को राज्य सरकार से मुख्य इंजीनियर के रिक्त पद पर नियमित नियुक्ति करने के लिए उपयुक्त कदम उठाने का अनुरोध करते हुए एक पत्र जारी किया । राज्य सरकार से उत्तर की प्राप्ति से पूर्व, तारीख 27 मार्च, 2012 के आदेश द्वारा नियत चार सप्ताह के समय के विस्तार के लिए परिषद् का आवेदन इस न्यायालय के आदेशों के लिए प्रस्तुत हुआ जिसने तारीख 20 जुलाई, 2012 को समयावधि एक मास के लिए बढ़ा दी । राज्य सरकार ने तारीख 27 जुलाई, 2012 के पत्र द्वारा परिषद् की ओर से प्रस्तुत की गई अधिकारियों की पात्रता सूची की अवेक्षा की और यह अवेक्षा करने के पश्चात् कि सिविल काडर के केवल दो अधिकारी और विद्युत/यांत्रिकी काडर का एक अधिकारी अधीक्षण इंजीनियर के पद पर पांच वर्ष के अनुभव संबंधी विहित पात्रता पूरी करते थे, लोक उपक्रम विभाग द्वारा उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद् (मुख्य इंजीनियर की नियुक्ति और सेवा शर्तें) विनियम, 1990 के विनियम 20 के उपबंधों के अधीन पांच वर्ष के अर्हक अनुभव में शिथिलता देने संबंधी दिए गए परामर्श को स्वीकार कर लिया । परिषद् ने तारीख 4 अगस्त, 2012 को मुख्य इंजीनियर का अतिरिक्त प्रभार धारण करने के लिए सबसे अधिक पात्र अभ्यर्थी का चयन करने के लिए एक चयन समिति का गठन किया । चयन समिति ने तारीख 6 अगस्त, 2012 को हुई अपनी बैठक में यह राय बनाई कि चूंकि मुख्य इंजीनियर के पद पर नियमित प्रोन्नति के लिए नियमित चयन करने के संबंध में कार्यवाही करने के मार्ग में अब कोई विधिक अड़चन नहीं रही थी इसलिए परिषद् को उस संबंध में एक विनिश्चय करना चाहिए और राज्य सरकार से उस प्रयोजनार्थ चयन समिति गठित करने का अनुरोध करना चाहिए जिसकी अध्यक्षता राज्य के मुख्य सचिव द्वारा की जानी आवश्यक है । अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय में समावेदन किया जिसमें ज्येष्ठतम पात्र व्यक्ति के रूप में मुख्य इंजीनियर के स्थानापन्न प्रभार देने और आवासन आयुक्त के उक्त पद पर स्थानापन्न हैसियत में बने रहने के विरुद्ध निदेश देने का दावा किया गया था । परिषद् ने तारीख 23 अगस्त, 2012 को चयन समिति की सिफारिशों पर विचार किया और उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक प्रोन्नति के लिए अर्हक सेवा में शिथिलता नियम, 2006 को ध्यान में रखते हुए पांच वर्ष के अनुभव संबंधी पात्रता कसौटी को शिथिल करके 3½ वर्ष करने का विनिश्चय किया जिसमें दो वर्ष की परिवीक्षा अवधि भी है । विनियमों के विनियम 20 के उपबंधों के अधीन 1½ वर्ष की शिथिलता प्रदान करने संबंधी बोर्ड का

विनिश्चय नौ अधीक्षण इंजीनियरों के ब्यौरों पर विचार करने के पश्चात् लिया गया था । शिथिलता संबंधी उपर्युक्त विनिश्चय की संसूचना राज्य सरकार को नियमों के अनुसार मुख्य इंजीनियर के पद पर चयन करने के लिए तुरंत कार्यवाही करने हेतु तारीख 24 अगस्त, 2012 के पत्र द्वारा दी गई थी । तारीख 24 अगस्त, 2012 के पत्र तथा परिषद् के तारीख 23 अगस्त, 2012 के विनिश्चय को नरसिंह प्रसाद द्वारा 2012 की रिट याचिका (एकल न्यायपीठ) सं. 1264 के माध्यम से चुनौती दी गई थी । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील सं. 9091-9092 मंजूर करते हुए और अपील सं. 9093 खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – परिषद् के पास पात्रता कसौटी को शिथिल करने की आवश्यक शक्ति थी । वास्तव में, उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद् (मुख्य इंजीनियर की नियुक्ति और सेवा शर्तें) विनियम, 1990 के विनियम 20(2) के अधीन राज्य सरकार के पास भी ऐसे साधारण या विनिर्दिष्ट आदेश जारी करने की शक्ति उपलब्ध है जिनके द्वारा बोर्ड को विनियमों से अन्यथा या किसी विनियम या कुछ विनियमों को आंशिक रूप से शिथिल करते हुए सेवा में कोई नियुक्ति या नियुक्तियां करने के लिए समर्थ बनाया गया हो । विनियम में आगे यह भी उपबंध है कि "किसी ऐसी नियुक्ति की दशा में, जो कि इन विनियमों के यथार्थ अनुपालन में नहीं है, बोर्ड के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने वह नियुक्ति इन विनियमों को शिथिल करके की है" । (पैरा 17)

नियम 4 का परिशीलन करने से यह दर्शित होता है कि संबंधित प्राधिकारी को विभिन्न सेवा नियमों के अधीन किसी पद को प्रोन्नति द्वारा भरने के लिए उपलब्ध शिथिलीकरण की शक्ति को इस शर्त के साथ विनियमित करने की ईप्सा की गई है कि विहित न्यूनतम सेवावधि विहित विस्तार तक उपयुक्त रूप से शिथिल की जा सकेगी यदि पात्रता के क्षेत्र में अपेक्षित संख्या में पात्र व्यक्ति उपलब्ध नहीं होते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि दलील यह है कि यद्यपि शिथिल करने की शक्ति उपलब्ध है तथापि, परिषद् ने ऐसी शक्ति का प्रयोग करके त्रुटि की है क्योंकि पात्रता के क्षेत्र में पहले ही तीन पात्र व्यक्ति उपलब्ध थे । तथापि, कहीं भी यह अभिवाक् नहीं किया गया है और न ही यह तर्क दिया गया है कि ऐसी शक्ति का प्रयोग करने के लिए पात्र व्यक्तियों की अपेक्षित संख्या कितनी होगी । इस संबंध में, विनियमों से भी कुछ स्पष्ट नहीं होता है । इस पहलू पर, परिषद् द्वारा प्रधान सचिव, उत्तर प्रदेश प्रशासन, आवासन और योजना अनुभाग-II

को भेजे गए तारीख 23 नवम्बर, 2010 के पत्र का परिशीलन करने से यह प्रकट होता है कि उत्तर प्रदेश पात्रता सूची नियम, 1986 (लोक सेवा आयोग के बाहरी क्षेत्र के पद पर प्रोन्नति) के नियम 4 के अनुसार, जहां प्रोन्नति के लिए पर्याप्त व्यक्ति पात्र हैं वहां नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा ज्येष्ठतम अभ्यर्थियों की एक सूची तैयार की जाएगी जिसमें रिक्तियों की संख्या के यथासंभव तीन गुणज किन्तु कम से कम आठ व्यक्ति रखे जाएंगे । इसके पश्चात्, उस पत्र में शिथिलीकरण को शासित करने वाले 2006 के नियमों के नियम 4 के प्रति निर्देश किया गया है जिसमें वह सीमा नियत की गई है जिस तक शिथिलीकरण प्रदान किया जा सकता है । उपर्युक्त तथ्यों की पृष्ठभूमि में देखने पर नरसिंह प्रसाद की अपील में दी गई दलील, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, निराधार पाई गई है । परिषद् ने राज्य सरकार के पत्र के अनुसार कार्यवाही की और अनुज्ञेय सीमा तक शिथिलीकरण प्रदान किया यद्यपि इस कार्यवाही के परिणामस्वरूप भी केवल छह अभ्यर्थियों को विचार में लेने का क्षेत्र विस्तारित हुआ । (पैरा 19)

चूंकि वर्तमान मामला ऐसा नहीं है जिसमें चयन प्रक्रिया प्रारंभ होने के पश्चात् नियमों में संशोधन किया गया है बल्कि न्यूनतम सेवावधि के बारे में अर्हता को शिथिल करने के लिए शक्ति का प्रयोग मात्र है इसलिए तथ्य संबंधी इन प्रश्नों की जांच करना आवश्यक नहीं है कि चयन प्रक्रिया कब आरंभ की गई थी, अर्थात् क्या अर्हता के शिथिलीकरण के पश्चात् या पूर्व या क्या चयन प्रक्रिया आरंभ भी हुई थी अथवा नहीं । तथापि, चूंकि विरोधी पक्षकारों ने इस मुद्दे पर हमारे समक्ष दलील दी है इसलिए यह अवेक्षा करना लाभप्रद होगा कि इस मामले में मुख्य इंजीनियर के पद पर नियमित प्रोन्नति के लिए उपयुक्त अभ्यर्थी का चयन करने की प्रक्रिया कुछ ऐसी सिविल अपीलों के लंबित होने के कारण आरंभ नहीं की जा सकी थी जिनमें विभिन्न सेवाओं में प्रोन्नति के मामले में आरक्षण संबंधी उपबंधों को चुनौती दिए जाने के कारण नियमित प्रोन्नति के संबंध में यथापूर्व स्थिति बनाए रखने का आदेश प्रवर्तन में था । उसी कारण से, इस न्यायालय ने तारीख 27 मार्च, 2012 के आदेश द्वारा भी विस्तृत चयन प्रक्रिया आरंभ करने का निदेश दिया किन्तु चयनित अभ्यर्थी को प्रश्नगत पद का अतिरिक्त प्रभार प्रदत्त करके स्थानापन्न व्यवस्था करने के लिए ही निदेश दिया । तारीख 27 अप्रैल, 2012 को लंबित सिविल अपीलों में निर्णय किए जाने के कारण ऊपर उल्लिखित अड़चन दूर हो जाने के पश्चात् ही संबंधित प्राधिकारी नियमित प्रोन्नति के लिए चयन प्रक्रिया आरंभ करने के लिए

स्वतंत्र हुए । इससे पूर्व आरंभ की गई चयन प्रक्रिया, जैसा कि उल्लेख किया गया है, स्थानापन्न व्यवस्था करने के लिए ही थी । तारीख 27 मार्च, 2012 के आदेश में इस न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया था कि अतिरिक्त प्रभार धारण करने के लिए चयन हो जाने पर चयनित पदधारी को नियमित प्रोन्नति के मामले में कोई फायदा प्रदान नहीं होगा । इन तथ्यों की पृष्ठभूमि में देखने पर हमें परिषद् की ओर से दी गई इस दलील में सार प्रतीत होता है कि चयन प्रक्रिया तारीख 27 अप्रैल, 2012 के पश्चात् ही प्रारंभ की जा सकती थी । परिषद् की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता ने बोर्ड की तारीख 23 अगस्त, 2012 की बैठक के संबंध में स्पष्टीकारक टिप्पण में इस बारे में उपयोगी रूप से इंगित किया है । उस टिप्पण के पैरा 5 में यह उल्लेख किया गया है कि मुख्य इंजीनियर के पद पर नियमित प्रोन्नति का मामला सरकार के समक्ष विचारार्थ लंबित है जिसने पांच वर्ष की पात्रता शर्त को शिथिल करने के लिए सुझाव दिया था और उस पैरा के अंत में यह सुझाव दिया गया था कि शिथिलीकरण के प्रस्ताव को बोर्ड से पारित कराने के पश्चात् प्रशासनिक विभाग का अनुमोदन अभिप्राप्त किया जाए और इसके पश्चात् ही आवश्यक प्रोन्नति करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा सकेगा । इस प्रस्ताव की मंजूरी की प्रत्याशा करते हुए उस स्पष्टीकारक टिप्पण में नौ अधीक्षण इंजीनियरों के ब्यौरे तारीख 1 जनवरी, 2012 को उनके अनुभव सहित भी दिए गए थे । इन तथ्यों और परिस्थितियों में यह प्रकट होता है कि उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके गलती की है कि मुख्य इंजीनियर के पद पर नियमित प्रोन्नति के लिए चयन प्रक्रिया पहले ही प्रारंभ की जा चुकी थी । सरकार को इस प्रयोजनार्थ अभी समुचित समिति का गठन करना था और पात्र अभ्यर्थियों की सूची को भी तब तक अंतिम रूप नहीं दिया गया था जब राज्य सरकार के निदेशों के अनुसार शिथिलीकरण का मुद्दा उठाया गया था । उच्च न्यायालय ने स्थानापन्न व्यवस्था करने की प्रक्रिया को पद को नियमित आधार पर भरने के लिए चयन करने की प्रक्रिया मानकर गलती की है । (पैरा 20)

जहां तक प्रस्तुत मामले का संबंध है, न्यायालय ने यह दर्शित करने के लिए कोई सामग्री नहीं पाई है कि राज्य सरकार या परिषद् ने किसी अप्राधिकृत या अप्रत्यक्ष प्रयोजन के लिए विनियम 20 के अधीन शक्ति का प्रयोग करने का आश्रय लिया था । यह अभिकथन स्पष्टतः गलत है कि ऐसा केवल राजेन्द्र कुमार अग्रवाल के फायदे के लिए किया गया था क्योंकि शिथिलीकरण तीन अधिकारियों के लिए फायदाप्रद था जो कि सभी

नरसिंह प्रसाद से ज्येष्ठ थे । इस अभिकथन का समर्थन करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि राज्य सरकार या परिषद् द्वारा किसी राजनैतिक या किसी अन्य व्यक्ति के प्रभाव के कारण लिए गए निर्णय के लिए राजेन्द्र कुमार अग्रवाल उत्तरदायी था । हमारी राय में, शिथिलीकरण की शक्ति का प्रयोग परिषद् के हित में था क्योंकि मुख्य इंजीनियर का पद, जैसा कि इस न्यायालय ने पूर्ववर्ती कार्यवाही में अभिनिर्धारित किया है, पर्याप्त महत्व वाला एकमात्र पद है । सापेक्ष रूप से ज्येष्ठ व्यक्तियों को सम्मिलित करके विचार के दायरे का विस्तारण करने से पात्र व्यक्तियों के बृहत्तर समूह में से अत्यधिक योग्य व्यक्ति का चयन करने में समर्थ बनाकर लोक हेतु का ही फायदा होगा । अतः, मामले के तथ्यों के आधार पर न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालकर त्रुटि की है कि शिथिलीकरण किन्हीं संदिग्ध कारणों से या राजेन्द्र कुमार अग्रवाल को फायदा पहुंचाने के लिए किया गया था । (पैरा 23)

विनियमों के अधीन शिथिलीकरण की शक्ति सदैव उपलब्ध थी और उसका प्रयोग ऐसी रीति में किया गया है जिसमें कोई हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है, उच्च न्यायालय के अपीलाधीन निर्णय और आदेश को अपास्त करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है । परिषद् और राज्य सरकार को यह निदेश दिया जाता है कि पात्र अभ्यर्थियों में से सबसे उपयुक्त अभ्यर्थी का चयन करने की प्रक्रिया को शीघ्र निपटाया जाए और परिषद् में मुख्य इंजीनियर के रिक्त पद को अविलंब आठ सप्ताह के भीतर विधि के अनुसार भरा जाए । (पैरा 25)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 7 एस. सी. सी. 1 : **उत्तर प्रदेश पावर कारपोरेशन लिमिटेड** बनाम **राजेश कुमार और अन्य** ;	5, 7, 8
[2012]	(2012) 9 एस. सी. सी. 545 : **गुजरात राज्य और अन्य** बनाम **अरविंद कुमार टी. तिवारी और एक अन्य** ;	3, 11, 19
[2011]	(2011) 3 एस. सी. सी. 436 : **उड़ीसा राज्य और एक अन्य** बनाम **ममता मोहन्ती** ;	14, 16

[2010] (2010) 7 एस. सी. सी. 560 :
मोहम्मद रायसूल इस्लाम और अन्य बनाम
गोकुल मोहन हज़ारिका और अन्य ; 14, 16

[2010] (2010) 4 एस. सी. सी. 192 :
जसबीर सिंह छाबड़ा और अन्य बनाम **पंजाब
राज्य और अन्य** ; 21

[2008] (2008) 2 एस. सी. सी. 119 :
एम. वी. थिम्मैया और अन्य बनाम
उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग और अन्य ; 21

[2006] (2006) 8 एस. सी. सी. 212 :
एम. नागराज बनाम **भारत संघ** ; 5

[2006] (2006) 6 एस. सी. सी. 430 :
आर. एस. गर्ग बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** ; 21

[1998] (1998) 9 एस. सी. सी. 223 :
बी. एल. गुप्ता और एक अन्य बनाम
दिल्ली नगर निगम ; 14, 15

[1998] (1998) 4 एस. सी. सी. 179 :
अशोक कुमार उप्पल और अन्य बनाम
जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य ; 11, 13

[1997] (1997) 10 एस. सी. सी. 298 :
संदीप कुमार शर्मा बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** ; 11

[1992] (1992) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 22 :
बिहार राज्य और एक अन्य बनाम
पी. पी. शर्मा, आईएएस और एक अन्य ; 21

[1990] (1990) 2 एस. सी. सी. 189 :
जे. सी. यादव और अन्य बनाम **हरियाणा
राज्य और अन्य** ; 11, 12, 13

[1983] (1983) 3 एस. सी. सी. 284 :
वाई. वी. रंगैया और अन्य बनाम
जे. श्रीनिवास राव और अन्य । 14, 15

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2014 की सिविल अपील सं. 9091-9092. (इसके साथ 2014 की सिविल अपील सं. 9093 भी सुनी गई ।)

2012 की रिट याचिका सं. 1183 (एकल न्यायपीठ) और 1264 (एकल न्यायपीठ) में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ न्यायपीठ के तारीख 8 अक्तूबर, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

उपस्थित होने वाले पक्षकारों की ओर से सर्वश्री एस. बी. उपाध्याय, कैलाश वासदेव ज्येष्ठ अधिवक्ता, इरशाद अहमद अपर महाधिवक्ता, निखिल मजीठा, सुभाशीष भौमिक, रामेश्वर प्रसाद गोयल, प्रवीन चौहान, यश प्रकाश, गौरव अग्रवाल, कौस्टव पाठक, अभीष्ठ कुमार, दिनेश कुमार गर्ग, धनंजय गर्ग, विश्वजीत सिंह, अभीन्द्र महेश्वरी और उमराव सिंह रावत

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति शिव कीर्ति सिंह ने दिया ।

न्या. सिंह – इजाजत दी जाती है ।

2. ये अपीलें इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठ की खंड न्यायपीठ के तारीख 8 अक्तूबर, 2012 के सामान्य निर्णय से उद्भूत हुई हैं इसलिए इनकी सुनवाई एक साथ की गई है और ये इस सामान्य निर्णय द्वारा शासित होंगी ।

3. अपीलार्थी तथा प्राइवेट प्रत्यर्थी उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद् (जिसे संक्षेप में 'परिषद्' कहा गया है) में अधीक्षण इंजीनियर हैं । अन्य पक्षकारों द्वारा फाइल की गई अपील में अपीलार्थियों को प्रत्यर्थियों के साथ नामित किया गया है जबकि अनिल कुमार जैन नामक व्यक्ति को भी, जो कि एक ऐसा अन्य अधीक्षण इंजीनियर है जिसकी 2012 की रिट याचिका सं. 1276 (एकल न्यायपीठ) भी अपीलाधीन सामान्य निर्णय द्वारा मंजूर कर ली गई थी, पक्षकार बनाए जाने संबंधी उसका आवेदन इस न्यायालय द्वारा मंजूर किए जाने के कारण प्रत्यर्थी के रूप में नामित किया गया है ।

4. अपीलार्थी तथा मुकदमा लड़ने वाले प्राइवेट प्रत्यर्थी परिषद् में मुख्य इंजीनियर के एकमात्र पद के लिए आकांक्षी हैं जो जनवरी, 2011 में रिक्त हुआ । इसके पश्चात्, यद्यपि नरसिंह प्रसाद अन्य कई व्यक्तियों से कनिष्ठ था तो भी उसे तारीख 30 सितम्बर, 2011 को मुख्य इंजीनियर के पद का स्थानापन्न प्रभार सौंपा गया था । अनिल कुमार जैन ने उच्च न्यायालय में समावेदन किया और एक खंड न्यायपीठ ने तारीख 30 सितम्बर, 2011 के आदेश को अभिखंडित कर दिया और नियमित प्रोन्नति करने का निदेश दिया । नरसिंह प्रसाद ने 2012 की सिविल अपील सं. 3153 फाइल की जो कि तारीख 27 मार्च, 2012 को सीमित सीमा तक मंजूर कर ली गई थी । इस न्यायालय ने आदेश के पैरा 8 में यह पाया कि कतिपय ऐसी अपीलें लंबित थीं जिनमें प्रोन्नति संबंधी पदों के संबंध में यथापूर्व स्थिति बनाए रखने का आदेश पारित किया गया था । इस न्यायालय ने यह पाया कि उस कारण कोई नियमित प्रोन्नति नहीं हो सकी थी और इसलिए उच्च न्यायालय का आदेश कायम रखने योग्य नहीं था । इन परिस्थितियों में इस न्यायालय ने यह निदेश दिया कि बोर्ड द्वारा चार सप्ताह के भीतर चयन समिति का गठन किया जाए जो कि मुख्य इंजीनियर के पद का अतिरिक्त प्रभार धारण करने के लिए सभी पात्र अभ्यर्थियों की उपयुक्तता पर विचार करेगी । इस न्यायालय ने परिषद् को मुख्य इंजीनियर के पद पर स्थानापन्न प्रभार धारण करने के लिए किसी व्यक्ति का चयन करने की अनुज्ञा दे दी थी किन्तु यह स्पष्ट कर दिया गया था कि किसी अभ्यर्थी के पक्ष में किए गए ऐसे विनिश्चय से उसे नियमित नियुक्ति के लिए विचार करते समय कोई फायदा नहीं मिलेगा ।

5. किन्हीं कारणवश इस न्यायालय द्वारा स्थानापन्न व्यवस्था करने के लिए दिए गए समय के भीतर कोई चयन नहीं किया जा सका था किन्तु इसी बीच 2011 की सिविल अपील सं. 2608 (**उत्तर प्रदेश पावर कारपोरेशन लिमिटेड** बनाम **राजेश कुमार और अन्य**[1]) का अन्य संसक्त अपीलों के साथ तारीख 27 अप्रैल, 2012 के निर्णय द्वारा अंतिम रूप से विनिश्चय किया गया । इस न्यायालय ने उस निर्णय द्वारा अधिनियम और नियमों के उन सुसंगत उपबंधों को, जिनमें प्रोन्नति के मामलों में आरक्षण का उपबंध है, अधिकारातीत घोषित कर दिया जो कि **एम. नागराज** बनाम **भारत संघ**[2] के मामले में के निर्णय के अधीन है । उस निर्णय के पैरा 87

---

[1] (2012) 7 एस. सी. सी. 1.

[2] (2006) 8 एस. सी. सी. 212.

में यह स्पष्ट किया गया था कि वे प्रोन्नतियां, जो उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्ग आरक्षण) अधिनियम [यू. पी. पब्लिक सर्विसेज़ (रिज़र्वेशन फार शेड्यूल्ड कास्ट्स, शेड्यूल्ड ट्राइब्स एंड अदर बैकवर्ड क्लासिज़) ऐक्ट], 1944 और उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक ज्येष्ठता नियम [यू. पी. गवर्नमेंट सर्वेंट्स सीनियरटी रूल्स], 1991 के सुसंगत उपबंध की सहायता के बिना इससे पहले दी गई हैं, जो कि अधिकारातीत घोषित की गई थीं, अविच्छिन्न बनी रहेंगी । अतः, इस न्यायालय के तारीख 27 मार्च, 2012 के आदेश से एक मास के भीतर मुख्य इंजीनियर के पद को नियमित प्रोन्नति के आधार पर भरने के संबंध में एकमात्र अड़चन अस्तित्वहीन हो गई और इसलिए परिषद् ने तारीख 14 जून, 2012 को राज्य सरकार से मुख्य इंजीनियर के रिक्त पद पर नियमित नियुक्ति करने के लिए उपयुक्त कदम उठाने का अनुरोध करते हुए एक पत्र जारी किया । राज्य सरकार से उत्तर की प्राप्ति से पूर्व, तारीख 27 मार्च, 2012 के आदेश द्वारा नियत चार सप्ताह के समय के विस्तार के लिए परिषद् का आवेदन इस न्यायालय के आदेशों के लिए प्रस्तुत हुआ जिसने तारीख 20 जुलाई, 2012 को समयावधि एक मास के लिए बढ़ा दी । राज्य सरकार ने तारीख 27 जुलाई, 2012 के पत्र द्वारा परिषद् की ओर से प्रस्तुत की गई अधिकारियों की पात्रता सूची की अवेक्षा की और यह अवेक्षा करने के पश्चात् कि सिविल काडर के केवल दो अधिकारी और विद्युत/यांत्रिकी काडर का एक अधिकारी अधीक्षण इंजीनियर के पद पर पांच वर्ष के अनुभव संबंधी विहित पात्रता पूरी करते थे, लोक उपक्रम विभाग द्वारा उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद् (मुख्य इंजीनियर की नियुक्ति और सेवा शर्तें) विनियम, 1990 (जिन्हें संक्षेप में 'विनियम' कहा गया है) के विनियम 20 के उपबंधों के अधीन पांच वर्ष के अर्हक अनुभव में शिथिलता देने संबंधी दिए गए परामर्श को स्वीकार कर लिया ।

6. परिषद् ने तारीख 4 अगस्त, 2012 को मुख्य इंजीनियर का अतिरिक्त प्रभार धारण करने के लिए सबसे अधिक पात्र अभ्यर्थी का चयन करने के लिए एक चयन समिति का गठन किया । चयन समिति ने तारीख 6 अगस्त, 2012 को हुई अपनी बैठक में यह राय बनाई कि चूंकि मुख्य इंजीनियर के पद पर नियमित प्रोन्नति के लिए नियमित चयन करने के संबंध में कार्यवाही करने के मार्ग में अब कोई विधिक अड़चन नहीं रही थी इसलिए परिषद् को उस संबंध में एक विनिश्चय करना चाहिए और राज्य सरकार से उस प्रयोजनार्थ चयन समिति गठित करने का अनुरोध करना चाहिए जिसकी अध्यक्षता राज्य के मुख्य सचिव द्वारा की जानी आवश्यक

है । अपीलार्थी राजेन्द्र कुमार अग्रवाल ने 2012 की रिट याचिका (एकल न्यायपीठ) सं. 1183 के रूप में उच्च न्यायालय में समावेदन किया जिसमें ज्येष्ठतम पात्र व्यक्ति के रूप में मुख्य इंजीनियर के स्थानापन्न प्रभार देने और आवासन आयुक्त के उक्त पद पर स्थानापन्न हैसियत में बने रहने के विरुद्ध निदेश देने का दावा किया गया था । परिषद् ने तारीख 23 अगस्त, 2012 को चयन समिति की सिफारिशों पर विचार किया और उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक प्रोन्नति के लिए अर्हक सेवा में शिथिलता नियम [यू. पी. गवर्नमेंट सर्वेंट्स रिलेक्सेशन इन क्वालिफाइंग सर्विस फार प्रोमोशन रूल्स], 2006 (जिन्हें संक्षेप में '2006 के नियम' कहा गया है) को ध्यान में रखते हुए पांच वर्ष के अनुभव संबंधी पात्रता कसौटी को शिथिल करके 3½ वर्ष करने का विनिश्चय किया जिसमें दो वर्ष की परिवीक्षा अवधि भी है । विनियमों के विनियम 20 के उपबंधों के अधीन 1½ वर्ष की शिथिलता प्रदान करने संबंधी बोर्ड का विनिश्चय नौ अधीक्षण इंजीनियरों के ब्यौरों पर विचार करने के पश्चात् लिया गया था जिसमें विद्युत/यांत्रिकी काडर के अनिल कुमार जैन की ज्येष्ठता स्थिति क्रम सं. 1 पर थी जिसके बाद चार वर्ष और तीन मास के अनुभव के साथ राजेन्द्र कुमार अग्रवाल क्रम सं. 14 पर था ; तीन वर्ष और सात मास के अनुभव के साथ मथुरा प्रसाद वैश्य क्रम सं. 15 पर था ; और तीन वर्ष और सात मास के अनुभव के साथ उमेश मित्तल क्रम सं. 16 पर था । तीन अन्य अधीक्षण इंजीनियर ज्ञानेन्द्र सिंह, जय कांत और संतराम के अनुभव की अवधि, जो कि क्रमशः ज्येष्ठता में क्रम सं. 21, 22 और 83 पर थे, शून्य या बहुत कम थी जबकि नरसिंह प्रसाद के पास, जो ज्येष्ठता में क्रम सं. 84 पर था और परविन्दर कुमार, जो ज्येष्ठता में क्रम सं. 88 पर था, सात वर्ष या उससे अधिक का अनुभव था । संबंधित अधीक्षण इंजीनियरों के अनुभव की संगणना विनियम 5 के प्रकाश में तारीख 1 जनवरी, 2012 को यथा-विद्यमान अनुभव के रूप में की गई थी जिसमें यह अपेक्षित है कि सेवा अवधि की गणना उस वर्ष की 1 जनवरी के अनुसार की जाएगी जिसमें चयन किया जाता है । पांच वर्ष के अपेक्षित अनुभव में 1½ वर्ष की शिथिलता के कारण तीन ज्येष्ठ अधीक्षण इंजीनियर, अर्थात्, राजेन्द्र कुमार अग्रवाल, मथुरा प्रसाद वैश्य और उमेश मित्तल पात्रता क्षेत्र में आ गए जिसमें इससे पूर्व केवल तीन अन्य अधिकारी शामिल थे जिसमें से विद्युत/यांत्रिकी काडर वाला ज्येष्ठता क्रम सं. 1 पर था और सिविल काडर वाले ज्येष्ठता क्रम सं. 84 और 88 पर थे । शिथिलता संबंधी उपर्युक्त विनिश्चय की संसूचना राज्य सरकार को नियमों के अनुसार मुख्य इंजीनियर के पद पर चयन करने के लिए तुरंत

कार्यवाही करने हेतु तारीख 24 अगस्त, 2012 के पत्र द्वारा दी गई थी ।

7. तारीख 24 अगस्त, 2012 के पत्र तथा परिषद् के तारीख 23 अगस्त, 2012 के विनिश्चय को नरसिंह प्रसाद द्वारा 2012 की रिट याचिका (एकल न्यायपीठ) सं. 1264 के माध्यम से चुनौती दी गई थी । उसने यह दलील दी कि नियमित प्रोन्नति करने का विनिश्चय इस न्यायालय के आदेशों, विशेष रूप से तारीख 27 मार्च, 2012 के आदेश का अतिक्रमणकारी था, यह पात्रता कसौटी में भूतलक्षी प्रभाव से संशोधन करने की कोटि में भी आता था जबकि चयन प्रक्रिया पहले ही चल रही थी और यह कि ऐसे विनिश्चय राजेन्द्र कुमार अग्रवाल को फायदा पहुंचाने की दृष्टि से राजनैतिक कारणों से किए गए थे । अनिल कुमार जैन द्वारा फाइल की गई अन्य रिट याचिका 2012 की रिट याचिका सं. 1276 (एकल न्यायपीठ) थी और वह भी उन्हीं विनिश्चयों के विरुद्ध फाइल की गई थी जिन्हें नरसिंह प्रसाद द्वारा चुनौती दी गई है । सामान्य आदेश द्वारा विनिश्चित चौथी रिट याचिका ज्ञानेन्द्र सिंह द्वारा फाइल की गई 2012 की रिट याचिका सं. 1207 (एकल न्यायपीठ) थी जिसे तब अधीक्षण इंजीनियर के रूप में प्रोन्नत नहीं किया गया था किन्तु वह यह चाहता था कि स्थानापन्न अधीक्षण इंजीनियर के रूप में उसके अनुभव की गणना प्रोन्नति के लिए की जाए । उसके दावे को उच्च न्यायालय द्वारा नकार दिया गया था और उसने अपने दावे को नामंजूर किए जाने के विरुद्ध अपील नहीं करनी चाही थी । उच्च न्यायालय ने सामान्य आक्षेपित आदेश द्वारा राजेन्द्र कुमार अग्रवाल की रिट याचिका खारिज कर दी और नरसिंह प्रसाद और अनिल कुमार जैन द्वारा फाइल की गई रिट याचिकाएं मंजूर कर लीं । चूंकि अनिल कुमार जैन ने अपनी रिट याचिका में राजेन्द्र कुमार अग्रवाल को आलिप्त नहीं किया था इसलिए पश्चात्वर्ती ने केवल दो विशेष इजाजत याचिकाएं – एक अपनी रिट याचिका की खारिजी के विरुद्ध और दूसरी नरसिंह प्रसाद को अनुदत्त अनुतोष के विरुद्ध फाइल कीं । तथापि, इसके पश्चात् अनिल कुमार जैन को इन अपीलों में उसके अपने अनुरोध पर आलिप्त किया गया है और इसलिए संपूर्ण सामान्य निर्णय को सभी पक्षकारों की उपस्थिति में प्रश्नगत किया गया है और इस न्यायालय से निम्नलिखित दो मुख्य प्रश्नों की परीक्षा करने की अपेक्षा की गई है :–

(1) क्या परिषद् को, जैसा कि उसके द्वारा अभिवाक् किया गया है, उत्तर प्रदेश पावर कारपोरेशन **बनाम** राजेश कुमार और अन्य (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के तारीख 27 अप्रैल, 2012 के पश्चात्वर्ती निर्णय के प्रकाश में मुख्य इंजीनियर के रिक्त पद पर

नियमित प्रोन्नति करने की कार्यवाही करने के लिए अनुज्ञात करना चाहिए या जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, उसे वह पद इस न्यायालय के तारीख 27 मार्च, 2012 के आदेश के तात्पर्यित अनुपालन में स्थानापन्न आधार पर ही भरने का निदेश देना चाहिए ?

(2) क्या राज्य सरकार के अनुरोध का अनुपालन करते हुए विनियम 20 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए पांच वर्ष के न्यूनतम अर्हक अनुभव को शिथिल करने संबंधी परिषद् का विनिश्चय उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए इन कारणों से विधि की दृष्टि से दूषित है कि यह चयन प्रक्रिया आरंभ होने के पश्चात् पात्रता के नियमों में भूतलक्षी रूप से संशोधन करने की कोटि में आता है और यह केवल राजेन्द्र कुमार अग्रवाल को समायोजित करने के असंदिग्ध कारणों से किया गया है ?

8. प्रथम प्रश्न के संबंध में हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि **उत्तर प्रदेश पावर कारपोरेशन लिमिटेड** बनाम **राजेश कुमार और अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के तारीख 27 अप्रैल, 2012 के निर्णय के पश्चात् मुख्य इंजीनियर के रिक्त पद को नियमित रीति में भरने के लिए नियमित चयन करने की कार्यवाही करने के लिए परिषद् के मार्ग में कोई अड़चन नहीं थी । इस न्यायालय ने उन लंबित सिविल अपीलों में, जिनका तारीख 27 अप्रैल, 2012 को अंतिम रूप से निपटारा कर दिया गया था, नियमित प्रोन्नति करने की प्रक्रिया की बजाय यथापूर्व स्थिति बनाए रखने वाले आदेश के कारण ही मुख्य इंजीनियर के पद का अतिरिक्त प्रभार धारण करने के लिए किसी उपयुक्त अधीक्षण इंजीनियर का चयन करके स्थानापन्न व्यवस्था करने का निदेश दिया था । इसके पश्चात्, परिषद् ने चयन की विस्तृत प्रक्रिया पूरी करने के पश्चात् स्थानापन्न व्यवस्था करने में समय और संसाधनों को बर्बाद किया होगा । इस संबंध में कोई संदेह नहीं हो सकता कि परिषद् ने लंबित सिविल अपीलों का तारीख 27 अप्रैल, 2012 को निपटारा होने के कारण यथापूर्व स्थिति बनाए रखने वाले आदेश को बाद में बातिल करने की कार्यवाही न करके और मुख्य इंजीनियर के पद को नियमित आधार पर भरने के लिए इस न्यायालय की औपचारिक अनुज्ञा की ईप्सा न करके अनुचित कार्य किया है । तथापि, अब जबकि संपूर्ण तथ्य इस न्यायालय के

समक्ष प्रस्तुत हैं, परिषद् को यह रिक्ति केवल स्थानापन्न आधार पर भरने का निदेश देना उचित नहीं होगा ।

9. जहां तक प्रश्न सं. 2 का संबंध है, प्रश्न सं. 1 के उत्तर को ध्यान में रखते हुए केवल दो आधारों पर ध्यान देना आवश्यक है, जिन पर उच्च न्यायालय ने जोर दिया है । उच्च न्यायालय ने नरसिंह प्रसाद की ओर से दी गई इन दलीलों को स्वीकार किया है कि परिषद् की आक्षेपित कार्रवाइयां चयन प्रक्रिया प्रारंभ होने के पश्चात् पात्रता कसौटी में भूतलक्षी रूप से संशोधन करने की कोटि में आती थीं और यह कि ऐसे विनिश्चय राजनैतिक या संदिग्ध कारणों से राजेन्द्र कुमार अग्रवाल को फायदा पहुंचाने के लिए ही किए गए थे ।

10. परस्पर-विरोधी दलीलों का उल्लेख करने से पूर्व विनियमों के सुसंगत विनियम 5 और विनियम 20 को उद्धृत करना उपयोगी होगा, जो कि निम्नलिखित रूप में हैं :–

> *"5. नियुक्ति का स्रोत – मुख्य इंजीनियर के पद और अन्य ऐसे समतुल्य पदों पर नियुक्ति, जो कि सेवा के काडर में विनिर्दिष्ट किए जाएं, इन विनियमों में अधिकथित रीति में ऐसे अधीक्षण इंजीनियरों में से प्रोन्नति द्वारा की जाएगी जिन्होंने उस वर्ष की पहली जनवरी को जिसमें चयन किया जाता है, अधीक्षण इंजीनियर के रूप में कम से कम पांच वर्ष की सेवा पूरी कर ली है ;
>
> ……………….

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

> "5. Source of appointment – Appointment to the post of Chief Engineer and other equivalent posts as may be specified in the cadre of the Service shall be made by promotion in the manner laid down in these Regulations from amongst the Superintending Engineers who have completed not less than five years of service as Superintending Engineer as on January 1st of the year in which the selection is made;
>
> …………………

……………………

20. शिथिलता – (1) यदि बोर्ड का यह समाधान हो जाता है कि सेवा में नियुक्त किए गए व्यक्तियों की सेवा-शर्तों के संबंध में किसी विनियम के प्रवर्तन से किसी विशेष मामले में असम्यक् कठिनाई कारित होती है तो वे उसके मामले को लागू विनियमों में किसी बात के होते हुए भी, आदेश द्वारा उस सीमा तक और उन शर्तों के अधीन रहते हुए, जो वे मामले के संबंध में न्यायसंगत और साम्यापूर्ण रीति में कार्यवाही करने के लिए आवश्यक समझे, उस विनियम की अपेक्षा को छोड़ सकेगा…….. या उसे शिथिल कर सकेगा ।

(2) जब बोर्ड की राय में या राज्य सरकार के साधारण या विनिर्दिष्ट आदेशों के अधीन ऐसा करना आवश्यक प्रतीत होता है तब बोर्ड इन विनियमों से अन्यथा अनुसार या किसी या कुछ विनियमों को आंशिक रूप से शिथिल करते हुए कोई नियुक्ति या नियुक्तियां कर सकेगा और ऐसी किसी नियुक्ति के मामले में, जो इन विनियमों के सर्वथा अनुरूप नहीं है, बोर्ड के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने वे नियुक्ति (नियुक्तियां) इन विनियमों को शिथिल करके की हैं ।'

…………….

20. Relaxation – (1) If the Board is satisfied that the operation of any regulation regarding the conditions of service of persons appointed to the service causes undue hardship in any particular case, they may, notwithstanding anything contained in the regulations, applicable to his case, by order, dispense with…… or relax the requirement of that regulation to such extent and subject to such conditions as they may consider necessary for dealing with the case in a just and equitable manner.

(2) When, in the opinion of the Board, or under the general or specific orders of the State Government it appears necessary to do so, the Board may make any appointment or appointments to the service otherwise than in accordance with these regulations, or in partial relaxation of any or some of the regulations and in case of any appointment which is not in strict accord with these regulations, the Board shall be deemed to have made the appointment(s) in relaxation of these regulations."

11. अपीलार्थी-राजेन्द्र कुमार अग्रवाल की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री निखिल मजीठा ने अपनी इस दलील के समर्थन में कि किसी भी आधार में कोई गुणागुण नहीं है, इस न्यायालय के अनेक निर्णयों का अवलंब लिया है । उसके अनुसार, पात्रता कसौटी को शिथिल करने की शक्ति विनियमों के विनियम 20 के अधीन पहले ही उपलब्ध थी और इसलिए उच्च न्यायालय की ओर से ऐसे विभिन्न निर्णयों का अवलंब लेकर गलती की गई थी जिनमें यह सिद्धांत अधिकथित किया गया है कि जब एक बार चयन प्रक्रिया आरंभ हो गई हो तब चयन से संबंधित नियमों में भूतलक्षी रूप से संशोधन करना अननुज्ञेय है । दूसरे शब्दों में, उसकी दलील यह है कि प्रस्तुत मामले में यह भ्रम है कि नीति-विषयक विनिश्चय या चयन प्रक्रिया को शासित करने वाले नियमों में भूतलक्षी रूप से संशोधन की बात तो दूर, कोई भी संशोधन किया गया है । उसके अनुसार, विनियम 20 में यथा-विद्यमान शिथिल करने की शक्ति, विभिन्न सेवाओं को शासित करने वाले अन्य नियमों में पाई जा सकती है । असम्यक् कठिनाई को कम करने या किसी विशिष्ट स्थिति से निपटने की दृष्टि से इसका प्रयोग किसी ऐसी स्थिति में विधिमान्य रूप से किया जा सकता है जहां चयन और नियुक्ति के लिए अपेक्षित अर्हित व्यक्ति उपलब्ध न हों । ऐसी स्थितियों में, सरकार नियमों की अपेक्षा को शिथिल करने संबंधी अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए ऐसा आदेश जारी कर सकती है जिसके द्वारा अपेक्षित अधिकारियों की सेवाएं उपलब्ध कराने की दृष्टि से किसी विशिष्ट नियम या नियमों को शिथिल किया गया हो । इन दलीलों के समर्थन में **जे. सी. यादव और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य**[1] ; **संदीप कुमार शर्मा** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[2] ; **अशोक कुमार उप्पल और अन्य** बनाम **जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य**[3] और **गुजरात राज्य और अन्य** बनाम **अरविन्द कुमार टी. तिवारी और एक अन्य**[4] वाले मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों का अवलंब लिया गया है ।

12. वर्तमान प्रयोजन के लिए **जे. सी. यादव** (उपर्युक्त) वाले मामले में के निर्णय के पैरा 6 के प्रति निर्देश करना उपयोगी है । वह निम्नलिखित रूप में है :–

---

[1] (1990) 2 एस. सी. सी. 189.
[2] (1997) 10 एस. सी. सी. 298.
[3] (1998) 4 एस. सी. सी. 179.
[4] (2012) 9 एस. सी. सी. 545.

"6. यह नियम सरकार को किसी भी नियम की अपेक्षा को उस सीमा तक और ऐसी शर्तों के साथ छोड़ने या उसमें शिथिलता प्रदान करने की शक्ति प्रदान करता है जो वह मामले में न्यायसंगत और साम्यापूर्ण रीति में विचार करने के लिए आवश्यक समझे । सरकार को यह शक्ति प्रदान करने का उद्देश्य और प्रयोजन किसी विशिष्ट मामले में होने वाली असम्यक् कठिनाई को कम करना और किसी मामले पर न्यायसंगत और साम्यापूर्ण रीति में विचार करना है । यदि नियमों से असम्यक् कठिनाई होती है या नियम असाम्यापूर्ण रीति में प्रवृत्त होते हैं तो उस स्थिति में राज्य सरकार नियमों की अपेक्षा छोड़ने या उसे शिथिल करने की शक्ति रखती है । नियम व्यष्टिक मामलों तक ही शक्ति का प्रयोग निर्बंधित नहीं करता है । सरकार कतिपय परिस्थितियों में किसी विशिष्ट स्थिति से निपटने के लिए नियमों की अपेक्षा को शिथिल कर सकती है । 'किसी विशिष्ट मामले में' अभिव्यक्ति से यह अभिप्रेत नहीं होता है कि शिथिलीकरण किसी व्यष्टिक मामले तक ही सीमित रखा जाए । 'विशिष्ट' अभिव्यक्ति के विभिन्न अर्थों में से एक अर्थ से 'किसी विनिर्दिष्ट व्यक्ति - वस्तु - समय या स्थान के लिए विशिष्ट या संबंधित - जो सामान्य या साधारण नहीं है' अभिप्रेत है । विधि के संबंध में विशिष्ट शब्द के अर्थ से पृथक् या विशेष, परिसीमित या विनिर्दिष्ट अभिप्रेत है । सामान्य प्रथा में 'मामला' शब्द से 'घटना', 'होना', 'स्थिति', 'परिस्थितियां' अभिप्रेत है । विधिक अर्थ में 'मामला' अभिव्यक्ति से 'कोई मामला', 'वाद' या 'न्यायालय अथवा अधिकरण में कार्यवाही' अभिप्रेत है । इन अर्थों को ध्यान में रखते हुए 'किसी विशिष्ट मामले में' अभिव्यक्ति से किसी विशिष्ट या संबंधित घटना या स्थिति या परिवर्तन अभिप्रेत होगा । नियम 22 का आधारतत्व किसी विशिष्ट घटना या स्थिति से निपटने के लिए नियमों का शिथिलीकरण है, यदि नियमों के प्रवर्तन से कठिनाई कारित होती है । नियमों का शिथिलीकरण उस सीमा तक किया जा सकता है जो राज्य सरकार न्यायसंगत और साम्यापूर्ण रीति में किसी विशिष्ट स्थिति से निपटने के लिए आवश्यक समझे । नियम की व्याप्ति राज्य सरकार को उस सीमा तक, जो वह मामले पर न्यायसंगत और साम्यापूर्ण रीति में विचार करने के लिए आवश्यक समझे, किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग की बाबत नियमों की अपेक्षा को शिथिल करने के लिए शक्ति प्रदान करने के लिए पर्याप्त रूप में व्यापक है । शिथिलीकरण की शक्ति असम्यक् कठिनाई को

कम करने या किसी विशिष्ट स्थिति से निपटने के दृष्टिकोण से नियमों में साधारणतया अंतर्विष्ट होती है । अनेकों बार सेवा नियमों के कड़ाई से लागू किए जाने से ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसमें किसी विशिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों के किसी वर्ग को असम्यक् कठिनाई होती है और आगे ऐसी भी स्थिति आ सकती है जब सेवा में नियुक्ति के लिए अपेक्षित अर्हित व्यक्ति उपलब्ध न हों । ऐसी स्थिति में सरकार को नियमों की अपेक्षाओं को शिथिल करने की शक्ति प्राप्त है । राज्य सरकार अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपेक्षित अधिकारियों की सेवाओं का लाभ उठाने की दृष्टि से किसी विशिष्ट नियम में शिथिल करते हुए सामान्य आदेश जारी कर सकती है । शिथिलीकरण चाहे इसे सामान्य रीति में क्यों न मंजूर किया गया हो, व्यष्टिक अधिकारियों के फायदे के लिए लागू होगा ।"

13. **अरविन्द कुमार टी.** (उपर्युक्त) वाले हाल ही के मामले में इस न्यायालय ने इस मुद्दे के संबंध में अनेक निर्णयों पर विचार किया जिनमें **जे. सी. यादव** (उपर्युक्त) और **अशोक कुमार उप्पल** (उपर्युक्त) वाले मामले भी हैं और निर्णय के पैरा 10 में निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"10. नियुक्ति प्राधिकारी चयन के लिए उससे उच्चतर अंक नियत करने के लिए सक्षम है जितने मात्र पात्रता के लिए प्राप्त किए जाने आवश्यक होते हैं किन्तु स्वाभाविक परिणाम के तौर पर इसका यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता है कि कानून या नियमों द्वारा नियत पात्रता/मानदंड को इस प्रयोजनार्थ उस सीमा तक शिथिल किया जा सकता है कि वे कानून द्वारा नियत अंकों से निम्नतर अंक हो सकते हैं । किसी विशिष्ट मामले में, जहां ऐसा करना आवश्यक है, शैक्षिक अर्हता (अर्हताओं) का शिथिलीकरण भी अनुज्ञेय हो सकता है बशर्ते प्राधिकारी को ऐसी पात्रता साधारणतया या असम्यक् कठिनाई वाले किसी व्यष्टिक मामले या मामलों के वर्ग के संबंध में शिथिल करने के लिए नियमों में सशक्त किया गया हो । तथापि, उक्त शक्ति का प्रयोग न्यायौचित्यपूर्ण कारणों से किया जाना चाहिए और इसका प्रयोग किसी व्यष्टि के पक्ष में मनमाने रूप से नहीं किया जाना चाहिए । राज्य सरकार/प्राधिकारी द्वारा बनाए गए भर्ती नियमों या किसी अन्य नियम को शिथिल करने की शक्ति सरकार/प्राधिकारी को ऐसी किसी आपात स्थिति से निपटने के लिए प्रदत्त की जाती है जहां किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग के साथ अन्याय कारित किया गया

हो या कारित किए जाने की संभावना हो या जहां उक्त नियमों का लागू किया जाना असंभव हो गया हो । [हरियाणा राज्य **बनाम** सुभाष चन्द्र मरवाहा (1974) 3 एस. सी. सी. 220, जे. सी. यादव और अन्य **बनाम** हरियाणा राज्य और अन्य (1990) 2 एस. सी. सी. 189 और अशोक कुमार उप्पल और अन्य **बनाम** जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य (1998) 4 एस. सी. सी. 179 वाले मामले देखिए]"

14. नरसिंह प्रसाद की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री एस. बी. उपाध्याय ने प्रत्युत्तर में उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए मत का समर्थन किया और यह दलील दी कि विनियम 20 के अधीन पात्रता कसौटी को शिथिल करने संबंधी विनिश्चय को प्रक्रिया आरंभ होने के पश्चात् चयन संबंधी नियमों को बदलने के रूप में देखा जाना है और इसलिए उच्च न्यायालय ने उसे नामंजूर करके ठीक ही किया है । उसने इस न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों का अवलंब लिया :–

(1) **वाई. वी. रंगैया और अन्य** बनाम **जे. श्रीनिवास राव और अन्य**[1] ;

(2) **बी. एल. गुप्ता और एक अन्य** बनाम **दिल्ली नगर निगम**[2] ;

(3) **मोहम्मद रायसुल इस्लाम और अन्य** बनाम **गोकुल मोहन हज़ारिका और अन्य**[3] ; और

(4) **उड़ीसा राज्य और एक अन्य** बनाम **ममता मोहन्ती**[4] ।

15. **वाई. वी. रंगैया** (उपर्युक्त) के मामले में तथा **बी. एल. गुप्ता** (उपर्युक्त) वाले मामले में भी विद्यमान नियमों के अधीन शिथिलता प्रदान करने का प्रश्न इस न्यायालय के विचारार्थ नहीं आया था । एकमात्र मुद्दा यह था कि क्या सेवा नियमों में किए गए पश्चात्वर्ती संशोधनों को, जिन्हें भविष्यलक्षी अभिनिर्धारित किया गया था, उन रिक्तियों से संबंधित चयन प्रक्रिया को लागू किया जा सकता था जो नियमों के संशोधन से पूर्व उद्भूत हुई थीं । उस स्थिति में, अनेक पूर्ववर्ती निर्णयों का अनुसरण करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वे रिक्तियां जो नियमों के

---

[1] (1983) 3 एस. सी. सी. 284.
[2] (1998) 9 एस. सी. सी. 223.
[3] (2010) 7 एस. सी. सी. 560.
[4] (2011) 3 एस. सी. सी. 436.

संशोधन से पूर्व उद्भूत हुई थीं, पुराने नियमों द्वारा न कि संशोधित नियमों द्वारा शासित होंगी । इस न्यायालय ने **बी. एल. गुप्ता** (उपर्युक्त) वाले मामले में पैरा 9 में इस प्रकार अभिनिर्धारित करने के पश्चात् पैरा 10 में स्थिति को आगे निम्नलिखित निबंधनों में स्पष्ट किया था :–

> "10. ......यदि कोई कानूनी नियम विद्यमान नहीं थे तो यह संभव हो सकता है, हालांकि हम इस संबंध में कोई राय व्यक्त नहीं करते हैं, कि विद्यमान पदधारी नियमित हो गए हों । तथापि, जहां कानूनी नियम विद्यमान हैं वहां नियुक्तियां और प्रोन्नतियां कानूनी नियमों के अनुसार ही की जानी होंगी विशेष रूप से जहां हमें यह दर्शाया गया है कि नियमों में नियुक्ति प्राधिकारी को उक्त नियमों को शिथिल करने की शक्ति दी गई थी । शिथिलीकरण की ऐसी किसी शक्ति के अभाव में, सहायक लेखाकार के रूप में नियुक्ति केवल तभी की जा सकती थी जब अभ्यर्थियों से परीक्षा देने की अपेक्षा की गई हो जो कि ऐसी पद्धति थी जो 1978 के नियमों द्वारा विहित थी ।"

16. **मोहम्मद रायसुल इस्लाम** (उपर्युक्त) वाले मामले में के निर्णय के पैरा 39 में इस बात पर जोर दिया गया था कि जब एक बार भर्ती के विद्यमान नियमों के आधार पर चयन प्रक्रिया आरंभ कर दी जाती है तब उक्त नियम ऐसे किसी संशोधन के होते हुए भी, जो इसी बीच उक्त नियमों में किए गए हों, उस चयन प्रक्रिया को शासित करते रहेंगे । **ममता मोहन्ती** (उपर्युक्त) वाले मामले में तथ्य पूर्णतः भिन्न थे । यद्यपि विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने अपनी इस दलील के समर्थन में कि इस प्रक्रम पर शिथिलीकरण मंजूर करना विज्ञापन जारी करने के पश्चात् कसौटी में परिवर्तन करने की कोटि में आता है, जो कि विधि की दृष्टि से अननुज्ञेय है, केवल एक विशिष्ट उप-पैरा, अर्थात् पैरा 68 के उप-पैरा सं. (viii) का अवलंब लिया तथापि, संपूर्ण पैरा 68 और अन्य पैराओं को पढ़ने से यह स्पष्ट रूप से दर्शित होता है कि उस मामले की तथ्यात्मक स्थिति पूर्णतः भिन्न थी । आरंभ में, नियुक्तियां 1974 के नियमों के अधीन की गई थीं जिनके अधीन किसी प्राधिकारी, या तो विश्वविद्यालय या राज्य को पात्रता में शिथिलता प्रदान करने की कोई शक्ति नहीं थी । अतः, पैरा 68 के उप-पैरा (xi) में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ऐसी शक्ति के अभाव में उसका प्रयोग नहीं किया जा सकता था । तथ्यों से आगे यह दर्शित होता है कि नियमों और विज्ञापन के प्रतिकूल ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त किया

गया था जिनके पास विहित न्यूनतम अंकों से कम अंक थे और ऐसी नियुक्तियां काफी लंबे समय के पश्चात् अनुमोदित की गई थीं, कुछ मामलों में तो 10 से 12 वर्षों के पश्चात् अनुमोदित की गई थीं । एक विश्वविद्यालय ने लगभग दस वर्ष बीत जाने के पश्चात् शैक्षणिक अर्हता में शिथिलता प्रदान करने के लिए एक नेमी आदेश जारी किया था जो कि अनेक महाविद्यालयों को लागू होता था । इस न्यायालय ने ऊपर उपदर्शित तथ्यों और परिस्थितियों में विश्वविद्यालय द्वारा किए गए तथाकथित शिथिलीकरण को नामंजूर कर दिया था ।

17. हमारी सुविचारित राय में, विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री उपाध्याय ने जिन निर्णयों का अवलंब लिया है वे प्रस्तुत मामले के तथ्यों, विशेषकर विनियम 20 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए लागू नहीं होते हैं जो विनियमों में सर्वदा विद्यमान हैं । दूसरी ओर, राजेन्द्र कुमार अग्रवाल की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री मजीठा द्वारा दी गई दलीलें, विशेष रूप से उसके द्वारा अवलंब लिए गए नियमों को ध्यान में रखते हुए, मंजूर की जानी चाहिएं । परिषद् के पास पात्रता कसौटी को शिथिल करने की आवश्यक शक्ति थी । वास्तव में, विनियम 20(2) के अधीन राज्य सरकार के पास भी ऐसे साधारण या विनिर्दिष्ट आदेश जारी करने की शक्ति उपलब्ध है जिनके द्वारा बोर्ड को विनियमों से अन्यथा या किसी विनियम या कुछ विनियमों को आंशिक रूप से शिथिल करते हुए सेवा में कोई नियुक्ति या नियुक्तियां करने के लिए समर्थ बनाया गया हो । विनियम में आगे यह भी उपबंध है कि "किसी ऐसी नियुक्ति की दशा में, जो कि इन विनियमों के यथार्थ अनुपालन में नहीं है, बोर्ड के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने वह नियुक्ति इन विनियमों को शिथिल करके की है" ।

18. नरसिंह प्रसाद द्वारा फाइल की गई अपील में उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए इस आशय के निष्कर्ष को चुनौती दी गई है कि प्राधिकारियों को नियमों को शिथिल करने की शक्ति है । इसके पश्चात्, उच्च न्यायालय ने आगे यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसा शिथिलीकरण भूतलक्षी प्रभाव से नहीं हो सकता है । पूर्ववर्ती मताभिव्यक्ति को नरसिंह प्रसाद द्वारा इस आधार पर चुनौती दी गई है कि पात्रता के नियमों को शिथिल करने की शक्ति का प्रयोग 2006 के नियमों के नियम 4 के पैरामीटर के भीतर ही किया जा सकता है, जिसमें निम्न प्रकार उपबंध किया गया है :–

*"नियम 4. अर्हक सेवा में शिथिलता – यदि कोई पद प्रोन्नति द्वारा भरा जाता है और ऐसी प्रोन्नति के लिए, यथास्थिति, निचले पद या पदों पर कतिपय न्यूनतम सेवावधि विहित की गई है और पात्रता के क्षेत्र में अपेक्षित संख्या में पात्र व्यक्ति उपलब्ध नहीं हैं तो ऐसी विहित न्यूनतम सेवावधि सरकार द्वारा प्रशासनिक विभाग में सरकार के कार्मिक विभाग से परामर्श करके यथास्थिति, उक्त निचले पद या पदों के लिए अधिकथित परिवीक्षा अवधि को छोड़कर उपयुक्त रूप से पचास प्रतिशत तक शिथिल की जा सकेगी ।"

(जोर देने के लिए रेखांकित)

19. नियम 4 का परिशीलन करने से यह दर्शित होता है कि संबंधित प्राधिकारी को विभिन्न सेवा नियमों के अधीन किसी पद को प्रोन्नति द्वारा भरने के लिए उपलब्ध शिथिलीकरण की शक्ति को इस शर्त के साथ विनियमित करने की ईप्सा की गई है कि विहित न्यूनतम सेवावधि विहित विस्तार तक उपयुक्त रूप से शिथिल की जा सकेगी यदि पात्रता के क्षेत्र में अपेक्षित संख्या में पात्र व्यक्ति उपलब्ध नहीं होते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि दलील यह है कि यद्यपि शिथिल करने की शक्ति उपलब्ध है तथापि, परिषद् ने ऐसी शक्ति का प्रयोग करके त्रुटि की है क्योंकि पात्रता के क्षेत्र में पहले ही तीन पात्र व्यक्ति उपलब्ध थे । तथापि, कहीं भी यह अभिवाक् नहीं किया गया है और न ही यह तर्क दिया गया है कि ऐसी शक्ति का प्रयोग करने के लिए पात्र व्यक्तियों की अपेक्षित संख्या कितनी होगी । इस संबंध में, विनियमों से भी कुछ स्पष्ट नहीं होता है । इस पहलू पर, परिषद्

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"Rule 4. Relaxation in qualifying service – In case a post is filled by promotion and for such promotion a certain minimum length of service is prescribed on the lower post or posts, as the case may be, and the required number of eligible persons are not available in the field of eligibility, such prescribed minimum length of service may be suitably relaxed upto fifty percent by the Government in the Administrative Department in consultation with the Personnel Department of the Government, excluding the period of probation as laid down for the said lower post or posts, as the case may be."

(Emphasis Supplied)

द्वारा प्रधान सचिव, उत्तर प्रदेश प्रशासन, आवासन और योजना अनुभाग-II को भेजे गए तारीख 23 नवम्बर, 2010 के पत्र का परिशीलन करने से यह प्रकट होता है कि उत्तर प्रदेश पात्रता सूची नियम, 1986 (लोक सेवा आयोग के बाहरी क्षेत्र के पद पर प्रोन्नति) के नियम 4 के अनुसार, जहां प्रोन्नति के लिए पर्याप्त व्यक्ति पात्र हैं वहां नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा ज्येष्ठतम अभ्यर्थियों की एक सूची तैयार की जाएगी जिसमें रिक्तियों की संख्या के यथासंभव तीन गुणज किन्तु कम से कम आठ व्यक्ति रखे जाएंगे । इसके पश्चात्, उस पत्र में शिथिलीकरण को शासित करने वाले 2006 के नियमों के नियम 4 के प्रति निर्देश किया गया है जिसमें वह सीमा नियत की गई है जिस तक शिथिलीकरण प्रदान किया जा सकता है । उपर्युक्त तथ्यों की पृष्ठभूमि में देखने पर नरसिंह प्रसाद की अपील में दी गई दलील, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, निराधार पाई गई है । परिषद् ने राज्य सरकार के पत्र के अनुसार कार्यवाही की और अनुज्ञेय सीमा तक शिथिलीकरण प्रदान किया यद्यपि इस कार्यवाही के परिणामस्वरूप भी केवल छह अभ्यर्थियों को विचार में लेने का क्षेत्र विस्तारित हुआ । **अरविन्द कुमार टी. तिवारी** (उपर्युक्त) वाले मामले में निर्णय के पूर्व उद्धृत पैरा 10 में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि नियम सशक्त करते हैं तो ऐसा शिथिलीकरण अनुज्ञेय है किन्तु इस संबंध में सतर्क किया है कि ऐसी शक्ति का प्रयोग न्यायौचित्यपूर्ण कारणों से किया जाना चाहिए और इसका प्रयोग केवल किसी व्यष्टि को फायदा पहुंचाने के लिए मनमाने रूप से नहीं किया जाना चाहिए ।

20. चूंकि वर्तमान मामला ऐसा नहीं है जिसमें चयन प्रक्रिया प्रारंभ होने के पश्चात् नियमों में संशोधन किया गया है बल्कि न्यूनतम सेवावधि के बारे में अर्हता को शिथिल करने के लिए शक्ति का प्रयोग मात्र है इसलिए तथ्य संबंधी इन प्रश्नों की जांच करना आवश्यक नहीं है कि चयन प्रक्रिया कब आरंभ की गई थी, अर्थात् क्या अर्हता के शिथिलीकरण के पश्चात् या पूर्व या क्या चयन प्रक्रिया आरंभ भी हुई थी अथवा नहीं । तथापि, चूंकि विरोधी पक्षकारों ने इस मुद्दे पर हमारे समक्ष दलील दी है इसलिए यह अवेक्षा करना लाभप्रद होगा कि इस मामले में मुख्य इंजीनियर के पद पर नियमित प्रोन्नति के लिए उपयुक्त अभ्यर्थी का चयन करने की प्रक्रिया कुछ ऐसी सिविल अपीलों के लंबित होने के कारण आरंभ नहीं की जा सकी थी जिनमें विभिन्न सेवाओं में प्रोन्नति के मामले में आरक्षण संबंधी उपबंधों को चुनौती दिए जाने के कारण नियमित प्रोन्नति के संबंध में

यथापूर्व स्थिति बनाए रखने का आदेश प्रवर्तन में था । उसी कारण से, इस न्यायालय ने तारीख 27 मार्च, 2012 के आदेश द्वारा भी विस्तृत चयन प्रक्रिया आरंभ करने का निदेश दिया किन्तु चयनित अभ्यर्थी को प्रश्नगत पद का अतिरिक्त प्रभार प्रदत्त करके स्थानापन्न व्यवस्था करने के लिए ही निदेश दिया । तारीख 27 अप्रैल, 2012 को लंबित सिविल अपीलों में निर्णय किए जाने के कारण ऊपर उल्लिखित अड़चन दूर हो जाने के पश्चात् ही संबंधित प्राधिकारी नियमित प्रोन्नति के लिए चयन प्रक्रिया आरंभ करने के लिए स्वतंत्र हुए । इससे पूर्व आरंभ की गई चयन प्रक्रिया, जैसा कि उल्लेख किया गया है, स्थानापन्न व्यवस्था करने के लिए ही थी । तारीख 27 मार्च, 2012 के आदेश में इस न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया था कि अतिरिक्त प्रभार धारण करने के लिए चयन हो जाने पर चयनित पदधारी को नियमित प्रोन्नति के मामले में कोई फायदा प्रदान नहीं होगा । इन तथ्यों की पृष्ठभूमि में देखने पर हमें परिषद् की ओर से दी गई इस दलील में सार प्रतीत होता है कि चयन प्रक्रिया तारीख 27 अप्रैल, 2012 के पश्चात् ही प्रारंभ की जा सकती थी । परिषद् की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता ने बोर्ड की तारीख 23 अगस्त, 2012 की बैठक के संबंध में स्पष्टीकारक टिप्पण में इस बारे में उपयोगी रूप से इंगित किया है । उस टिप्पण के पैरा 5 में यह उल्लेख किया गया है कि मुख्य इंजीनियर के पद पर नियमित प्रोन्नति का मामला सरकार के समक्ष विचारार्थ लंबित है जिसने पांच वर्ष की पात्रता शर्त को शिथिल करने के लिए सुझाव दिया था और उस पैरा के अंत में यह सुझाव दिया गया था कि शिथिलीकरण के प्रस्ताव को बोर्ड से पारित कराने के पश्चात् प्रशासनिक विभाग का अनुमोदन अभिप्राप्त किया जाए और इसके पश्चात् ही आवश्यक प्रोन्नति करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा सकेगा । इस प्रस्ताव की मंजूरी की प्रत्याशा करते हुए उस स्पष्टीकारक टिप्पण में नौ अधीक्षण इंजीनियरों के ब्यौरे तारीख 1 जनवरी, 2012 को उनके अनुभव सहित भी दिए गए थे । इन तथ्यों और परिस्थितियों में यह प्रकट होता है कि उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके गलती की है कि मुख्य इंजीनियर के पद पर नियमित प्रोन्नति के लिए चयन प्रक्रिया पहले ही प्रारंभ की जा चुकी थी । सरकार को इस प्रयोजनार्थ अभी समुचित समिति का गठन करना था और पात्र अभ्यर्थियों की सूची को भी तब तक अंतिम रूप नहीं दिया गया था जब राज्य सरकार के निदेशों के अनुसार

शिथिलीकरण का मुद्दा उठाया गया था । उच्च न्यायालय ने स्थानापन्न व्यवस्था करने की प्रक्रिया को पद को नियमित आधार पर भरने के लिए चयन करने की प्रक्रिया मानकर गलती की है ।

21. उच्च न्यायालय ने जिस एकमात्र शेष आधार को महत्व दिया है उसका संबंध अभिकथित रूप से अपीलार्थी राजेन्द्र कुमार अग्रवाल को फायदा पहुंचाने के लिए शिथिलीकरण की शक्ति के असद्भाविक या अनुचित प्रयोग करने के प्रश्न से था । श्री मजीठा ने इस प्रश्न पर हमारा ध्यान यह दर्शित करने के लिए रिट याचिका के अभिवचनों की ओर दिलाया कि किसी भी प्राधिकारवान व्यक्ति के विरुद्ध कोई तथ्यात्मक असद्भावना का अभिकथन नहीं किया गया था और न ही ऐसे प्राधिकारी को असद्भावना के अस्पष्ट सुझावों का उत्तर देने के लिए भी नाम से आलिप्त किया गया था । वास्तव में, **बिहार राज्य और एक अन्य** बनाम **पी. पी. शर्मा, आईएएस और एक अन्य**[1], **एम. वी. थिम्मैया और अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग और अन्य**[2] और **जसबीर सिंह छाबड़ा और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[3] वाले मामलों के निर्णयों का अवलंब लेकर यह ठीक ही दलील दी गई थी कि परिषद् के किसी सदस्य या राज्य सरकार के किसी भी अधिकारी को नामतः आलिप्त किए जाने के अभाव में और मात्र अस्पष्ट और तत्वरहित प्राख्यानों के आधार पर असद्भाविकता का कोई मामला साबित नहीं किया जा सकता है जिससे कि परिषद् द्वारा नियम 20 के अधीन शिथिलीकरण की शक्ति का प्रयोग करने के संबंध में लिए गए विनिश्चयों को अविधिमान्य ठहराया जा सके ।

22. प्रत्युत्तर में, विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री उपाध्याय ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय के समक्ष दलीलें यह अभिकथित और दर्शित करके कि शिथिलीकरण की शक्ति का प्रयोग राजेन्द्र कुमार अग्रवाल के प्रभाव के कारण उसे पात्रता प्रदान करने के अननुज्ञेय और अनुचित उद्देश्य को पूरा करने के लिए किया गया था, विधि की दृष्टि से दुर्भावना दर्शाने मात्र के लिए दी गई थीं । उसने **आर. एस. गर्ग** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[4] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय के पैरा 11 और पैरा 25 का

---

[1] (1992) सप्ली. 1 एस. सी. सी. 22.

[2] (2008) 2 एस. सी. सी. 119.

[3] (2010) 4 एस. सी. सी. 192.

[4] (2006) 6 एस. सी. सी. 430.

अवलंब लिया । उस निर्णय के पैरा 11 में, इस न्यायालय ने सेवा की अन्य शर्तों के शिथिलीकरण के लिए सुसंगत नियम की अवेक्षा की । उस नियम में सेवा की ऐसी शर्तों का शिथिलीकरण अनुज्ञात था, जिनके कारण किसी विशिष्ट मामले में न्यायसंगत और साम्यापूर्ण रीति में कार्यवाही करने के संबंध में असम्यक् कठिनाई कारित होती थीं । इसके पश्चात्, न्यायालय ने तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि पात्रता कसौटी को ऐसे किसी व्यक्ति को समायोजित करने के लिए शिथिल किया गया था जिसे असम्यक् कठिनाई की बात तो दूर कोई भी कठिनाई नहीं थी । न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि वास्तव में शिथिलीकरण के कारण उन व्यक्तियों को असम्यक् कठिनाई कारित हुई होगी जो फायदाग्राही व्यक्ति से ज्येष्ठ थे । न्यायालय ने पैरा 25 में "विधितः दुर्भाव" और "तथ्यतः दुर्भाव" की संकल्पना के बीच अंतर को स्पष्ट किया । इस बात पर जोर दिया गया था कि किसी अप्राधिकृत प्रयोजन के लिए जिस कार्रवाई का सहारा लिया जाता है उसका अर्थान्वयन विधितः दुर्भाव के रूप में किया जाएगा ।

23. जहां तक प्रस्तुत मामले का संबंध है, हम यह दर्शित करने के लिए कोई सामग्री नहीं पाते हैं कि राज्य सरकार या परिषद् ने किसी अप्राधिकृत या अप्रत्यक्ष प्रयोजन के लिए विनियम 20 के अधीन शक्ति का प्रयोग करने का आश्रय लिया था । यह अभिकथन स्पष्टतः गलत है कि ऐसा केवल राजेन्द्र कुमार अग्रवाल के फायदे के लिए किया गया था क्योंकि शिथिलीकरण तीन अधिकारियों के लिए फायदाप्रद था जो कि सभी नरसिंह प्रसाद से ज्येष्ठ थे । इस अभिकथन का समर्थन करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि राज्य सरकार या परिषद् द्वारा किसी राजनैतिक या किसी अन्य व्यक्ति के प्रभाव के कारण लिए गए निर्णय के लिए राजेन्द्र कुमार अग्रवाल उत्तरदायी था । हमारी राय में, शिथिलीकरण की शक्ति का प्रयोग परिषद् के हित में था क्योंकि मुख्य इंजीनियर का पद, जैसा कि इस न्यायालय ने पूर्ववर्ती कार्यवाही में अभिनिर्धारित किया है, पर्याप्त महत्व वाला एकमात्र पद है । सापेक्ष रूप से ज्येष्ठ व्यक्तियों को सम्मिलित करके विचार के दायरे का विस्तारण करने से पात्र व्यक्तियों के बृहत्तर समूह में से अत्यधिक योग्य व्यक्ति का चयन करने में समर्थ बनाकर लोक हेतु का ही फायदा होगा । अतः, मामले के तथ्यों के आधार पर हमारी यह सुविचारित राय है कि उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालकर त्रुटि की है कि शिथिलीकरण किन्हीं संदिग्ध कारणों से या राजेन्द्र कुमार अग्रवाल को फायदा पहुंचाने के लिए किया गया था ।

24. आलिप्त प्रत्यर्थी – अनिल कुमार जैन – की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री डी. के. गर्ग ने यह दलील दी कि आक्षेपित निर्णय को विनिर्दिष्ट रूप से कोई चुनौती नहीं दी गई है जिसके द्वारा अनिल कुमार जैन की रिट याचिका भी मंजूर की गई थी । इस दलील की अवेक्षा करने की आवश्यकता इसे नामंजूर करने के लिए है । संपूर्ण सामान्य निर्णय को हमारे समक्ष चुनौती दी गई है और चूंकि उक्त आवेदक को पहले ही आलिप्त किया गया था इसलिए ऐसी चुनौती को ग्रहण करने के मार्ग में कोई विधिक अड़चन नहीं है ।

25. हमारे विचार-विमर्श और निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए हमारे पास यह अभिनिर्धारित करके कि विनियमों के अधीन शिथिलीकरण की शक्ति सदैव उपलब्ध थी और उसका प्रयोग ऐसी रीति में किया गया है जिसमें कोई हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है, उच्च न्यायालय के अपीलाधीन निर्णय और आदेश को अपास्त करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है । हम परिषद् और राज्य सरकार को यह निदेश देते हैं कि पात्र अभ्यर्थियों में से सबसे उपयुक्त अभ्यर्थी का चयन करने की प्रक्रिया को शीघ्र निपटाया जाए और परिषद् में मुख्य इंजीनियर के रिक्त पद को अविलंब आठ सप्ताह के भीतर विधि के अनुसार भरा जाए । राजेन्द्र कुमार अग्रवाल द्वारा फाइल की गई अपीलें मंजूर की जाती हैं और नरसिंह प्रसाद द्वारा फाइल की गई अपील खारिज की जाती है । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील सं. 9091-9092 मंजूर की गई और
अपील सं. 9093 खारिज की गई ।

जस.

[2015] 1 उम. नि. प. 40

मोफिल खां और अन्य

बनाम

झारखंड राज्य

9 अक्तूबर, 2014

मुख्य न्यायमूर्ति एच. एल. दत्तू, न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल और न्यायमूर्ति अरुण मिश्रा

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 – हत्या – संपत्ति विवाद – अपीलार्थियों द्वारा अपने ही परिवार के सदस्यों की हत्या किया जाना – निचले न्यायालयों द्वारा कम आयु वाले अभियुक्तों को आजीवन कारावास और अपीलार्थियों को मृत्यु दंड दिया जाना – अपीलार्थी ने अपने भाई के परिवार को पूरी तरह सोच-समझकर संपत्ति हड़पने के लिए बर्बरतापूर्ण रीति में हत्या की – ऐसी स्थिति में अपीलार्थियों के मृत्यु दंड का लघूकरण आजीवन कारावास में नहीं किया जा सकता और अल्प आयु के अभियुक्तों को मृत्यु दंड से कम दंड दिए जाने का लाभ अपीलार्थियों को नहीं दिया जा सकता ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 302 – हत्या – विरल से विरलतम मामला – बिना प्रकोपन के हत्याएं करना – अपीलार्थियों का समाज के लिए संकट बनना – सुधार और पुनर्वास की संभावना न होना – अपराध की गंभीरता का दंड के अनुपाती होना – अपीलार्थियों ने अपने कृत्य के परिणामों को समझने के बावजूद जान-बूझकर अपराध करने की योजना बनाकर बिना किसी प्रकोपन के अपने ही परिवार के आठ सदस्यों की हत्या की, अतः यह मामला विरल से विरलतम मामले की कोटि में आएगा ।

इस मामले में, अपीलार्थियों ने संपत्ति का लोभ करते हुए अपने भाई के संपूर्ण परिवार की हत्या करके नष्ट कर दिया । विचारण न्यायालय द्वारा सभी अभियुक्तों का विचारण किया गया जिसमें अपीलार्थियों सहित चार अभियुक्तों को मृत्यु दंड से और शेष अभियुक्तों को आजीवन कारावास से दंडादिष्ट किया गया । इस आदेश से व्यथित होकर सभी अभियुक्तों और अपीलार्थियों ने झारखंड उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की । उच्च न्यायालय ने मृत्यु

दंड अधिनिर्णीत किए गए चार अभियुक्तों में दो अभियुक्तों अर्थात् सद्दाम खां और वकील खां के दंड को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया किन्तु अपीलार्थियों के मृत्यु दंड को कायम रखा । उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय से व्यथित होकर अपीलार्थियों ने मृत्यु दंडादेश को चुनौती देते हुए उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की है । उच्चतम न्यायालय ने निचले दोनों न्यायालयों के निर्णयों को उचित और मान्य ठहराते हुए अपीलार्थियों की अपील खारिज कर दी । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में अपीलार्थियों ने जिन न्यूनकारी परिस्थितियों का अवलंब लिया है, न्यायालय उनसे सहमत नहीं हैं । वर्तमान मामले में अपीलार्थियों की आयु सुसंगत परिस्थिति नहीं है । अपराध कारित किए जाने के समय पर वे प्रौढ़ आयु के थे और उनकी समझ-बूझ उनके कृत्यों के प्रभाव को समझने के लिए पर्याप्त थी, अतः इस न्यायालय द्वारा माफ किया जाना वांछित नहीं है । दूसरी बात यह है कि न्यायालय इस परिस्थिति से सहमत नहीं हैं कि अपीलार्थियों का एक परिवार है जिसमें वृद्ध माता-पिता आदि हैं, विशेषकर इस तथ्य के आधार पर कि स्वयं माता-पिता ने अपीलार्थियों के इस कृत्य के विरुद्ध साक्ष्य दिया है कि उन्होंने अपने भाइयों के परिवार को नष्ट किया है और सगे नातों का अपमान किया है । तीसरी बात यह है कि मात्र यह तथ्य कि नव आयु वाले अभियुक्तों को मृत्यु दंड से कम दंड अधिनिर्णीत किया गया है, मृत्यु दंड का आजीवन कारावास में लघूकरण करने का आधार नहीं बन सकता । अल्प आयु के बच्चों, चलने-फिरने में अशक्त बच्चे सहित किसी परिवार के असहाय सदस्यों पर अपराध किया गया है और संपूर्ण परिवार को नष्ट करने के लिए अभियुक्त-अपीलार्थियों ने जिस प्रकार योजना बनाई है उससे मृत्यु दंड दिया जाना न्यायोचित हो जाता है । अंतिम बात यह है कि अपीलार्थियों द्वारा अपराध कारित किए जाने की रीति, संपत्ति प्राप्त करने के लिए मृतक हनीफ खां के छोटे और अबोध बच्चों की नृशंस हत्या किए जाने और अपराध कारित करने के लिए उचित दिन का चयन किए जाने से यह दलील निर्बल हो जाती है कि अपीलार्थियों के सुधर जाने और उनका पुनर्वास होने की संभावना है । (पैरा 62)

न्यायालय की सुविचारित राय में "विरल से विरलतम" मामला वहां बनता है जहां कोई अभियुक्त समाज के सौहार्द के लिए संकट, भय और अनैतिक हो । विशेषकर ऐसे मामलों में जिनमें अभियुक्त प्रकोपन के

परिणामस्वरूप कृत्य नहीं करे, न ही अचानक कोई कृत्य करे अपितु सोच-समझकर और अपने कृत्य के संभावित परिणामों को समझने के बावजूद जान-बूझकर अपराध करने की योजना बनाए, उन मामलों में मृत्यु दंडादेश अत्यंत समुचित दंड हो सकता है । न्यायालय इस बात से जागरूक है कि दांडिक विधि के अधीन यह अपेक्षा की गई है कि प्रत्येक आपराधिक कृत्य की अपराधिता के अनुसार दंड उपबंधित करने में आनुपातिकता के नियम का कड़े रूप में पालन इस बात को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए कि समाज की संतुष्टि के लिए दंड अधिनिर्णीत न किए जाने का क्या प्रभाव होगा । दंडादेश की आनुपातिकता के उक्त सिद्धांत और चार अबोध अप्राप्तवय बच्चों और एक विकलांग बच्चे सहित आठ व्यक्तियों का मानव वध करने जैसे कार्य जिसे "निर्मानुष कार्य" कहा जा सकता है और जिससे संपूर्ण परिवार नष्ट हो गया है को ध्यान में रखते हुए न्यायालय इसी निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अपीलार्थियों के अपराध के दौर्जन्य के आधार पर मृत्यु दंड से कम दंड नहीं दिया जाना चाहिए । (पैरा 63)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[1994]	(1994) 2 एस. सी. सी. 220 : **धनंजॉय चटर्जी** उर्फ **धन्ना** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ;	57
[1991]	(1991) 3 एस. सी. सी. 471 : **सेवक पेरुमल** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	61
[1987]	(1987) 3 एस. सी. सी. 80 : **महेश** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	60
[1979]	(1979) 4 एस. सी. सी. 719 : **रतन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ।	58

निर्दिष्ट निर्णय

[2014]	(2014) 4 एस. सी. सी. 375 : **सुनील दत्त शर्मा** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार** ;	47
[2014]	(2014) 4 एस. सी. सी. 317 : **सुशील शर्मा** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार** ;	50

[2014]	(2014) 4 एस. सी. सी. 292 : **महेश धनजी शिन्दे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	49
[2014]	(2014) 4 एस. सी. सी. 69 : **अनिल** उर्फ **एन्थनी अरिकस्वामी जोसफ** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	51
[2014]	(2014) 3 एस. सी. सी. 421 : **बिरजू** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	48
[2012]	(2012) 4 एस. सी. सी. 289 : **बृजेन्द्र सिंह** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	53
[2011]	(2011) 14 एस. सी. सी. 401 : **अजीत सिंह हरनाम सिंह गुजराल** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	21
[2011]	(2011) 12 एस. सी. सी. 56 : **हरेश मोहनदास राजपूत** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	44
[2011]	(2011) 7 एस. सी. सी. 437 : **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **गौरक्षा अम्बाजी अदसुल** ;	52
[2011]	(2011) 7 एस. सी. सी. 125 : **सुदाम** उर्फ **राहुल कनीराम जाधव** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	44
[2011]	(2011) 4 एस. सी. सी. 80 : **सुरेन्द्र कोहली** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** ;	44
[2011]	(2011) 2 एस. सी. सी. 490 : **रबीन्द्र कुमार पाल** उर्फ **दारा सिंह** बनाम **भारत गणराज्य** ;	44
[2010]	(2010) 12 एस. सी. सी. 118 : **अजय कुमार पाल** बनाम **झारखंड राज्य** ;	25
[2010]	(2010) 10 एस. सी. सी. 611 : **सुंदर सिंह** बनाम **उत्तरांचल राज्य** ;	27
[2010]	(2010) 9 एस. सी. सी. 567 : **सी. मणियप्पन** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	28

[2010]	(2010) 9 एस. सी. सी. 1 : **अतबीर** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार** ;	24
[2009]	(2009) 4 एस. सी. सी. 736 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **सत्तन** उर्फ **सत्येन्द्र और अन्य** ;	22
[2009]	(2009) 9 एस. सी. सी. 495 : **जगदीश** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	29
[2008]	(2008) 4 एस. सी. सी. 434 : **प्रजीत कुमार सिंह** बनाम **बिहार राज्य** ;	30
[2007]	(2007) 3 एस. सी. सी. 1 : **राम सिंह** बनाम **सोनिया** ;	31
[2005]	(2005) 6 एस. सी. सी. 342 : **करन सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	34
[2005]	(2005) 4 एस. सी. सी. 165 : **साइबन्ना** बनाम **कर्नाटक राज्य** ;	33
[2005]	(2005) 3 एस. सी. सी. 793 : **होलीराम बोरदोली** बनाम **असम राज्य** ;	32
[2003]	(2003) 12 एस. सी. सी. 199 : **प्रवीण कुमार** बनाम **कर्नाटक राज्य** ;	37
[2003]	(2003) 8 एस. सी. सी. 224 : **राजस्थान राज्य** बनाम **खेराज राम** ;	35
[2003]	(2003) 1 एस. सी. सी. 648 : **ओम प्रकाश** बनाम **उत्तरांचल राज्य** ;	36
[2001]	(2001) 3 एस. सी. सी. 673 : **सुरेश** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	38
[2000]	(2000) 8 एस. सी. सी. 457 : **नारायण चेतनराम चौधरी** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	40
[2000]	(2000) 7 एस. सी. सी. 455 : **रामदेव चौहान** बनाम **असम राज्य** ;	39

[1999]	(1999) 8 एस. सी. सी. 325 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **धर्मेन्द्र सिंह** ;	41
[1998]	(1998) 4 एस. सी. सी. 531 : **गोविन्दसामी** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	23
[1998]	(1998) 3 एस. सी. सी. 625 : **रौनी** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	42
[1998]	(1998) 3 एस. सी. सी. 455 : **शोभित चमार** बनाम **बिहार राज्य** ;	26
[1996]	(1996) 6 एस. सी. सी. 271 : **सुरजा राम** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	43
[1983]	(1983) 3 एस. सी. सी. 470 : **माछी सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य** ;	17
[1980]	(1980) 2 एस. सी. सी. 684 : **बचन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ;	17
[1973]	(1973) 1 एस. सी. सी. 20 : **जगमोहन सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य ।**	17

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 1795.

2008 की दांडिक अपील सं. 1103 में झारखंड उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के तारीख 2 जुलाई, 2009 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — श्री बिमल रॉय जड (ए. सी.)

प्रत्यर्थी की ओर से — सर्वश्री रतन कुमार चौधरी और जयेश गौरव

आदेश

यह अपील 2008 के मृत्यु निर्देश सं. 1 और 2008 की दांडिक अपील सं. 1103 में झारखंड उच्च न्यायालय, रांची द्वारा पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई है । आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा उच्च न्यायालय ने 2007 के सेशन विचारण मामला सं. 128 में जिला और सेशन न्यायाधीश लोहरदगा द्वारा पारित किए गए तारीख 1 अगस्त, 2008

के दोषसिद्धि के उस निर्णय की पुष्टि की गई है जिसके द्वारा और जिसके अधीन विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने दो अभियुक्त-अपीलार्थियों को और दो अन्य अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में 'दंड संहिता' कहा गया है) की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 449 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया है । उच्च न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलार्थियों के संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 5 अगस्त, 2008 के मृत्यु दंडादेश की पुष्टि करते हुए निर्णय को इस संबंध में उपांतरित करना उचित समझा है कि अभियुक्त सद्दाम खां और वकील खां के दंडादेश को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया जाए ।

2. आरंभ में विद्वान् न्यायमित्र श्री बिमल रॉय जड ने दो अभियुक्त-अपीलार्थियों की ओर से केवल विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दंडादेश को चुनौती दी है जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है और उन्होंने केवल दंड की अधिनिर्णीत मात्रा के संबंध में ही अपनी दलीलें दी हैं । अतः, इस अपील का विस्तार केवल समुचित दंडादेश के निर्धारण तक ही सीमित है कि अभियुक्त-अपीलार्थियों को कितना दंड अधिनिर्णीत किया जाए । इसके अतिरिक्त, अन्य अभियुक्त व्यक्तियों ने वर्तमान मामले में हमारे समक्ष अपील नहीं की है, इसमें इसके पश्चात् की गई चर्चा केवल वर्तमान अपील के निपटारे के लिए सुसंगत तथ्यों तक ही सीमित होगी ।

3. संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि तारीख 6 जून, 2007 को लगभग 8.30 बजे अपराह्न में हनीफ खां (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'मृतक' निर्दिष्ट किया गया है) नाम का व्यक्ति ग्राम मकंदू, झारखंड की मस्जिद में नमाज पढ़ रहा था । अभियुक्त-अपीलार्थी और अन्य व्यक्ति जो कोई और नहीं अपितु मृतक के भाई और भतीजे हैं, उसके पास आए और तलवार, तंगी, भुजाली और फरसा जैसे तेज धार वाले हथियारों से हमला करने लगे । अभियुक्तों द्वारा कारित की गई क्षतियों से मृतक की मृत्यु हो गई । अभियुक्त और अन्य व्यक्ति मृतक को घटनास्थल पर छोड़कर मृतक के घर की ओर चल दिए और अपने पिता (मृतक) के चीखने की आवाज सुनकर मृतक के पुत्र गुफरान खां **उर्फ** पाला और इमरान खां बाहर निकलकर गली में आ गए । अभियुक्त-अपीलार्थियों ने उपर्युक्त हथियारों से उन भाइयों पर हमला किया जिनके पास कोई भी हथियार नहीं था और इस हमले के कारण दो भाई नीचे गिर गए और उनके मकान के सामने ही उनकी मृत्यु हो गई । इसके पश्चात् अभियुक्त-अपीलार्थी और अन्य व्यक्तियों ने मृतक के मकान में प्रवेश किया और

मृतक की पत्नी कसुमन बीबी और उसके चार पुत्र अर्थात् अनीस खां (आयु लगभग 5 वर्ष) दानिश खां (आयु लगभग 8 वर्ष) यूसुफ खां (विकलांग, आयु लगभग 18 वर्ष) और मेहरबान खां (आयु लगभग 12 वर्ष) की हत्या कर दी । छह व्यक्तियों की हत्या कारित करने के पश्चात्, अभियुक्त-अपीलार्थियों ने उनकी माता जैनब खातून (अभि. सा. 2) सहित परिवार के अन्य सदस्यों को धमकी दी कि जो कोई भी पुलिस को इस घटना के बारे में सूचित करेंगे उनका भी यही हाल होगा और इसके पश्चात् भूमि से संबंधित कुछ कागजात, पासबुक, आभूषण आदि लेकर चले गए ।

4. तारीख 7 जून, 2007 को लगभग 6 बजे पूर्वाह्न में मृतक का पिता गफ्फार खां (अभि. सा. 1) सूचना मिलने पर ग्राम में पहुंचा और उसने मस्जिद में पड़ा हुआ मृतक का शव देखा, उसके पौत्र अर्थात् गुफरान खां **उर्फ** पाला और इमरान खां के शव मकान के सामने पड़े हुए थे और उसकी बहू कसुमन बीबी का शव और कसुमन के चार पुत्रों के शव मकान के अंदर पड़े हुए थे । वहां पर उसकी पत्नी अभि. सा. 2 ने उसे बताया कि किस प्रकार अभियुक्त-अपीलार्थियों ने अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर यह अपराध कारित किया है । इसी दौरान ग्राम के चौकीदार ने टेलीफोन द्वारा इस घटना के संबंध में पुलिस को सूचित किया जिसके पश्चात् पुलिस थाने के रोजनामचे में प्रविष्टि की गई और थाने का भारसाधक अधिकारी शंभू नाथ सिंह (अभि. सा. 13) घटनास्थल पर पहुंचा और उसने इत्तिलाकर्ता (अभि. सा. 1) का फर्द बयान अभिलिखित किया । इसके पश्चात्, 2007 का आपराधिक मामला सं. 80 रजिस्ट्रीकृत किया गया और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तैयार की गई । पुलिस प्राधिकारियों ने इस मामले का अन्वेषण किया और आठ मृतकों के शवों की मृत्यु समीक्षा की और मृत्यु समीक्षा रिपोर्टें तैयार कराईं और इसके पश्चात् शवों को शवपरीक्षण के लिए भेज दिया गया । अन्वेषण के दौरान अन्वेषक अधिकारी ने घटनास्थल पर तीन जगह से रक्तरंजित मिट्टी प्राप्त की और मस्जिद से एक प्लास्टिक की चटाई बरामद की जिस पर रक्त लगा हुआ था और एक अन्य अभियुक्त अर्थात् करीमन खां **उर्फ** करी खां के मकान से रक्तरंजित तंगी बरामद की और इन सभी वस्तुओं को प्रदर्शों के रूप में अभिगृहीत किया ।

5. इस घटना का कारण अभियुक्त-अपीलार्थियों और मृतकों के बीच संपत्ति विवाद था ।

6. अन्वेषण पूरा होने पर, अभियुक्त-अपीलार्थियों और अन्य व्यक्तियों

के विरुद्ध आरोप विरचित किए गए । अभियुक्त-अपीलार्थियों ने दोषी होने से इनकार किया और इस प्रकार मामला विचारण के लिए सुपुर्द कर दिया गया ।

7. अभियोजन पक्ष ने प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अभि. सा. 2 सहित 13 साक्षियों की परीक्षा की है । अभियोजन पक्ष ने दस्तावेजी साक्ष्य प्रदर्श-1 से 9/5 तक प्रस्तुत किए हैं और तात्विक वस्तुओं को 'I' और 'II' के रूप में चिह्नांकित किया है जबकि प्रतिरक्षा पक्ष ने चार साक्षियों की परीक्षा की है और साक्ष्य के रूप में प्रदर्श 'ए' से 'ई' को चिह्नांकित किया है ।

8. अभि. सा. 1, मृतक हनीफ खां और अभियुक्त-अपीलार्थियों का पिता है । यद्यपि वह इस घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है फिर भी उसने पक्षकारों के बीच विवाद की उत्पत्ति के संबंध में साक्ष्य दिया है और अभि. सा. 2 के साक्ष्य का समर्थन किया है । अभि. सा. 2, मृतक हनीफ खां की माता है और घटना के समय वह मकान के एक अन्य कमरे में थी और इस प्रकार वह एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है । इस साक्षी ने उस दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि में हुए घटनाक्रम, अभियुक्त-अपीलार्थियों की शनाख्त और पक्षकारों के बीच विवाद की उत्पत्ति के संबंध में अभिसाक्ष्य दिया है । अभि. सा. 3 और अभि. सा. 6 स्वतंत्र साक्षी हैं जो घटना के समय मस्जिद में नमाज पढ़ रहे थे और अभि. सा. 5 उस मस्जिद का इमाम है जो कि इस घटना का साक्षी है । इन साक्षियों के परिसाक्ष्य से अभियोजन पक्षकथन का इस बाबत समर्थन होता है कि अभियुक्त-अपीलार्थियों ने मृतक हनीफ खां पर तलवार और भुजाली से अंधाधुंध हमला किया था । अभि. सा. 4 उसी ग्राम का निवासी है और उसने यह साक्ष्य दिया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी घटना की रात्रि में ग्राम में मौजूद थे और उस दिन उन्होंने एक अन्य ग्राम में चल रहे विवाह आयोजन में भाग नहीं लिया था जहां पर अभि. सा. 1 सहित अन्य ग्रामवासी मौजूद थे । मृतक हनीफ खां के पड़ोसी अर्थात् अभि. सा. 7 ने अभियोजन पक्षकथन की संपुष्टि की है कि अभियुक्त-अपीलार्थियों ने मृतक के दोनों पुत्रों पर तलवार और भुजाली से उसके मकान के सामने हमला किया था । चिकित्सा व्यवसायी (अभि. सा. 8) ने जिसने शवों का शवपरीक्षण किया है, मृत्यु का कारण मृतकों के मस्तिष्क जैसे नाजुक अंगों से रक्तस्राव होना और आघात बताया है ।

9. अभियुक्त-अपीलार्थियों ने अपनी प्रतिरक्षा में उन पर लगाए गए आरोपों से इनकार किया है ।

10. विचारण न्यायालय ने तथ्यों का परिशीलन करने और अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य की विस्तार से संवीक्षा करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि अभियुक्त-अपीलार्थियों ने जो तलवार भुजाली से लैस थे, अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर मस्जिद में प्रवेश किया और मृतक की हत्या की, उसके मकान के सामने उसके दो पुत्रों की हत्या की और इसके पश्चात् उन्होंने मकान में प्रवेश किया जहां पर उन्होंने मृतक की पत्नी और विकलांग बालक सहित चार अप्राप्तवय बच्चों की हत्या की । न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलार्थियों के इस प्रतिरक्षा अभिवाक् को खारिज कर दिया और अभि. सा. 4 के परिसाक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि घटना की रात्रि में वे ग्राम में मौजूद थे । इसके अतिरिक्त, न्यायालय ने प्रत्यक्षदर्शी साक्षी (अभि. सा. 2) के परिसाक्ष्य को विश्वासप्रद और विश्वसनीय पाया है । अतः, अभियुक्त-अपीलार्थियों का अपराध कारित करने का हेतु अभिलेख से स्पष्ट हो जाता है, अभियुक्त-अपीलार्थियों ने पूर्व-चिंतन करके एक के बाद एक हत्याएं की हैं और उन्होंने इस अपराध के कारित किए जाने का वह दिन चुना है जब ग्रामवासी विवाह के आयोजन में सम्मिलित होने के लिए एक अन्य ग्राम गए हुए थे, न्यायालय ने इससे यह निष्कर्ष निकाला है कि अभियुक्त-अपीलार्थी 8 व्यक्तियों की हत्या के दोषी हैं और न्यायालय ने उन्हें दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 449 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया । विचारण न्यायालय ने उन्हें मृत्यु दंड के लिए दंडादिष्ट करते हुए गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों को अभिलिखित किया है ।

11. उपर्युक्त निर्णय और आदेश से व्यथित होकर अभियुक्त-अपीलार्थियों ने दो अन्य व्यक्तियों के साथ 2008 की दांडिक अपील सं. 1103 में उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष आवेदन किया है ।

12. उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि विचारण न्यायालय ने अपीलार्थियों को दोषसिद्ध करने और दंडादिष्ट करने में कोई त्रुटि कारित नहीं की है और तदनुसार जहां तक अपीलार्थियों का संबंध है उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय और आदेश की पुष्टि की है । तथापि, उच्च न्यायालय ने दो अभियुक्तों के दंडादेश को मृत्यु दंड से आजीवन कारावास में उपांतरित किया है ।

13. उपर्युक्त दोषसिद्धि और दंडादेश से व्यथित होकर, अभियुक्त अपीलार्थियों ने हमारे समक्ष यह अपील प्रस्तुत की है ।

14. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् न्यायमित्र ने केवल दंडादेश के प्रश्न पर ही दलीलें दी हैं । उन्होंने यह निवेदन किया है कि न तो अपीलार्थियों ने पूर्व में कोई अपराध कारित किया है और न ही वे जघन्य अपराधी हैं । उन्होंने यह दलील दी है कि अपीलार्थी मध्य आयु के व्यक्ति हैं और उनका एक परिवार है तथा उनके वृद्ध माता-पिता (अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2) हैं और इस प्रकार उन्हें मृत्यु दंड देने से उन पर आश्रित उक्त व्यक्ति संकट में पड़ जाएंगे । उन्होंने यह भी दलील दी है कि अपीलार्थियों के सुधरने की भी संभावना है और उन्हें उनके जीवन से वंचित नहीं करना चाहिए अपितु उन्हें सुधरने का अवसर दिया जाना चाहिए विशेषकर ऐसी स्थिति में जब उनके जीवन का एक लंबा समय शेष है ।

15. राज्य के विद्वान् काउंसेल ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश को सफलतापूर्वक न्यायोचित ठहराया है ।

16. हमने अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य और दोनों विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों पर गहराई से विचार किया है । हमने निचले न्यायालयों के निर्णयों और आदेशों का सावधानीपूर्वक परिशीलन भी किया है ।

17. न्यायालय की शक्ति का प्रयोग करने के लिए उद्देशात्मक और युक्तियुक्त आधार को समझने और न्यायशास्त्र संबंधी सिद्धांतों का उपयोग किए जाने के लिए मृत्यु दंड दिया जाना गंभीर शैक्षणिक और न्यायिक चर्चा का विषय बन गया है । इस संबंध में **जगमोहन सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] और **बचन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[2] वाले मामलों में किए गए इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ के और **माछी सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[3] वाले मामले में किए गए इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों के निर्णय ऐसे मार्गदर्शक मामले हैं जिनमें दंडादेश दिए जाने के संबंध में इस न्यायालय द्वारा कतिपय सिद्धांतों को गठित किया गया है । इस न्यायालय के निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा बनाए गए व्यापक सिद्धांतों के अंतर्गत ऐसा मार्गदर्शन किया गया है जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि न्यायालय में निहित विवेकाधिकार अनियन्त्रित बेलगाम नहीं है ।

18. उपर्युक्त विनिश्चयों में इस न्यायालय ने "विरल से विरलतम" मामले का सिद्धांत सृजित किया है और यह सिद्धांत मामले के तथ्यों और

---

[1] (1973) 1 एस. सी. सी. 20.
[2] (1980) 2 एस. सी. सी. 684.
[3] (1983) 3 एस. सी. सी. 470.

परिस्थितियों के आधार पर गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों तथा उनके बीच संतुलन का परिशीलन करके ही सृजित किए गए हैं । एक सिद्धांत के रूप में, दंडादेश दिए जाने का महत्वपूर्ण पहलू यह है कि न्यायालय द्वारा प्रत्येक मामले पर स्वतंत्र रूप से विचार किया जाना चाहिए और वही दंडादेश दिया जाना चाहिए जो अभियुक्त की अपराधिता के प्रति समुचित और समानुपाती हो । न्यायालय के लिए यह उचित नहीं होगा कि वह अन्य बातों को पूर्णतया अनदेखा करते हुए किसी एक बात के आधार पर दंड की मात्रा नियत करे । अर्थात् इन दोनों परिस्थितियों को अलग-अलग रखकर संतुलित रूप से विचार करना ही आवश्यक नहीं है अपितु न्यायालय को चाहिए कि वह इन दोनों परिस्थितियों के संचयी प्रभाव को ध्यान में रखे ताकि आपराधिक न्यायतंत्र को बेहतर बनाया जा सके और दंडादेश पारित किए जाने के संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 354(3) के अधीन यथा अनुध्यात प्रभावी और अर्थपूर्ण तर्कणा का उपबंध किया जा सके । इस न्यायालय के उत्तरवर्ती निर्णयों द्वारा निम्न व्यापक सिद्धांत विरचित किए गए हैं :–

"**गुरुतरकारी परिस्थितियां**

1. हत्या, बलात्संग, सशस्त्र डकैती, व्यपहरण आदि जैसे जघन्य अपराध ऐसे अभियुक्त द्वारा कारित किए गए हों जो पूर्व में गंभीर अपराधों के लिए दोषसिद्ध किए गए हों ।

2. अपराध ऐसे अपराधी द्वारा कारित किया गया हो जो उसी दौरान अन्य किसी गंभीर अपराध के कारित किए जाने में अंतर्वलित हो ।

3. अपराध इस आशय से कारित किया गया हो ताकि जनसाधारण भयभीत हो जाए और वह अपराध सार्वजनिक स्थान पर ऐसे हथियारों से कारित किया गया हो कि एक से अधिक व्यक्तियों के जीवन के लिए संकटमय हो जाएं ।

4. हत्या का अपराध मुक्तिधन या किसी भी प्रकार का धनीय लाभ पाने के लिए कारित किया गया हो ।

5. भाड़े पर की गई हत्याएं ।

6. ऐसे अपराध जो अमानवता के आधार पर आहत को यातना देते हुए कारित किए गए हों ।

7. अपराध ऐसे व्यक्ति द्वारा कारित किया गया हो जो अपराध कारित किए जाने के समय पर विधिपूर्ण अभिरक्षा में हो ।

8. हत्या या कोई अपराध ऐसे व्यक्ति को रोकने के लिए किया गया हो जो विधिवत रूप से किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने या उसे विधिक निरोध के अंतर्गत अभिरक्षा में रखने जैसे अपने कर्तव्य का निर्वहन कर रहा हो । उदाहरणार्थ, ऐसे व्यक्ति की हत्या जिसने अपने कर्तव्य का निर्वहन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 43 के अधीन किया हो ।

9. ऐसी परिस्थिति जिसमें अपराध बड़ी संख्या में किया गया हो अर्थात् संपूर्ण परिवार की हत्या की गई हो या किसी समुदाय विशेष के परिवार के सदस्यों की हत्या की गई हो ।

10. ऐसी परिस्थिति जिसमें आहत निर्दोष, असहाय या वह ऐसा व्यक्ति हो जो संबंधों और सामाजिक नियमों पर विश्वास करे जैसे कोई बालक, असहाय महिला, कोई पुत्री या कोई भतीजी जो अपने पिता/चाचा के साथ रहती है और ऐसे विश्वसनीय व्यक्ति द्वारा किए गए अपराध का शिकार बनती है ।

11. जब हत्या ऐसे हेतु के लिए कारित की गई हो जो पूर्णतया दुराचारिता और नीचता से संबंधित हो ।

12. जब हत्या बिना किसी प्रकोपन के सोच-समझकर की गई हो ।

13. जब अपराध इतनी बर्बरता से किया गया हो जो न केवल न्यायिक विवेक को आघात पहुंचाए अपितु समाज के मन को भी क्षतिग्रस्त करे ।

न्यूनकारी परिस्थितियां

1. ऐसी रीति और परिस्थितियां जिनमें और जिनके अंतर्गत अपराध कारित किया गया है, जैसे अत्यंत मानसिक और भावनात्मक प्रकोपन या इन सभी परिस्थितियों के प्रतिकूल घोर प्रकोपन ।

2. अभियुक्त की आयु एक सुसंगत विचार है किंतु यह स्वयं में निश्चायक संघटक नहीं है ।

3. अपराध में पुनः आलिप्त न होने की संभावना और अभियुक्त के सुधर जाने और उसका पुनर्वास होने की संभाव्यता ।

4. अभियुक्त की दशा से यह प्रकट होना कि उसकी मानसिक स्थिति ठीक नहीं थी और अभियुक्त की ऐसी शिथिलता से आपराधिक आचरण से संबंधित परिस्थितियों को समझने में उसका अक्षम होना ।

5. ऐसी परिस्थितियां जिनसे जीवन के सामान्य अनुक्रम में अभियुक्त का व्यवहार संभव प्रतीत हो और निरंतर तंग किए जाने के कारण उन परिस्थितियों से अभियुक्त का मानसिक संतुलन विकृत हो जाए या वास्तव में मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उसका आचरण उस सीमा तक विकृत हो जाए कि उसको यह विश्वास होने लगे कि उसने जो अपराध कारित किया था वह नैतिक रूप से न्यायोचित था ।

6. ऐसे मामले जिनमें न्यायालय साक्ष्य के समुचित मूल्यांकन के आधार पर यह मत व्यक्त करे कि अपराध सोच-समझकर कारित नहीं किया गया है और मृत्यु एक अन्य अपराध कारित किए जाने के परिणामस्वरूप हुई है और यह अर्थ लगाया जा सकता है कि यह अपराध मूल अपराध के कारित किए जाने के परिणामस्वरूप हुआ है ।

7. ऐसे मामले जिनमें एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के परिसाक्ष्य का अवलंब लेना पूर्णतया अनुचित हो चाहे अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त का दोष साबित क्यों न कर दिया हो । दंड देने की प्रक्रिया से संबंधित प्रश्नों का समाधान करते समय न्यायालय को कतिपय सिद्धांतों का अनुसरण करना चाहिए और कोई अधिरोपण या मृत्यु दंड अधिरोपित किए जाने के संबंध में ये सिद्धांत उपरोक्त मताभिव्यक्तियों के अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण संघटक हैं ।

सिद्धांत

1. न्यायालय को इस पर विचार करना चाहिए कि क्या यह मामला मृत्यु दंड अधिरोपित किए जाने के लिए विरल से विरलतम मामले की कोटि में आता है ।

2. न्यायालय की राय में, आजीवन कारावास जैसे अन्य किसी दंड का अधिरोपित किया जाना पूर्णतया अनुचित हो और इससे न्याय नहीं होता हो ।

3. आजीवन कारावास नियम और मृत्यु दंड अपवाद हो ।

4. अपराध की प्रकृति और परिस्थितियों तथा सभी सुसंगत परिस्थितियों को सावधानीपूर्वक दृष्टिगत करते हुए आजीवन कारावास का दंड अधिरोपित किए जाने के विकल्प का प्रयोग नहीं किया जा सकता हो ।

5. न्यायालय को अपराध की रीति (नियोजित या अन्यथा) और ढंग (बर्बरता और अमानवता आदि की सीमा) जिसमें अपराध कारित किया गया है और वे परिस्थितियां जिनके कारण जघन्य अपराध कारित किया गया है, पर विचार करना चाहिए ।"

19. हम यह दोहराते हैं कि "विरल से विरलतम" मामले के सिद्धांत के अंतर्गत हत्या के मामलों को जघन्य या कम जघन्य अपराध के वर्गों में नहीं बांटा जा सकता है । दोनों अपराधों में सिद्धांतों के रूप का अंतर नहीं है अपितु तथ्यात्मक स्थिति के भाव के आधार पर सिद्धांत लागू किए जाते हैं । अपराध की गंभीरता के आधार पर दंडादेश की कठोरता अधिरोपित की जाती है ताकि विधि का सम्मान बना रहे, अपराध के लिए उचित दंड दिया जा सके, आपराधिक आचरण को उचित रूप से भयोपरतिकारी बनाया जा सके और समाज को ऐसे अपराधों से संरक्षित रखा जा सके । इससे दंडात्मक, भयोपरतिकारी और संरक्षात्मक तीनों उद्देश्य पूरे होंगे ।

20. वर्तमान मामले में तथ्यात्मक स्थिति पर विचार करने के पूर्व दंडादेश संबंधी प्रक्रिया के मामले में इस न्यायालय के न्यायिक विनिश्चयों पर संक्षेप में विचार करना समीचीन होगा जिनमें संपूर्ण परिवार की हत्या की गई है और जिनमें अभियुक्तों ने आयु, आपराधिक पूर्ववृत्त न होने और बच्चे एवं वृद्ध माता-पिता आदि जैसे आश्रितों के आधार पर कम दंड के लिए अभिवाक् किया है और सुधार और पुनर्वास की संभाव्यता को उपदर्शित करते हुए मृत्यु दंड का लघूकरण किए जाने की ईप्सा की है ।

21. **अजीत सिंह हरनाम सिंह गुजराल** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपनी पत्नी, एक पुत्र और दो पुत्रियों को आग में जलाकर की गई हत्या के लिए दोषसिद्ध किया गया था । इस न्यायालय ने इस मामले को विरल से विरलतम मामले की कोटि में रखते हुए उसे मृत्यु दंड अधिनिर्णीत किया । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि जीवित व्यक्तियों की आग में जलाकर हत्या करना एक भयानक कृत्य है जिससे आहत को अत्यधिक

[1] (2011) 14 एस. सी. सी. 401.

पीड़ा होती है । जब एक व्यक्ति जिसका कर्तव्य है कि वह अपने परिवार की रक्षा करे, क्रूर और बर्बरतापूर्ण ढंग से उनकी हत्या कर देता है, तब ऐसे व्यक्ति के सुधर जाने या उसका पुनर्वास होने की संभावना समाप्त हो जाती है ।

22. **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **सत्तन** उर्फ **सत्येन्द्र और अन्य**[1] वाले मामले में अभियुक्त ने असहाय महिला और बच्चों सहित परिवार के छह सदस्यों की क्रूरता से, बर्बरतापूर्ण और पाश्विक ढंग से हत्या की है । इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि यह अपराध आनुपातिक रूप से बहुत बड़ा है और इससे न्यायालय की अंतरात्मा को ठेस पहुंची है । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि अभियुक्त के नृशंस कृत्य के लिए केवल एक ही दंड दिया जा सकता है और वह मृत्यु दंड है ।

23. **गोविन्दसामी** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[2] वाले मामले में अभियुक्त ने पांच हत्याएं कीं जिसके लिए विचारण न्यायालय द्वारा उसे दोषमुक्त कर दिया गया किंतु उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया गया और मृत्यु दंडादेश दिया गया । अपील किए जाने पर इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के दंडादेश की पुष्टि की और यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी ने अपने चाचा की संपत्ति हड़पने के लिए उनके संपूर्ण परिवार (एक पुत्र को छोड़कर जो कोयम्बटूर में पढ़ाई कर रहा था) की नृशंस हत्या की और जिससे न्यायिक अंतरात्मा को ठेस पहुंची और उस मामले में मृत्यु दंड से कम दंड दिया जाना उचित नहीं था ।

24. **अतबीर** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार**[3] वाला ऐसा मामला है जिसमें अभियुक्त ने अपने सौतेले नातेदारों की संपूर्ण संपत्ति हड़पने के लिए हत्या की । इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि यद्यपि अभियुक्त की आयु सुसंगत समय पर 25 वर्ष थी, फिर भी संपत्ति के लिए उसके लालच और वासना, अपने सौतेले परिवार के निहत्थे सदस्यों को चारों ओर से दरवाजे बंद करके उनकी हत्या करना और प्रकोपन या प्रतिरोध का कोई भी कारण न होना जैसे तथ्यों पर विचार करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि अपीलार्थी ने बर्बरता और निर्दयता से तीनों आहतों को उनके नाजुक अंगों पर उस समय तक चाकू से 37 वार किए हैं जब तक कि प्रत्येक की मृत्यु न हो गई ; ऐसे राक्षसी कार्य के

---

[1] (2009) 4 एस. सी. सी. 736.

[2] (1998) 4 एस. सी. सी. 531.

[3] (2010) 9 एस. सी. सी. 1.

लिए मृत्यु दंड से कम दंड नहीं दिया जा सकता ।

25. इसी प्रकार **अजय कुमार पाल** बनाम **झारखंड राज्य**[1] वाले मामले में घरेलू नौकर ने भोजन में कीटनाशक दवा मिलाकर घर वालों को भोजन परोसा और तेज धार वाले हथियार से उन पर हमला किया और उसके पश्चात् मकान में आग लगा दी । इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि इन तीन व्यक्तियों की बिना अचानक प्रकोपन के की गई हत्या से संपूर्ण परिवार नष्ट हो गया और यह अपराध तैयारी और पूर्व-चिंतन के साथ कारित किया गया है और इस प्रकार मृत्यु दंड अधिरोपित किया जाना चाहिए ।

26. **शोभित चमार** बनाम **बिहार राज्य**[2] वाले मामले में दो अभियुक्तों ने इस न्यायालय के समक्ष आवेदन किया है जिन्होंने डकैती और दो बच्चों सहित परिवार के सभी छह पुरुष सदस्यों की हत्या की है । एक अभियुक्त के संबंध में अभियोजन पक्ष उस हथियार को न्यायालय में प्रस्तुत नहीं कर सका जिससे अपराध कारित किया गया था किंतु अन्य अभियुक्त के संबंध में अभियोजन पक्ष द्वारा अग्न्यायुध का प्रयोग किया जाना और हेतु साबित किया गया है । इस न्यायालय ने इस पर विचार करते हुए कि पहला अभियुक्त दूसरे अभियुक्त से संबंधित नहीं है, पहले अभियुक्त के मृत्यु दंड का लघूकरण कर दिया दूसरे अभियुक्त के मृत्यु दंड की पुष्टि कर दी ।

27. **सुंदर सिंह** बनाम **उत्तरांचल राज्य**[3] वाले मामले में पांच व्यक्तियों की हत्या की गई और केवल एक महिला जीवित बची जिसे 70% दाह क्षतियां कारित हुईं । इस मामले में अभियुक्त घटनास्थल पर पेट्रोल के डिब्बे, तलवार, पिस्तौल जिसमें दो कारतूस थे, लेकर घटनास्थल पर पहुंचा जिससे पूर्व-चिंतन उपदर्शित होता है । यह हत्या नृशंस, नारकीय और पैशाचिक रीति में मकान के दरवाजे बंद करके की गई थी जिससे यह साबित होता है कि वास्तव में अभियुक्त का आशय कमरे के अंदर सभी व्यक्तियों को जलाना था । अभियुक्त के पक्ष में कोई भी न्यूनकारी परिस्थिति न होने पर मृत्यु दंड कायम रखा गया है ।

28. **सी. मणियप्पन** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[4] वाले मामले में तीन

---

[1] (2010) 12 एस. सी. सी. 118.
[2] (1998) 3 एस. सी. सी. 455.
[3] (2010) 10 एस. सी. सी. 611.
[4] (2010) 9 एस. सी. सी. 567.

असहाय, निर्दोष, निहत्थी छात्राओं की मृत्यु हो गई है और विधिविरुद्ध जमाव के तीन सदस्यों द्वारा बस में आग लगाए जाने से उन्हें 20 दाह क्षतियां कारित हुईं और विधिविरुद्ध जमाव के इन सदस्यों द्वारा रास्ता बंद करके जन आंदोलन किया जा रहा था । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यह विरल से विरलतम मामले की कोटि में आने वाला मामला है जिसमें पूर्व योजना बनाई गई है और प्रकोपन का अभाव है तथा निश्चित रूप से यह ऐसा मामला है जिसमें अभियुक्त समाज के शांत वातावरण के लिए एक संकट है और इस प्रकार मृत्यु दंड ही सबसे उचित दंड होगा ।

29. **जगदीश** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में अभियुक्त ने अपनी पत्नी और पांच बच्चों (आयु 1 वर्ष से 16 वर्ष) की अपने ही मकान में हत्या की । यह हत्या विशिष्ट रूप से भयोपरतिकारी थी क्योंकि हमलावर की स्थिति अत्यंत प्रभावी और विश्वसनीय थी क्योंकि वह अपने परिवार का मुखिया था । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि हमलावर के विरुद्ध गुरुतरकारी और न्यूनकारी परिस्थितियों के बीच संतुलन पर गहराई से विचार करके यह पाया गया कि यह मामला "विरल से विरलतम" मामले की कोटि में आएगा, इसलिए मृत्यु दंड अधिनिर्णीत किए जाने की पुष्टि की गई ।

30. **प्रजीत कुमार सिंह** बनाम **बिहार राज्य**[2] वाले मामले में अभियुक्त ने, जो कि चार वर्ष से सशुल्क अतिथि (पेइंग गेस्ट) के रूप में रह रहा था और वह 500/- रुपए भोजन के लिए दिया करता था, तीन निर्दोष और असहाय बच्चों की नृशंस हत्या कर दी जिनकी आयु 8, 15 और 16 वर्ष थी और इस अभियुक्त ने उनके पिता (इत्तिलाकर्ता) और माता की भी हत्या करने का प्रयास किया जिनको अनेक क्षतियां कारित हुईं किंतु वे बच गए । यह अपराध अत्यंत नृशंस, नारकीय और अमानवीय प्रकृति का माना गया है क्योंकि यह अपराध बिना किसी प्रकोपन या हेतु के उस समय कारित किया गया है जब वे बच्चे सो रहे थे और उन्हें अनेक छिन्न घाव कारित किए गए हैं, अपराध की गंभीरता पर विचार करते हुए न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अभियुक्त की मानसिकता किसी भी प्रकार से सुधर नहीं सकती और उसे मृत्यु दंडादेश दिया ।

---

[1] (2009) 9 एस. सी. सी. 495.

[2] (2008) 4 एस. सी. सी. 434.

31. **राम सिंह** बनाम **सोनिया**[1] वाले मामले में एक विवाहित दम्पत्ति ने पत्नी के पिता, माता, बहिन, सौतेले भाई और 45 दिन, 2½ वर्ष और 4 वर्ष के बच्चों सहित उसके संपूर्ण परिवार की हत्या इस हेतु के साथ कर दी कि पत्नी अपने पिता से यह चाहती थी कि वे उसके सौतेले भाई और उसके परिवार को संपत्ति न दे । इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि चूंकि ये हत्याएं क्रूरतापूर्ण, पूर्व-नियोजित और नारकीय रीति में उस समय की गई हैं जब आहत सो रहे थे और आहतों की ओर से कोई भी प्रकोपन नहीं किया गया था, इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अभियुक्तों में मानवता का भाव है ही नहीं और उनमें किसी भी प्रकार से सुधार नहीं आ सकता, अतः यह मामला विरल से विरलतम मामले की कोटि में आता है जिसमें मृत्यु दंड अधिरोपित किया जाना चाहिए ।

32. **होलीराम बोरदोली** बनाम **असम राज्य**[2] वाले मामले में अभियुक्त आहत के मकान पर लाठियों और अन्य हथियारों से लैस होकर आए और उक्त मकान की बांस की दीवार पर पथराव करने लगे । इसके पश्चात् उन्होंने बाहर से मकान का दरवाजा बंद किया और मकान में आग लगा दी । आहत का पुत्र, पुत्री और पत्नी किसी प्रकार मकान से बाहर आए, अभियुक्तों ने उन्हें दबोच लिया और पुनः आग में फेंक दिया । इसके पश्चात्, बड़े भाई को भी पकड़ लिया जो आहत के मकान से कुछ दूरी पर एक अन्य मकान में रहता था और उसे घसीटकर अभियुक्त के आंगन में लाया गया जहां पर अभियुक्तों ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए । यह अभिनिर्धारित किया गया कि भले ही अपराध का कोई स्पष्ट हेतु न हो और प्रकोपन न हो फिर भी यह अत्यंत बर्बरतापूर्ण ढंग से कारित किया गया है ताकि ग्राम में कोई भी अभियुक्तों के आतंक को चुनौती न दे सके, अतः मृत्यु दंड देना उचित पाया गया ।

33. **साइबन्ना** बनाम **कर्नाटक राज्य**[3] वाले मामले में अभियुक्त ने ऐसे चाकू (जंबिया) से जो आमतौर पर घरों में नहीं पाया जाता है, उस समय अपनी द्वितीय पत्नी और लगभग एक वर्ष आयु की पुत्री की पूर्व-नियोजित हत्या की जब वे आहत सो रहे थे और इस घटना के दौरान अभियुक्त पैरोल पर कारावास से बाहर आया था । न्यायालय ने अभियुक्त के पक्ष में किसी भी न्यूनकारी परिस्थिति के होने का कोई भी न्यायोचित कारण नहीं

---

[1] (2007) 3 एस. सी. सी. 1.

[2] (2005) 3 एस. सी. सी. 793.

[3] (2005) 4 एस. सी. सी. 165.

पाया, इस प्रकार इस मामले को विरल से विरलतम मामले की कोटि में रखते हुए मृत्यु दंड अधिरोपित करना न्यायोचित समझा ।

34. **करन सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में दो अपीलार्थियों ने तीन व्यक्तियों का पीछा किया जो किसी संपत्ति विवाद में अंतर्वलित थे और अपीलार्थियों ने कुल्हाड़ी और अन्य हथियारों से बर्बरतापूर्ण रीति में उनकी हत्या कर दी । इसके पश्चात् वे उनके मकान में गए और मात्र इस आशय से दो बच्चों की हत्या कर दी ताकि पूरे परिवार को नष्ट किया जा सके । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह मामला विरल से विरलतम मामले की कोटि में आता है और अपीलार्थियों को मृत्यु दंडादेश दिया ।

35. **राजस्थान राज्य** बनाम **खेराज राम**[2] वाला एक ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण मामला है जिसमें अभियुक्त ने जानबूझकर अपने दो अबोध बच्चों, पत्नी और पत्नी के भाई की उस समय हत्या कर दी जब वे रात्रि में सो रहे थे । न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया है कि ऐसे घृणित कार्य के लिए अभियुक्त के मन में कोई भी पश्चाताप नहीं था जोकि उसके अपराध कारित किए जाने के पश्चात् शांतिपूर्वक 'हुक्का' पीने से साबित होता है चूंकि यह घटना पूर्व-नियोजित थी इसलिए घटनाओं और परिस्थितियों की संपूर्ण शृंखला का विश्लेषण करने के पश्चात् केवल यही निष्कर्ष निकलता है कि अभियुक्त ने अत्यंत क्रूर और अमानवीय रीति में अपराध कारित किया है और यह हत्या अत्यंत नृशंस, राक्षसी, नारकीय और भयानक ढंग से की गई है ।

36. **ओम प्रकाश** बनाम **उत्तरांचल राज्य**[3] वाले मामले में अभियुक्त एक घरेलू नौकर था जिसने नौकरी से निकाले जाने के बदले में प्रतिशोध की भावना से डकैती कारित करने के लिए अपने नियोजक के परिवार के तीन सदस्यों की हत्या कर दी और चौथे सदस्य की हत्या करने का प्रयास किया । इस मामले में मृत्यु दंडादेश कायम रखा गया ।

37. **प्रवीण कुमार** बनाम **कर्नाटक राज्य**[4] वाले मामले में अभियुक्त को आहतों में से एक आहत अर्थात् उसकी चाची के घर में रहने की जगह इसके बावजूद दे दी गई कि चाची का परिवार बड़ा था और चाची ने

---

[1] (2005) 6 एस. सी. सी. 342.
[2] (2003) 8 एस. सी. सी. 224.
[3] (2003) 1 एस. सी. सी. 648.
[4] (2003) 12 एस. सी. सी. 199.

अभियुक्त को सत्यनिष्ठा के साथ दर्जी के रूप में वहां रहने का अवसर दिया । अभियुक्त ने एक छोटे बच्चे सहित नातेदारों और अपने शुभचिंतकों की पूर्व-नियोजित और सोच-समझकर उस समय हत्याएं कीं जब वे सो रहे थे । अपराध कारित करने के पश्चात् अभियुक्त लगभग चार साल के लिए न्यायिक अभिरक्षा से फरार हो गया जिससे यह उपदर्शित होता है कि उसे कोई भी पश्चाताप नहीं था और न ही उसके पुनर्वास की कोई संभावना थी । इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि इस मामले में मृत्यु दंड जैसा घोर दंड दिया जाना न्यायोचित होगा ।

38. **सुरेश** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में भूमि को लेकर अभियुक्त के भाई और अप्राप्तवय बच्चों सहित उसके परिवार के सदस्यों की उस समय कुल्हाड़ी और गंडासे से उनकी खोपड़ी और गर्दन काटकर हत्या कर दी गई जब वे रात्रि में गहरी नींद में सो रहे थे और इन हत्याओं को नृशंस और नारकीय अपराध माना गया जिसमें मृत्यु दंड के अतिरिक्त कोई अन्य दंड दिया जाना अन्यायोचित था ।

39. **रामदेव चौहान** बनाम **असम राज्य**[2] वाले मामले में अभियुक्त ने चोरी करने के हेतु से दो असहाय महिलाओं और ढाई वर्ष के एक बच्चे सहित घर के चार सदस्यों की पूर्व-नियोजित रूप से बर्बरतापूर्ण उस समय हत्या कर दी जब वे सो रहे थे । अभियुक्त ने घर के एक अन्य सदस्य जो कि एक वृद्ध महिला थी और एक पड़ोसी पर भाले से हमला भी किया जब उन्होंने मकान में प्रवेश किया । न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि अपराध कारित किए जाने के समय पर अभियुक्त का अल्प आयु (22 वर्ष) होना कोई न्यूनकारी परिस्थिति नहीं है और मृत्यु दंड दिया जाना ही उचित और सही है ।

40. **नारायण चेतनराम चौधरी** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[3] वाले मामले में घर के सभी सदस्यों अर्थात् एक गर्भवती महिला और लगभग दो वर्ष की आयु के दो बच्चों सहित पांच महिलाओं की पूर्व-नियोजित रूप में सोच-समझकर नृशंस हत्या की गई, ताकि लूट और चोरी के सभी साक्ष्य को नष्ट किया जा सके और लूट और चोरी का यह अपराध दो अभियुक्तों द्वारा उस समय कारित किया गया था जब घर के पुरुष सदस्य घर से बाहर गए

---

[1] (2001) 3 एस. सी. सी. 673.

[2] (2000) 7 एस. सी. सी. 455.

[3] (2000) 8 एस. सी. सी. 457.

हुए थे । यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अभियुक्तों की अल्प आयु (20-22 वर्ष) को न्यूनकारी परिस्थिति नहीं समझा जा सकता है ।

41. **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **धर्मेन्द्र सिंह**[1] वाले मामले में प्रतिशोध की भावना से एक वृद्ध पुरुष आयु 75 वर्ष, एक महिला आयु 32 वर्ष, दो लड़के आयु 12 वर्ष और एक लड़की आयु 15 वर्ष को अनेक क्षतियां पहुंचाकर उनकी उस समय हत्या कर दी गई जब वे रात्रि में सो रहे थे । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि नृशंस और बर्बरतापूर्ण की गई हत्या को विरल से विरलतम मामले की कोटि में रखा जा सकता है और ऐसे नारकीय कृत्य के लिए मृत्यु दंडादेश ही उचित होगा ।

42. **रौनी** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2] वाले मामले में अभियुक्त मृतक का भतीजा था और इस नातेदारी के कारण उसका और उसके मित्रों का घर में आना-जाना रहता था । आहत निहत्थे थे और अपराध मृतक के परिवार की मूल्यवान वस्तुओं को लूटने के लिए कारित किया गया था । इसके पश्चात् अभियुक्त ने परिवार के तीनों सदस्यों की हत्या कर दी और अपने मामा की पत्नी के साथ बलात्संग किया जो आयु में उसकी माता के बराबर थी । मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि यह अपराध अत्यंत मानसिक या भावनात्मक विक्षोभ के कारण किया गया है क्योंकि प्रत्येक कृत्य पूर्व-नियोजित रीति में कारित किया गया है, इसलिए मृत्यु दंड कायम रखा गया ।

43. **सुरजा राम** बनाम **राजस्थान राज्य**[3] वाला मामला एक ऐसा मामला है जिसमें अपीलार्थी और मृतक के बीच केवल आवासीय कॉम्प्लेक्स के एक भाग में कांटेदार तार लगाने के संबंध में विवाद था । अपीलार्थी ने इसी कार्य के अनुसरण में अपने भाई, उसके दो अप्राप्तवय पुत्रों और वृद्ध चाची की गर्दन कस्सी से काटकर उस समय हत्या कर दी जब वे सभी सो रहे थे और अपीलार्थी ने अपने भाई की पत्नी और पुत्री की भी हत्या करने का प्रयास किया और उन्हें गंभीर क्षतियां पहुंचीं किंतु वे बच गए । इस मामले में मृत्यु दंडादेश न्यायोचित अभिनिर्धारित किया गया ।

---

[1] (1999) 8 एस. सी. सी. 325.
[2] (1998) 3 एस. सी. सी. 625.
[3] (1996) 6 एस. सी. सी. 271.

44. **हरेश मोहनदास राजपूत** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1], **रबीन्द्र कुमार पाल** उर्फ **दारा सिंह** बनाम **भारत गणराज्य**[2], **सुरेन्द्र कोहली** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[3] और **सुदाम** उर्फ **राहुल कनीराम जाधव** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[4] वाले मामलों में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि मृत्यु दंडादेश वहां अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए जहां आहत अबोध बच्चे और असहाय महिलाएं हैं विशेषकर जब अपराध अत्यंत क्रूर और अमानवीय रीति में कारित किया गया हो जो गंभीर रूप से बर्बरतापूर्ण, राक्षसी, नारकीय और प्रतिशोधकारी हो ।

45. अपराध परीक्षण, अपराधी परीक्षण और "विरल से विरलतम मामला" परीक्षण ऐसे परीक्षण हैं जिन पर इस न्यायालय द्वारा विचार किया गया है । मुख्य रूप से परीक्षण इस संबंध में किया गया है कि क्या समाज ऐसे अपराधों से घृणा करता है और क्या ऐसे अपराध समाज की अंतरात्मा को ठेस पहुंचाते हैं और क्या इससे समाज में अत्यंत क्षोभ उत्पन्न होता है । ऐसे मामले जिनसे आहत का सर्वनाश करने के लिए उस पर सोच-समझकर हमला करने और हत्या की योजना बारीकी से बनाने का पूर्व-चिंतन प्रदर्शित होता है, उनमें मृत्यु दंड अधिरोपित करना उचित माना गया है । ऐसे मामले जिनमें प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा अबोध, अप्राप्तवय बच्चों, निहत्थे व्यक्तियों, असहाय महिलाओं और वृद्धों तथा विकलांगों की बर्बरतापूर्ण हत्या की जाती है और ऐसे मामले जिनमें अत्यंत क्रूर मानसिकता रखते हुए हत्याएं की जाती हैं उनमें अभियुक्त के सुधरने की कोई संभावना दिखाई नहीं देती है, इसलिए मृत्यु दंड अधिरोपित किया जाता है । ऐसे मामले जिनमें यह सिद्ध हो जाए कि अभियुक्त जघन्य अपराधी है और उसने बर्बरतापूर्ण रीति में हत्या की है और ऐसे मामले जिनमें यह महसूस किया जाए कि ऐसे अपराधी में सुधार किए जाने या उसका पुनर्वास किए जाने की कोई संभावना नहीं है और यदि उसे स्वतंत्र छोड़ा जाए तो वह समाज के लिए संकट बनेगा, उनमें इस न्यायालय ने मृत्यु दंड की पुष्टि किए जाने के लिए संकोच नहीं किया है । कई बार ऐसा देखा गया कि बर्बरतापूर्ण की गई हत्या के मामले में जिसमें दुराचारिता और कठोरता प्रदर्शित होती है, इस न्यायालय ने ऐसे अपराधियों को भयोपरतिकारी संदेश दिया है जो निरंतर ऐसे अपराध भविष्य में भी कर

---

[1] (2011) 12 एस. सी. सी. 56.

[2] (2011) 2 एस. सी. सी. 490.

[3] (2011) 4 एस. सी. सी. 80.

[4] (2011) 7 एस. सी. सी. 125.

सकते हैं । बर्बरतापूर्ण की गई हत्या के कुछ मामलों में, इस न्यायालय ने अन्य सुसंगत संघटकों के साथ-साथ न्याय के लिए की गई समाज की पुकार पर ध्यान दिया है । यह विनिश्चित करते समय कि मृत्यु दंड अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए या नहीं, इस न्यायालय ने प्रत्येक मामले में दंडादेश की अपरिवर्तनीय प्रकृति को ध्यान में रखते हुए कई बार इस मुद्दे पर विचार किया है । इस न्यायालय ने सदैव **बचन सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा व्यक्त की गई सावधानियों को ध्यान में रखा है कि न्यायाधीशों को कभी भी घोर कठोरता से काम नहीं लेना चाहिए अपितु केवल समाज के हित के लिए ही मामले को विरल से विरलतम की कोटि में रखना चाहिए और मृत्यु दंड जैसे कड़े विकल्प का प्रयोग करना चाहिए ।

46. उक्त पहलू से संबंधित इस न्यायालय के विनिश्चयों पर विचार करने के पश्चात्, अब हम इस न्यायालय के अन्य विनिश्चयों पर विचार करेंगे जिनका अवलंब विद्वान् न्याय मित्र द्वारा लिया गया है ।

47. विद्वान् न्याय मित्र द्वारा **सुनील दत्त शर्मा** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार**[1] वाले मामले का अवलंब यह साबित करने के लिए लिया गया है कि अभियुक्त का आपराधिक पूर्ववृत्त न होने और उस पर आश्रितों के होने से न्यूनकारी परिस्थिति सिद्ध होती है जिसमें कम दंड अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए । उक्त मामले में, अभियुक्त-पति को विवाह के दो वर्ष के भीतर पत्नी की दहेज-मृत्यु कारित करने के लिए दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और उसे आजीवन कारावास का दंडादेश अधिनिर्णीत किया गया था । इस न्यायालय द्वारा उसके दंडादेश को दस वर्ष के कठोर कारावास में इस आधार पर उपांतरित किया गया कि अपराध कारित किए जाने के समय अभियुक्त की आयु 21 वर्ष थी और वह एक नवयुवक था । हमारी सुविचारित राय में अभियुक्त-पति के दंडादेश को उपांतरित करने के लिए उपर्युक्त न्यूनकारी परिस्थिति पर इस न्यायालय द्वारा जो विचार किया गया है वह वर्तमान मामले में सुसंगत नहीं है । प्रथमतः, उक्त मामला ऐसा मामला नहीं है जिसमें अभियुक्त की अपराधिता की जांच न्यूनकारी और गुरुतरकारी परिस्थितियों के संतुलन के आधार पर की गई हो ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि कारित किया गया अपराध विरल से विरलतम मामले की कोटि में आता है या नहीं ।

---

[1] (2014) 4 एस. सी. सी. 375.

48. **बिरजू** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार किया है कि अभियुक्त ऐसे अपराध में पुनः अंतर्वलित होगा या नहीं और अभियुक्त के सुधर जाने या उसका पुनर्वास किए जाने की संभावना है या नहीं । यह मामला एक वर्ष की आयु के बच्चे की हत्या से संबंधित है जो उस समय अपने पितामह के हाथों में था जब अभियुक्त ने देशी पिस्तौल से उसके सिर में गोली मारी थी जिसके लिए अभियुक्त को विचारण न्यायालय द्वारा मृत्यु दंडादेश अधिनिर्णीत किया गया और उसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई और उच्च न्यायालय ने इस आधार पर मृत्यु दंडादेश को 20 वर्ष के कठोर कारावास में उपांतरित किया कि यद्यपि अभियुक्त का आपराधिक पूर्ववृत्त है फिर भी अपराध की जघन्यता इतनी अधिक नहीं है कि यह मामला "विरल से विरलतम" मामले की कोटि में आ सके । विद्वान् न्याय मित्र ने अपनी दलील के समर्थन में निर्णय के पैरा 20 का अवलंब लिया है कि दंड संबंधी प्रक्रिया के अंतर्गत न्यायालय को चाहिए कि वह अभियुक्त द्वारा पुनः अपराध किए जाने की संभावना और उसे स्वतंत्र छोड़ दिए जाने से समाज में संकट उत्पन्न होने की संभावना के बीच संतुलन पर विचार करे ।

49. विद्वान् न्याय मित्र ने **महेश धनजी शिन्दे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए विनिश्चय का अवलंब लेने की ईप्सा की है । उक्त विनिश्चय में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि आपराधिक मामले का सार तथ्यों पर आधारित होता है और प्रत्येक मामले में तथ्य भिन्न होते हैं, इसलिए ऐसा कोई भी सूत्र नहीं बनाया जा सकता है जिसके द्वारा मामलों को "विरल से विरलतम" या अन्यथा कोटि में रखा जा सके । उक्त मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि चूकि आजीवन कारावास अधिनिर्णीत किए जाने की संभाव्यता अनापत्तिजनक रूप से निषिद्ध नहीं की गई है, इसलिए मृत्यु दंड अधिनिर्णीत नहीं किया जा सका और उसका लघूकरण कर दिया गया ।

50. **सुशील शर्मा** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार**[3] वाले मामले में अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि यद्यपि अभियुक्त-अपीलार्थी और मृतका दोनों विवाहित थे और साथ-साथ रहते थे,

---

[1] (2014) 3 एस. सी. सी. 421.
[2] (2014) 4 एस. सी. सी. 292.
[3] (2014) 4 एस. सी. सी. 317.

उनके संबंध उस समय तनावपूर्ण हो गए जब अपीलार्थी ने मृतका के चरित्र पर संदेह किया और इस आधिपत्य के परिणामस्वरूप हत्या की गई । इस न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया कि अपीलार्थी का कोई भी आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं है और वह कोई जाना-पहचाना अपराधी भी नहीं है । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि राज्य द्वारा ऐसा कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया जिससे यह संभावना उपदर्शित होती हो कि वह भविष्य में ऐसे अपराध फिर से कारित कर सकता है और अपीलार्थी का अपने वृद्ध और निर्बल माता-पिता की एक मात्र संतान होना उसके पक्ष में न्यूनकारी परिस्थिति माना गया और मृत्यु दंडादेश का आजीवन कारावास में लघूकरण किया गया ।

51. **अनिल** उर्फ **एन्थनी अरिकस्वामी जोसफ** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाला मामला एक ऐसा मामला है जिसमें अभियुक्त एक प्रभावशाली व्यक्ति था और आहत मात्र एक अबोध बालक । इस न्यायालय ने "विरल से विरलतम" के सिद्धांत के आधार पर अपराध परीक्षण, अपराधी परीक्षण और कम करने वाली तथा गुरुतरकारी परिस्थितियों का मूल्यांकन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि हत्या अत्यंत बर्बरतापूर्ण रीति में कारित की गई है जिससे न केवल न्यायिक अंतरात्मा को अपितु समाज की भावना को भी ठेस पहुंची है । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि अभियुक्त का कोई भी आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं है और उसकी आयु 42 वर्ष है, साथ ही यह तथ्य भी सामने आया कि लड़का स्वेच्छया अभियुक्त के साथ गया था न कि उसका व्यपहरण किया गया था । इसके अतिरिक्त, चूंकि संपूर्ण मामला पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित था और आमतौर पर प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के अभाव में मृत्यु दंडादेश मुश्किल से ही अधिनिर्णीत किया जाता है, इसलिए इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि पहले से भोगे गए कारावास की अवधि के अतिरिक्त 30 वर्ष का कारावास बिना किसी परिहार के भोगना अनुचित होगा ।

52. **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **गौरक्षा अम्बाजी अदसुल**[2] वाले मामले में परिवार के तीन निर्दोष सदस्यों की बर्बरतापूर्ण और नृशंस हत्याएं इस कारण की गईं कि आहतों ने भूमि और अन्य संपत्ति के विभाजन और शेयरों के आबंटन के लिए अभियुक्तों की मांग पूरी करने से इनकार कर दिया था । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि परिस्थितियां और

---

[1] (2014) 4 एस. सी. सी. 69.

[2] (2011) 7 एस. सी. सी. 437.

अपराध कारित करने की रीति से न्यायालय की न्यायिक अंतरात्मा को इस सीमा तक ठेस पहुंची कि केवल यही निष्कर्ष निकाला जा सकता था कि इस मामले में मृत्यु दंड ही अधिनिर्णीत किया जाना चाहिए । इस न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया कि यद्यपि अपराध कारित किए जाने की रीति दर्दनाक है किंतु (i) अभियुक्त ने विषैली मिठाई स्वयं अपनी पत्नी को खिलाई जिससे यह दर्शित होता है कि उसकी कुंठा और संभवतः संपत्ति के लिए उसका लालच अत्यधिक बढ़ गया था; (ii) परिवार के सदस्यों के बीच विद्वेष की तीव्रता से प्रतिशोध और बदले की भावना बढ़ गई; और (iii) उसकी पत्नी के निरंतर टीका-टिप्पण करने जैसी परिस्थितियां और तथ्य अपराध कारित किए जाने के संबंध में न्यूनकारी परिस्थितियां हैं और परिणामस्वरूप यह अभिनिर्धारित किया गया कि मृत्यु दंड अधिनिर्णीत करना एक व्यक्ति के जीवन का सर्वनाश करने की कोटि में आएगा जोकि इस मामले में उचित नहीं होगा क्योंकि यह मामला "विरल से विरलतम" मामले की कोटि में नहीं आता है ।

53. **बृजेन्द्र सिंह** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में एक व्यक्ति को अपनी पत्नी पर संदेह था कि उसके (पत्नी के) उसके पड़ोसी के साथ अनैतिक संबंध थे और उस व्यक्ति ने इस कारण अपनी पत्नी और तीन छोटे बच्चों पर उस समय मिट्टी का तेल छिड़का और आग लगाकर उनकी हत्या कर दी जब वे सो रहे थे । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यह घटना क्षण भर में घटित हो गई थी और यह पूर्व-चिन्तित नहीं थी तथा अभियुक्त ने अपराध कारित करने के पश्चात् आत्महत्या करने का प्रयास किया था और न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि संचयी रूप से विचार की गई परिस्थितियों से यह साबित होता है कि अपराध किए जाने के समय पर अभियुक्त की मानसिक अवस्था असंतुलित थी, अतः न्यायालय ने मृत्यु दंडादेश का आजीवन कारावास में लघूकरण कर दिया ।

54. विद्वान् न्याय मित्र द्वारा अवलंब ली गई निर्णय-विधि पर विचार करने के पश्चात् अब हम इस मामले की तथ्यात्मक स्थिति पर फिर से विचार करेंगे । वर्तमान मामले में अपराध कारित किए जाने का समय, स्थान और रीति अभियुक्त-अपीलार्थियों के हेतु को उपदर्शित करते हैं । अभियुक्त-अपीलार्थियों ने स्वयं अपने परिवार के सदस्यों की हत्या पास-बुक, धन और अचल संपत्ति पाने के लिए बिना किसी प्रकोपन के

---

[1] (2012) 4 एस. सी. सी. 289.

बर्बरतापूर्ण रूप से की है । उन्होंने अपराध कारित करने के लिए वह दिन चुना जब अभि. सा. 1 सहित अधिकांश ग्रामवासी बराबर वाले ग्राम में विवाह में सम्मिलित होने गए हुए थे और उन्होंने यह सुनिश्चित कर लिया था कि उनके इस आपराधिक कार्य में ग्रामवासियों की ओर से कोई भी विघ्न नहीं पड़ेगा । सबसे पहले वे मस्जिद में गए जहां मृतक नमाज पढ़ रहा था और उन्होंने तलवार और भुजाली से अंधाधुंध हमला किया । इसके पश्चात् वे उसके मकान की ओर चल दिए और उन्होंने मृतक के दो पुत्रों अर्थात् गुफरान खां और इमरान खां की हत्या कर दी जो अपने पिता के चीखने की आवाज सुनकर उसकी सहायता के लिए घर से बाहर आए थे । अभियुक्त-अपीलार्थियों ने अपने पूर्व-चिन्तन किए गए उद्देश्य को पूरा करने के लिए मृतक के मकान में बलपूर्वक घुस गए और उन्होंने कसुमन बीबी और उसके दो अप्राप्तवय बच्चों की हत्या कर दी जिनमें एक बच्चा शारीरिक रूप से अशक्त भी था । अभियुक्त-अपीलार्थियों का तलवार, तंगी, भुजाली और भाला जैसे धारदार आयुधों से लैस होकर आना और अपने परिवार के आठ सदस्यों की एक के बाद एक हत्या कर देना उनके आपराधिक कार्य को पूर्व नियोजित साबित करता है और उनके इस कृत्य से उनका राक्षसी रूप प्रतिबिम्बित होता है जिसके द्वारा उन्होंने अपने नृशंस उद्देश्य को निष्पादित किया है ।

55. अभियुक्त-अपीलार्थियों ने भूमि और धन पाने के लिए अपनी न बुझने वाली तृष्णा को मिटाने के लिए आठ निर्दोष व्यक्तियों की हत्या की है । भाइयों के बीच संबंध इतने अप्रिय हो गए थे कि अपराधी, हनीफ खां के परिवार को नष्ट करने से नहीं रुक सके और उन्होंने उसके दो छोटे बच्चों, पत्नी और चार अप्राप्तवय बच्चों की, जिनकी क्रमशः लगभग आयु 5, 8, 12 और 18 वर्ष थी, हत्या कर दी और इन बच्चों में से एक बच्चा शारीरिक रूप से अशक्त भी था । अभियुक्त-अपीलार्थियों ने घटना के समय घर में मौजूद परिवार के अन्य सदस्यों को जान से मारने की धमकी दी कि वे पुलिस को सूचित न करें, इस बात से यह पता चलता है कि अभियुक्त-अपीलार्थियों को अपने कृत्य पर कोई पश्चाताप नहीं था ।

56. एक माता के लिए यह बात अत्यंत दुखदायी है कि उसने अपने स्वयं के पुत्र को अपने भाई और उसके परिवार की हत्या करते हुए देखा है । दोनों अभियुक्त-अपीलार्थियों की माता इस मामले में एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी (अभि. सा. 2) है और उसने अभियुक्त-अपीलार्थियों के विरुद्ध अभियोजन पक्ष का समर्थन किया है । इस साक्षी के परिसाक्ष्य को

चुनौती नहीं दी गई है और उसके परिसाक्ष्य की संपुष्टि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 164 के अधीन दिए गए उसके कथन तथा अन्य साक्षियों के कथनों से भी होती है । अभिलेख से ऐसा कोई भी अन्य हेतु दर्शित नहीं होता है जिससे अभि. सा. 2 द्वारा अपने पुत्रों के विरुद्ध दिया गया कथन संदिग्ध हो सके । आमतौर पर भाई, बहिन और माता या पिता जिसने अपराध होते हुए देखा है, न्यायालय में अपने उस कथन से मुकर जाता है जो उसने अन्वेषण के दौरान (पुलिस को) दिया होता है । ऐसा प्राकृतिक प्रेम और स्नेह के कारण होता है न कि अभियुक्तों द्वारा सिखाए-पढ़ाए जाने से । ऐसे साक्षी को अभियुक्त में स्पष्ट निर्दोषिता दिखाई देती है, अतः वह उसे दंड से बचाने का प्रयास करता है । किंतु इस मामले में अभि. सा. 2 ने न केवल अभियोजन पक्ष का समर्थन किया है अपितु हत्या किए गए आधे परिवार के न्याय के लिए उसके मन में स्थिरता बनी रही है । न्यायालय का परम कर्तव्य है कि वह अपराध के आकस्मिक आहतों अर्थात् मृतक के परिवार के सदस्यों को न्याय दिलाए । अतः, समुचित और आनुपातिक दंडादेश अधिरोपित किया जाना चाहिए । एक ओर ऐसे दंडादेश से उन व्यक्तियों को सम्मान मिलेगा जो हत्या के आतंक की इस दुर्घटना से व्यक्तिगत रूप से प्रभावित हुए हैं और दूसरी ओर यह दंडादेश "आहतों के अधिकार और प्रत्यावर्तक न्याय के सिद्धांतों" के अनुसरण में होगा ।

57. **धनंजॉय चटर्जी** उर्फ **धन्ना** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि किसी भी मामले में दंड का आकलन अपराध की नृशंसता, अपराधी के आचरण और आहत के असहाय और अरक्षित अवस्था में होने पर निर्भर करता है । इसके अतिरिक्त समुचित दंडादेश का अधिरोपित किया जाना ऐसा कार्य है जिसके द्वारा न्यायालय न्याय के लिए अपराधियों के विरुद्ध की गई समाज की गुहार सुनता है और न्याय के अधीन यह अपेक्षा की गई है कि न्यायालय को ऐसा दंड अधिरोपित करना चाहिए जिससे अपराध के प्रति समाज की घृणा भी प्रतिबिम्बित होती हो । इस न्यायालय ने समुचित दंड अधिरोपित किए जाने के संबंध में न्यायालय के कर्तव्य को स्पष्ट किया है ताकि अपराध के आहतों और समाज के अधिकारों पर विचार किया जा सके ।

58. **रतन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने

---

[1] (1994) 2 एस. सी. सी. 220.

[2] (1979) 4 एस. सी. सी. 719.

भारत में आहतों के अधिकारों की संरक्षा के दुर्भाग्य पर खेद व्यक्त करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि यह हमारे न्यायशास्त्र की दुर्बलता है कि अपराध के आहत और आहतों के आश्रित विधि का सहारा नहीं ले पाते हैं । वास्तव में, हमारी विधि में आहतों के नुकसान की भरपाई नहीं हो पाती है । यह हमारी प्रक्रिया की कमी है जिसमें विधान-मंडल द्वारा सुधार किया जाना चाहिए ।

59. ऐसी अशांत सामाजिक घटनाओं के संदर्भ में हम आहतों की गंभीर पीड़ा को अनदेखा नहीं कर सकते । वास्तविकता यह है कि भारत में "आपराधिक न्यायिक सुधार" और "सिविल अधिकार आन्दोलन" ने ऐतिहासिक रूप से अभियुक्त के अधिकारों पर बहुत ध्यान दिया और अपराध के कारण आहतों पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव को उतना ही अनदेखा किया है । अपराध से सीधे आहत होने वाले लोगों को ही सहायता की आवश्यकता नहीं होती अपितु उनके परिवार और आपेक्षिक रूप से एक बड़ी सीमा तक समाज को सहारे की आवश्यकता होती है । न्यायपालिका का यह परम कर्तव्य है कि वह आहतों के अधिकारों की रक्षा उसी कर्मिष्ठता से करे जितनी अपराधियों के मामले में की जाती है ।

60. **महेश** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने समुचित दंड अधिरोपित किए जाने में अपनाए गए रियायती दृष्टिकोण की निन्दा की है और यह मत व्यक्त किया है कि स्पष्ट साक्ष्य और दानवी कृत्यों के साबित होने पर अभियुक्त को विधि के अधीन कड़े दंड से बचने के लिए अनुज्ञात करना न्याय का अवमान है । इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि कम दंड अधिनिर्णीत करने से इस देश का न्यायतंत्र संदिग्ध हो जाएगा जिसके कारण आम आदमी का न्यायालयों से विश्वास उठ जाएगा । इस न्यायालय ने वर्तमान मामले जैसे मामलों में यह दृष्टिकोण अपनाते हुए कठोरतम दंड अनुमोदित किया है कि सुधारात्मक भाषा की अपेक्षाकृत भयोपरतिकारी भाषा को अभियुक्त अच्छी तरह समझ लेता है और समाज भी उसे अधिक उचित समझता है ।

61. **सेवक पेरुमल** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह कथन किया है कि अनुचित दंडादेश अधिरोपित करने में असम्यक् सहानुभूति बरतने से न्यायतंत्र को और अधिक नुकसान होगा और

---

[1] (1987) 3 एस. सी. सी. 80.

[2] (1991) 3 एस. सी. सी. 471.

विधि की प्रभावकारिता में जनता का विश्वास कम हो जाएगा । समाज ऐसे संकटमय वातावरण में अधिक समय तक नहीं चल सकता, अतः प्रत्येक न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और उसे निष्पादित और कारित किए जाने की रीति आदि को ध्यान में रखते हुए समुचित दंड अधिरोपित करे ।

62. वर्तमान मामले में अपीलार्थियों ने जिन न्यूनकारी परिस्थितियों का अवलंब लिया है, हम उनसे सहमत नहीं हैं । वर्तमान मामले में अपीलार्थियों की आयु सुसंगत परिस्थिति नहीं है । अपराध कारित किए जाने के समय पर वे प्रौढ़ आयु के थे और उनकी समझ-बूझ उनके कृत्यों के प्रभाव को समझने के लिए पर्याप्त थी, अतः इस न्यायालय द्वारा माफ किया जाना वांछित नहीं है । दूसरी बात यह है कि हम इस परिस्थिति से सहमत नहीं हैं कि अपीलार्थियों का एक परिवार है जिसमें वृद्ध माता-पिता आदि हैं, विशेषकर इस तथ्य के आधार पर कि स्वयं माता-पिता ने अपीलार्थियों के इस कृत्य के विरुद्ध साक्ष्य दिया है कि उन्होंने अपने भाइयों के परिवार को नष्ट किया है और सगे नातों का अपमान किया है । तीसरी बात यह है कि मात्र यह तथ्य कि नव आयु वाले अभियुक्तों को मृत्यु दंड से कम दंड अधिनिर्णीत किया गया है, मृत्यु दंड का आजीवन कारावास में लघूकरण करने का आधार नहीं बन सकता । अल्प आयु के बच्चों, चलने-फिरने में अशक्त बच्चे सहित किसी परिवार के असहाय सदस्यों पर अपराध किया गया है और संपूर्ण परिवार को नष्ट करने के लिए अभियुक्त-अपीलार्थियों ने जिस प्रकार योजना बनाई है उससे मृत्यु दंड दिया जाना न्यायोचित हो जाता है । अंतिम बात यह है कि अपीलार्थियों द्वारा अपराध कारित किए जाने की रीति, संपत्ति प्राप्त करने के लिए मृतक हनीफ खां के छोटे और अबोध बच्चों की नृशंस हत्या किए जाने और अपराध कारित करने के लिए उचित दिन का चयन किए जाने से यह दलील निर्बल हो जाती है कि अपीलार्थियों के सुधर जाने और उनका पुनर्वास होने की संभावना है ।

63. हमारी सुविचारित राय में "विरल से विरलतम" मामला वहां बनता है जहां कोई अभियुक्त समाज के सौहार्द के लिए संकट, भय और अनैतिक हो । विशेषकर ऐसे मामलों में जिनमें अभियुक्त प्रकोपन के परिणामस्वरूप कृत्य नहीं करे, न ही अचानक कोई कृत्य करे अपितु सोच-समझकर और अपने कृत्य के संभावित परिणामों को समझने के बावजूद

जान-बूझकर अपराध करने की योजना बनाए, उन मामलों में मृत्यु दंडादेश अत्यंत समुचित दंड हो सकता है । हम इस बात से जागरूक हैं कि दांडिक विधि के अधीन यह अपेक्षा की गई है कि प्रत्येक आपराधिक कृत्य की अपराधिता के अनुसार दंड उपबंधित करने में आनुपातिकता के नियम का कड़े रूप में पालन इस बात को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए कि समाज की संतुष्टि के लिए दंड अधिनिर्णीत न किए जाने का क्या प्रभाव होगा । दंडादेश की आनुपातिकता के उक्त सिद्धांत और चार अबोध अप्राप्तवय बच्चों और एक विकलांग बच्चे सहित आठ व्यक्तियों का मानव वध करने जैसे कार्य जिसे "निर्मानुष कार्य" कहा जा सकता है और जिससे संपूर्ण परिवार नष्ट हो गया है को ध्यान में रखते हुए हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अपीलार्थियों के अपराध के दौर्जन्य के आधार पर मृत्यु दंड से कम दंड नहीं दिया जाना चाहिए ।

64. परिणामतः, हम अभियुक्त-अपीलार्थियों को मृत्यु दंड अधिनिर्णीत करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष और उसकी पुष्टि किए जाने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से सहमत हैं ।

65. तदनुसार, यह अपील खारिज की जाती है ।

66. रजिस्ट्री विभाग को यह निदेश दिया जाता है कि विद्वान् न्यायमित्र को 10,000/- रुपए का संदाय किया जाए ।

तदनुसार आदेश किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

अस./अनू.

[2015] 1 उम. नि. प. 72

आनंद पुजारी

बनाम

कर्नाटक राज्य

14 अक्तूबर, 2014

न्यायमूर्ति जे. चेलमेश्वर और न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 – हत्या – अपीलार्थी द्वारा अपनी माता की अभिकथित हत्या करना – मृतका द्वारा अपीलार्थी के पक्ष में निर्विवादित रूप से विल निष्पादित किया जाना – हेतु का अभाव पाया जाना – मृतका ने पालित माता के रूप में अपीलार्थी के पक्ष में पहले ही अपनी संपत्ति की विल निष्पादित कर दी थी और वह वृद्धावस्था के अंतिम पड़ाव पर थी – ऐसा हत्या करने का हेतु साबित नहीं किया गया – अतः निचले न्यायालयों द्वारा की गई अपीलार्थी की दोषसिद्धि न्यायोचित नहीं है – उसे हत्या के अपराध का दोषी नहीं ठहराया जा सकता ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 302 [सपठित भारत का संविधान, 1950 का अनुच्छेद 136] – हत्या – उच्चतम न्यायालय की हस्तक्षेप करने की शक्ति – निचले न्यायालयों द्वारा साक्ष्य का त्रुटिपूर्ण मूल्यांकन – अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अनुचित होने या असंगत साक्ष्य के आधार पर निकाले जाने की स्थिति में, उच्चतर न्यायालय को निर्णय में हस्तक्षेप करने की पूर्ण शक्ति होगी ।

इस मामले में, अपीलार्थी मृतका के घर में पालित पुत्र के रूप में कार्य करता था और मृतका और अपीलार्थी के बीच माता और पुत्र जैसे संबंध थे । अपीलार्थी ने अभिकथित रूप से गला घोंटकर मृतका की हत्या कर दी जिस पर विचारण न्यायालय द्वारा उसका विचारण किया गया जिसमें उसे हत्या के अपराध का दोषी पाया गया । इस आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी ने कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय को मान्य ठहराते हुए अपीलार्थी की अपील खारिज कर दी । उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय से व्यथित होकर अपीलार्थी ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय ने निचले दोनों न्यायालयों के निर्णय को अपास्त

करते हुए अपीलार्थी की अपील मंजूर की और उसे दोषमुक्त कर दिया । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि अपीलार्थी के हितों के संबंध में विचार करने के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू है । यह कथन किया गया है कि विल में एक शर्त रखी गई थी कि अपीलार्थी दोरथी की संपदा तभी प्राप्त कर सकेगा जब वह किसी ईसाई महिला से विवाह करेगा और अपीलार्थी, जो धर्म से हिंदू था, ईसाई लड़की से विवाह नहीं करना चाहता था । इससे एक बहुत महत्वपूर्ण बात सामने आती है कि क्या दोरथी की हत्या किए जाने से अपीलार्थी की इस दुविधा का, यदि यह मान लिया जाए कि अपीलार्थी वास्तव में इस दुविधा से ग्रसित था, समाधान हो सकता था । इसका उत्तर स्पष्ट रूप से "नहीं" ही होगा । दोरथी की मृत्यु प्राकृतिक हुई हो या अप्राकृतिक, उसके बाद ही विल प्रभावी मानी जाएगी । मृत्यु प्राकृतिक या अप्राकृतिक होने से विल में लिखी गई शर्त समाप्त नहीं हो सकती थी । अतः, इसे मुश्किल से ही अपीलार्थी द्वारा दोरथी की हत्या किए जाने का हेतु माना जा सकता है । इसके प्रतिकूल अपीलार्थी और दोरथी के बीच माता और पुत्र जैसे सौहार्द और स्नेहपूर्ण संबंधों को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी के लिए यह अत्यंत असंभावी था कि वह दोरथी की हत्या करता वह भी ऐसी स्थिति में जब दोरथी ने पहले ही अपनी संपत्ति की विल अपीलार्थी के पक्ष में निष्पादित कर दी हो । एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू को भी ध्यान में रखना चाहिए कि दोरथी वृद्धावस्था में थी और वह उच्च रक्तचाप, अवसाद और अन्य वृद्धावस्था संबंधी रोगों से पीड़ित थी । अतः ऐसी असहाय महिला की थोड़े समयपूर्व हत्या करने से कोई भी उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता था । अभिकथित बरामदगी भ्रमित करने के सिवाय कुछ नहीं है । अपीलार्थी पर संदेह करने और इसके पश्चात् उसे हत्या के मामले में आलिप्त करने के लिए जो बरामदगी दिखाई गई है न्यायालय को वह अस्वाभाविक महसूस होती है । यह अभिलेख पर उपलब्ध है कि विल, निवेश से संबंधित दस्तावेज और आभूषण अपीलार्थी को सौंपे गए थे, अतः वे अपीलार्थी के प्राधिकृत कब्जे में थे । अपीलार्थी ने इन वस्तुओं को वहां से हटाकर अन्य किसी स्थान पर नहीं रखा है । तथाकथित बरामदगी मृतका के घर से ही की गई है । यह बरामदगी सर्विस स्टेशन से की गई है जो उसी मकान में बना हुआ था जहां पर सभी रहते थे । अतः यह ऐसी परिस्थिति नहीं हो सकती जिससे प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जा सके । न्यायालय का यह मत है कि अपीलार्थी पर संदेह

करना विधिमान्य नहीं होगा । न्यायालय ने दोरथी के मानसिक रूप से अशक्त भाई रुडोल्फ के पते-ठिकाने के बारे में जांच की है । इसका उत्तर अत्यंत चकित करने वाला है । न्यायालय को यह बताया गया है कि दोरथी की मृत्यु के कुछ मास के भीतर ही उसकी मृत्यु हो गई थी । निःसंदेह, अपीलार्थी के जेल में होने के कारण रुडोल्फ की देख-रेख के लिए कोई व्यक्ति नहीं था । अपीलार्थी के गिरफ्तार किए जाने के पश्चात्, रुडोल्फ के पालित भाई एंथनी कुटिनहो (अभि. सा. 3) और अन्य भाई साइमन कुटिनहो (अमरीका निवासी) ने रुडोल्फ की देख-रेख नहीं की । (पैरा 25, 26 और 28)

इस उत्तर में न्यायालय द्वितीय मुद्दे पर विचार करेगा जो न्यायालय ने ऊपर विरचित किया है । न्यायालय का यह विचार है कि प्रथम का हमने जो उत्तर दिया है उससे अपीलार्थी को संदेह का लाभ देते हुए उसका मामला स्वयं ही दोषमुक्ति का बन जाता है । न्यायालय इस प्रश्न पर अभी भी विचार कर रहा है कि ऊपर चर्चा की गई परिस्थितियों से अपीलार्थी की निर्दोषिता दिखाई पड़ती है । (पैरा 22)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[1990]	(1990) 4 एस. सी. सी. 731 : **शाम सुन्दर** बनाम **पूरन और एक अन्य** ;	30
[1985]	(1985) 1 एस. सी. सी. 28 : **खिल्ली राम** बनाम **राजस्थान राज्य** ।	31

निर्दिष्ट निर्णय

[2009]	(2009) 11 एस. सी. सी. 141 : **महेश दत्तात्रेय तीर्थकर** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	33
[1989]	(1989) 3 एस. सी. सी. 24 : **सूर्यमूर्ति और एक अन्य** बनाम **गोविन्दस्वामी और अन्य** ।	32

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2014 की दांडिक अपील सं. 2202.

2009 की दांडिक अपील सं. 178 में कर्नाटक उच्च न्यायालय, बंगलुरू के तारीख 14 फरवरी, 2013 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री बसंत आर. (वरिष्ठ अधिवक्ता), शेखर जी. देवसा, कार्तिक अशोक और (सुश्री) शील सेठी

प्रत्यर्थी की ओर से श्री वी. एन. रघुपति

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी ने दिया ।

न्या. सीकरी – इजाजत प्रदान की जाती है ।

2. अपीलार्थी ने इस अपील द्वारा कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 14 फरवरी, 2013 के उस निर्णय की विधिकता और विधिमान्यता पर प्रश्न उठाया है जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 302 और 201 के अधीन अपराध के लिए अपीलार्थी की दोषसिद्धि कायम रखी गई है । उच्च न्यायालय ने भी सेशन न्यायाधीश, उडुपी द्वारा पारित किए गए दंडादेश की पुष्टि की है । परिणाम यह सामने आया है कि अपीलार्थी को अपनी पालक माता की अभिकथित रूप से हत्या करने के लिए आजीवन कारावास दिया गया है ।

3. यह स्वीकृत है कि निचले दो न्यायालयों द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि मृतका दोरथी कुटिनहो अपने एक छात्र (अपीलार्थी) को अपने घर ले आई और उसे एक मां की भांति प्यार दिया । मृतका की वृद्धावस्था में उसकी देख-रेख के लिए कोई व्यक्ति नहीं था क्योंकि वह अपने भाई रुडोल्फ कुटिनहो के साथ रहती थी जो मानसिक रूप से अशक्त था । दोरथी कुटिनहो को अपीलार्थी पर पूर्ण विश्वास था और उसने उसे अपनी देख-रेख के लिए रख लिया । अभिलेख से यह भी साबित हो गया है, जो कि अभियोजन का पक्षकथन है, कि अपीलार्थी ने मृतका और मृतका के भाई की पूर्णरूप से देख-रेख की थी । वह दोनों का उपचार कर रहा था । दोरथी कुटिनहो अपीलार्थी की इस निःस्वार्थ और निष्ठापूर्वक सेवा से बहुत प्रसन्न थी कि वह उस पर और उसके भाई पर पूरी तरह ध्यान देता था । क्योंकि मृतका उसे अपने पुत्र की तरह प्रेम करने लगी थी इसलिए उसने अपनी चल और अचल संपूर्ण संपत्ति की वसीयत अपीलार्थी के नाम में निष्पादित कर दी । किंतु मृतका ने उसमें एक शर्त रख दी कि भले ही अपीलार्थी हिंदू है, उसे ईसाई महिला से विवाह करना पड़ेगा । मृतका ने अपनी उक्त वसीयत में अपीलार्थी को उसके और उसके भाई रुडोल्फ

कुटिनहो के अंतिम संस्कारों को पूरा करने का अधिकार भी दिया था ।

4. बड़े दुख की बात है, तारीख 1 मार्च, 2006 को दोरथी कुटिनहो अचानक अस्पताल गई । अपीलार्थी के अनुसार, मृतका ने वक्ष में दर्द होने की शिकायत की । जब तक मृतका अस्पताल पहुंची, तब तक उसकी मृत्यु हो चुकी थी । चिकित्सक ने मृतका की चिकित्सा परीक्षा की और उसने एक प्रमाणपत्र जारी किया जिसमें उसने मृत्यु का कारण हृदय-गति रुक जाना बताया । तथापि, कुछ दिनों के बाद शवपरीक्षण किए जाने पर मृत्यु का कारण गला घोंटने के परिणामस्वरूप श्वासावरोध पाया गया । अपीलार्थी को दोरथी कुटिनहो की हत्या करने के लिए अभियुक्त के रूप में गिरफ्तार किया गया और उसका विचारण किया गया । सेशन न्यायालय तथा उच्च न्यायालय दोनों ने अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 302 और 201 के अधीन अपराधों का दोषी पाया । इस अपील में यह विचार किया जाना है कि क्या निचले न्यायालयों ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में ठीक किया है कि जिससे दोरथी कुटिनहो के सेवक के रूप में कार्य करने की प्रत्याशा की गई थी वही उसके जीवन का विनाशक बन गया ।

5. अभियोजन पक्षकथन के अनुसार, दोरथी कुटिनहो एक वृद्ध महिला थी और उसका एक भाई था जिसका नाम रुडोल्फ कुटिनहो था और उसका भाई मानसिक रूप से अशक्त था । नजरू केलरकलाबत्तू, उडुपी में स्थित मृतका के मकान में केवल दो व्यक्ति रहते थे । वह एक समृद्ध महिला थी और उसके पास कई बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं में बहुत से जवाहरात, सावधि जमा राशि तथा निवेश राशि थी । मृतका जहां रहती थी वह मकान भी उसका अपना था । यद्यपि, उसके पिता के पास दो पुत्र थे जो उसके पिता के जैविक पुत्र नहीं थे और वे पुत्र अलग-अलग रहते थे । उनमें से एक पुत्र एंथोनी कुटिनहो (अभि. सा. 3) है और दूसरा पुत्र साइमन कुटिनहो है, जो अमरीका में रहता है ।

6. जहां तक तारीख 1 मार्च, 2006 को दोरथी कुटिनहो की अभिकथित दुर्भाग्यपूर्ण हत्या का संबंध है, अभियोजन पक्ष द्वारा यह पक्षकथन किया गया है कि यद्यपि दोरथी ने अपीलार्थी के पक्ष में वसीयत निष्पादित कर दी थी, फिर भी अपीलार्थी दोरथी कुटिनहो की मृत्यु हो जाने तक प्रतीक्षा करना नहीं चाहता था और मृतका की संपूर्ण संपत्ति प्राप्त करना चाहता था । अपीलार्थी ने इस हेतु के साथ दोरथी की हत्या करने की योजना बनाई और उसने अपने इस आशय को अग्रसर करने में तारीख 1 मार्च, 2006 को लगभग 6.00 बजे पूर्वाह्न में मृतका का मुंह और नाक

बंद करके उसकी हत्या कर दी । हत्या के उक्त साक्ष्य को नष्ट करने के लिए वह दोरथी कुटिनहो का शव रोशन कुमार (अभि. सा. 10) के ऑटोरिक्शा से आदर्श अस्पताल इस बहाने से ले गया कि मृतका को दिल का दौरा पड़ा है । जब दोरथी कुटिनहो का शव आदर्श अस्पताल ले जाया गया, तब उसकी जांच डा. रेखा (न्यायालय साक्षी-13) ने की और इसके पश्चात् डा. रेखा ने डा. चन्द्रशेखर (अभि. सा. 2) को दोरथी कुटिनहो की मृत्यु के बारे में सूचित किया कि दोरथी को मृत अवस्था में अस्पताल लाया गया है और अपीलार्थी के निवेदन किए जाने पर, मृत्यु प्रमाणपत्र इस रिपोर्ट के साथ जारी किया गया कि मृतका की मृत्यु हृदय-गति रुक जाने से हुई है ।

7. अभियोजन का यह भी पक्षकथन है कि इस कार्यवाही के तत्काल पश्चात् अपीलार्थी ने मृतका के भाई (अभि. सा. 3) को टेलीफोन द्वारा सूचित किया कि मृतका की मृत्यु हृदय-गति रुक जाने से हो गई है । अभि. सा. 3 ने अपने भाई साइमन कुटिनहो को जो अमरीका में रहता था, सूचित किया और दोरथी कुटिनहो का शव अमरीका से साइमन कुटिनहो के आने तक कस्तूरबा मेडिकल कालेज अस्पताल, मणिपाल में रखा गया है । इसके पश्चात् प्रदर्श पी-4 के अनुसार पुलिस में एक शिकायत फाइल की गई जिसे यू. डी. आर. शिकायत के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया जिसमें यह संदेह किया गया कि मृतका की मृत्यु हत्या से हुई है और अभि. सा. 3 ने पुलिस से निवेदन किया कि दोरथी कुटिनहो का शव मृत्यु के कारण का पता लगाए जाने के लिए शवपरीक्षण के लिए भेजा जाए । मामला यू. डी. आर. सं. 5/2006 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया और इसके पश्चात् डा. प्रदीप कुमार (अभि. सा. 1) द्वारा शवपरीक्षण किया गया जिसकी रिपोर्ट प्रदर्श पी-1 है । शवपरीक्षण रिपोर्ट के आधार पर एम. एस. नायकर (अभि. सा. 8) ने एक शिकायत (प्रदर्श पी-11) तारीख 3 मार्च, 2006 को अपराध सं. 19/206 के रूप में स्वयमेव रजिस्ट्रीकृत की और इसके पश्चात् मामले का अन्वेषण उडुपी पुलिस द्वारा किया गया और उपर्युक्त अपराधों के लिए अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया । परिणामस्वरूप अपीलार्थी की दोषसिद्धि ऊपर उल्लिखित रूप में की गई ।

8. अभियुक्त का दोष साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने अभि. सा. 1 से अभि. सा. 14 के साक्ष्य, प्रदर्श पी-1 से पी-46 और तात्विक वस्तु 1 से 5 का अवलंब लिया है । दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313

के अधीन अभियुक्त की परीक्षा भी कराई गई है और उसने अपराध में फंसाने वाले उसके विरुद्ध रखे गए अभियोजन साक्ष्य से इनकार किया है । अपीलार्थी द्वारा प्रदर्श डी-1 जो कि अभि. सा. 3 के कथन का भाग है, को छोड़कर कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है ।

9. मृत्यु के कारण के संबंध में एक बड़ा विवाद है । चिकित्सीय परीक्षा के अनुसार, दोरथी कुटिनहो की मृत्यु अप्राकृतिक है जो कि श्वासावरोध के कारण हुई है । प्रतिरक्षा पक्ष ने यह पक्षकथन किया है कि उसकी मृत्यु हृदय-गति रुक जाने के कारण प्राकृतिक रूप से हुई है । स्वीकृततः, अभिकथित अपराध का कोई भी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है और यह पारिस्थितिक साक्ष्य का मामला है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यह हत्या का मामला है । अनेक साक्षियों के परिसाक्ष्य का विश्लेषण करने के पश्चात्, यह स्पष्ट होता है कि किसी भी साक्षी के साक्ष्य से अभियुक्त का हेतु साबित नहीं हुआ है । तथापि, वस्तुओं की बरामदगी और अभि. सा. 3 के अभिसाक्ष्य से कोई भी व्यक्ति स्पष्ट रूप से उस हेतु का पता लगा सकता है जिसके कारण अपीलार्थी ने उक्त हत्या कारित की है । विचारण न्यायालय ने भी यह अभिलिखित किया है कि अभियोजन पक्ष द्वारा साबित किए गए अनेक संघटक परिस्थितियों की शृंखला को पूरा करने के लिए पर्याप्त हैं जिनसे यह सुनिश्चित निष्कर्ष निकलता है कि अपीलार्थी ही वह व्यक्ति है जिसने हत्या कारित की है । सेशन न्यायालय ने निम्न परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उपर्युक्त निष्कर्ष निकाले हैं : वसीयत का निष्पादन प्रश्नगत नहीं है । अभि. सा. 14 के अनुसार उक्त वस्तुओं की बरामदगी आटा-चक्की (फ्लोर मिल) में रखे बिस्तर से हुई है जो कि मृतका के मकान में ही था । थैले में सोने के बुंदे, एक लटकन, सोने की एक जंजीर, वसीयत, आम मुख्तारनामा (जनरल पावर ऑफ अटार्नी), सहमति-पत्र और बैंक सर्टिफिकेट रखे हुए थे । उपरोक्त सभी दस्तावेज इस मामले में के अपीलार्थी के नाम में थे अर्थात् उसे नामनिर्देशिती/हिताधिकारी बनाया गया था । ऑटोरिक्शा चालक (अभि. सा. 10) ने यह अभिकथन किया है कि अपीलार्थी को निकट के अस्पताल अर्थात् गोरट्टी अस्पताल ले जाने की सलाह दी गई थी किंतु अपीलार्थी ने आदर्श अस्पताल ले जाने का आग्रह किया । चालक ने यह भी कथन किया है कि अपीलार्थी घबराया हुआ था और उसे पसीना आ रहा था । आदर्श अस्पताल के चिकित्सक डा. चन्द्रशेखर (अभि. सा. 2) ने यह अभिकथन किया है कि अपीलार्थी ने उसे यह बताया था कि मृतक की मृत्यु वक्ष में दर्द होने के कारण हुई है और उसने चिकित्सक से मृत्यु प्रमाणपत्र जारी

करने का निवेदन किया था और यह भी कहा था कि मृतक के अन्य नातेदारों के पहुंचने तक शव कोल्ड स्टोर में रखा जाए । अभि. सा. 11 अपीलार्थी की बहिन है जो अपने कथन से मुकर गई है । अभियोजन पक्षकथन के अनुसार अभि. सा. 11 ने यह अभिकथन किया है कि अपीलार्थी ने उसे यह बताया था कि मृतका ने अपीलार्थी से यह कहा था कि वसीयत (की संपत्ति) अपने नाम कराने के लिए अपीलार्थी किसी ईसाई लड़की से विवाह करे । अभि. सा. 4 ने यह कथन किया है कि अपीलार्थी मृतका के पुत्र के समान था । अपीलार्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन परीक्षा किए जाने पर अपने समक्ष रखे प्रश्नों का उत्तर देने से इनकार किया है और उसने यहां तक भी इनकार किया है कि वह मृतका के साथ रहता था ।

10. उच्च न्यायालय ने भी विचारण न्यायालय के उपर्युक्त निष्कर्ष को कायम रखा है और ऐसे ही कारण अभिलिखित किए हैं । उच्च न्यायालय ने अन्य बातों के साथ यह मत व्यक्त किया है :–

(i) इस पर विवाद नहीं है कि अपीलार्थी मृतका और उसके मानसिक रूप से अशक्त भाई रुडोल्फ के साथ रहता था ।

(ii) अपीलार्थी के सिवाय अन्य कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था जो मृतका और रुडोल्फ के साथ मृतका के मकान में रहता था ।

(iii) अपीलार्थी मृतका और उसके भाई की देख-रेख किया करता था और अपीलार्थी यह बात जानता था कि मृतका ने उसके पक्ष में अपनी सभी चल और अचल संपत्ति की वसीयत निष्पादित कर दी है । यहां तक कि मृतका ने अपीलार्थी के पक्ष में मुख्तारनामा भी निष्पादित कर दिया था ताकि अपीलार्थी मृतका की संपूर्ण संपत्ति का प्रबंधन कर सके । अपीलार्थी द्वारा इन दस्तावेजों पर विवाद नहीं किया गया है । वसीयत अपीलार्थी के कब्जे में पाई गई है ।

(iv) वसीयत में एक बात ऐसी लिखी गई है जिससे मृतका की इच्छा प्रकट होती है कि अपीलार्थी ईसाई महिला से विवाह करेगा । तथापि, सम्पा पुजारती (अभि. सा. 11) जो अपीलार्थी की बहिन है, के परिसाक्ष्य के अनुसार अपीलार्थी ईसाई महिला से विवाह करने में इच्छुक नहीं था ।

(v) अपीलार्थी ने इस पर विवाद नहीं किया है कि उसने दोरथी को रोशन कुमार (अभि. सा. 10) के ऑटोरिक्शा से आदर्श अस्पताल

भेजा था । रोशन कुमार को अपीलार्थी से फोन पर यह सूचना प्राप्त हुई थी कि मृतका की तबियत खराब है और उसे तुरंत अस्पताल ले जाना है । इसलिए वह दोरथी के घर आया और अपीलार्थी के साथ दोरथी को अपने ऑटोरिक्शा से अस्पताल ले गया । इस साक्षी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि यद्यपि निकट ही एक अस्पताल था, फिर भी अपीलार्थी ने दोरथी को आदर्श अस्पताल ले जाने का आग्रह किया जो अपेक्षाकृत दूर था । यह परिस्थिति अपीलार्थी के विरुद्ध अभिनिर्धारित की गई है और यह मत व्यक्त किया गया है कि अपीलार्थी दोरथी को अपनी पसंद के अस्पताल ले जाना चाहता था जहां पर वह अपने तरीके से काम करा सके ।

(vi) जब अपीलार्थी दोरथी के साथ आदर्श अस्पताल पहुंचा तब वहां डा. रेखा (न्यायालय साक्षी-13) ने दोरथी की चिकित्सा परीक्षा की और उसने यह पाया कि दोरथी को अस्पताल मृत लाया गया है । डा. रेखा ने आदर्श अस्पताल के स्वामी डा. जी. एस. चंद्रशेखर (अभि. सा. 2) को सूचित किया और डा. चंद्रशेखर ने डा. रेखा को प्रमाणपत्र जारी करने का निदेश दिया । इसके पश्चात्, यह प्रमाणपत्र जारी कर दिया गया कि हृदय-गति रुक जाने के परिणामस्वरूप मृत्यु हुई है । अभियोजन पक्षकथन के अनुसार, यह प्रमाणपत्र मृत्यु के उपर्युक्त कारण का उल्लेख करते हुए जारी किया गया था ताकि मृतका के साथ अपीलार्थी की नातेदारी को दृष्टिगत करते हुए अपीलार्थी को बचाया जा सके । इसके प्रतिकूल, अभि. सा. 1, जिसने शव का शवपरीक्षण किया है और रिपोर्ट प्रदर्श पी-1 प्रस्तुत की, के परिसाक्ष्य का अवलंब लेते हुए, निचले न्यायालयों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मृत्यु हृदय-गति रुक जाने से नहीं अपितु गला घोंटने से हुई है ।

(vii) अपीलार्थी के कहने पर कतिपय दस्तावेजों और आभूषणों की बरामदगी हुई है । दस्तावेजों में मुख्तारनामा और वसीयत है जो मृतका द्वारा निष्पादित किए गए हैं । मृतका के ये दस्तावेज और आभूषण उस स्थान से अभिगृहीत किए गए हैं जहां पर अपीलार्थी एक सर्विस स्टेशन चला रहा था । यह सर्विस स्टेशन मृतका के मकान के अहाते में बना हुआ है और मृतका ने ही अपीलार्थी को अपने मकान में सर्विस स्टेशन चलाने के लिए अनुज्ञात किया था ।

11. उच्च न्यायालय ने उपर्युक्त परिस्थितियों का वर्णन करते हुए यह

मत व्यक्त किया है कि सेशन न्यायाधीश ने यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थी का दोष साबित करने के लिए परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण हो गई है ।

12. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री बसंत आर. ने यह दलील दी है कि उपर्युक्त निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए निचले न्यायालयों ने मामले के अत्यंत सुसंगत और तात्विक पहलुओं को अनदेखा किया है और उन पर विचार नहीं किया है जिनसे स्पष्ट रूप से अपीलार्थी का निर्दोष होना साबित होता है । काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि अपीलार्थी को मृतका के नातेदारों विशेषकर एंथनी कुटिनहो (अभि. सा. 3) और साइमन कुटिनहो (जो अमरीका में रहता है) द्वारा उपर्युक्त मामले में मिथ्या फंसाया गया है क्योंकि वे अपनी बहिन से यह नहीं चाहते थे कि वह अपनी संपूर्ण संपत्ति अपीलार्थी को दे । जहां तक डा. चंद्रशेखर (अभि. सा. 2) का संबंध है उन्होंने यह कथन किया है कि यदि अपीलार्थी का दुर्भावपूर्ण आशय नहीं होता तो वह उनसे (डा. चंद्रशेखर) मृतका के शव को स्टोर में रखने का निवेदन नहीं करता और इसके प्रतिकूल चूंकि मृतका ने अपीलार्थी को अंतिम संस्कार करने के लिए ही प्राधिकृत किया हुआ था इसलिए मृतका के अवधायक होने के कारण अपीलार्थी को चाहिए था कि वह स्वयं अंतिम संस्कार के लिए आगे बढ़ता जबकि चिकित्सक (न्यायालय साक्षी-13) ने भी यह सत्यापित कर दिया था कि मृत्यु हृदय-गति रुक जाने से हुई है । जहां तक पुलिस सर्किल निरीक्षक विश्वनाथ (अभि. सा. 14) के कथन का संबंध है, यह दलील दी गई है कि यह उल्लेखनीय है कि उस थैले में से वस्तुएं बरामद की गई हैं जो थैला आटा-चक्की वाले कमरे में बिछे हुए बिस्तर पर रखा हुआ था और यह चक्की वाला कमरा उसी मकान में है । काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि सोने की जंजीर और कान के बुंदों के सिवाय रखे हुए अन्य सभी दस्तावेज अपीलार्थी के नाम में निष्पादित किए गए थे अर्थात् वह उनमें नामनिर्देशिती/हिताधिकारी बनाया गया था । इसलिए ऐसा कोई कारण नहीं है कि वह उस सामान को छुपाता बल्कि उन दस्तावेजों को प्रकट करना उसका पक्षकथन साबित करने में सहायक होता । यदि अपीलार्थी का आशय इन वस्तुओं को छुपाने का होता तब वह उसी अहाते में छुपा सकता था जो आहत के मकान में था । इस प्रकार काउंसेल ने यह दलील दी है कि ऐसी बरामदगी से अभियोजन पक्षकथन गढ़ा हुआ प्रतीत होता है । जहां तक ऑटोरिक्शा चालक रोशन कुमार (अभि. सा. 10) का संबंध है, विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल ने यह तथ्य स्वीकार किया है कि अभि. सा. 10 ने

अपीलार्थी को निकट के अस्पताल जाने का सुझाव दिया था । किंतु यह दलील दी है कि ऐसी आपात स्थिति में अपीलार्थी ने अधिक सुरक्षित विकल्प का प्रयोग किया क्योंकि मृतका पहले से आदर्श अस्पताल में उपचाराधीन थी और आदर्श अस्पताल के चिकित्सक रोगी (मृतका) की पुरानी बीमारी से अवगत थे और इसीलिए उसने इस विकल्प का प्रयोग किया । जहां तक अपीलार्थी के घबराने और उसे पसीना आने का संबंध है, काउंसेल ने यह दलील दी है कि किसी भी व्यक्ति का ऐसा व्यवहार असामान्य नहीं है, क्योंकि वह उस समय घबरा जाएगा जब उसके किसी करीबी का स्वास्थ्य अत्यधिक खराब हो जाए । इस प्रकार काउंसेल ने यह दलील दी है कि कतिपय परिस्थितियों से निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष स्पष्ट रूप से अनुचित हैं और बहुत से महत्वपूर्ण पहलुओं को पूर्णतया अनदेखा किया गया है जिनसे अपीलार्थी का निर्दोष होना स्पष्ट रूप से साबित होता है ।

13. अभियोजन पक्ष ने यह प्रश्न उठाया है कि जब इस मामले में के अपीलार्थी को अभि. सा. 10 द्वारा निकट के अस्पताल जाने का सुझाव दिया गया था तब वह इतनी दूर स्थित अस्पताल क्यों गया । उसने यह दलील दी है कि अपीलार्थी मृतका को पहले निकट के अस्पताल ले जाता और जब उसकी हालत स्थिर हो जाती तब वह उसे आदर्श अस्पताल ले जा सकता था । इसके पश्चात् अभियोजन पक्ष ने अपीलार्थी के कब्जे से सोने की चैन और कान के बुंदे जो आटा-चक्की वाले कमरे में बिछे हुए बिस्तर में छिपे हुए थे, की बरामदगी पर प्रश्न उठाया है । यह भी दलील दी गई है कि अपीलार्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन परीक्षा किए जाने के समय पर उसके समक्ष रखे गए प्रश्नों के उत्तर देने से इनकार किया है जिससे उसका मिथ्या होना प्रतीत होता है । विद्वान् काउंसेल ने उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए उन कारणों का उल्लेख किया है जो उच्च न्यायालय ने अपने निष्कर्ष के समर्थन में व्यक्त किए हैं और काउंसेल ने यह दलील दी है कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष सही हैं और वे कायम रखे जाने चाहिए ।

14. हमने पहले ही उन परिस्थितियों पर विचार कर लिया है जिनका अवलंब विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए किया है कि दोरथी की मृत्यु एक अप्राकृतिक मृत्यु है जो कि गला घोंटकर की गई है और अपीलार्थी ही दोरथी की हत्या कारित करने के लिए जिम्मेदार है । इस पृष्ठभूमि में विचार के लिए दो प्रश्न सामने आते हैं जो निम्न प्रकार हैं :–

(i) क्या दोरथी की मृत्यु हृदय-गति के रुक जाने के कारण हुई है या गला घोंटने के परिणामस्वरूप श्वासावरोध से हुई है ?

(ii) यदि दोरथी की हत्या की गई है तब क्या अपीलार्थी इस हत्या का दोषी है ?

15. हम इन मुद्दों पर चर्चा करेंगे और उपर्युक्त क्रम में निष्कर्ष निकालेंगे जिस क्रम में प्रश्न विरचित किए गए हैं । साथ ही हम यह भी इंगित करते है कि चर्चा के कुछ पहलुओं में समानता भी है क्योंकि ये दोनों मुद्दे एक-दूसरे से संबंधित हैं, अतः इन प्रश्नों का उत्तर देने में कुछ बातों की पुनरावृत्ति हो सकती है ।

प्रश्न सं. 1 का उत्तर

16. जहां तक दोरथी की मृत्यु का संबंध है, हमारे समक्ष अभिलेख पर दस्तावेजी दो साक्ष्य उपलब्ध हैं जो एक-दूसरे के विरोधाभासी हैं । एक ओर डा. रेखा (न्यायालय साक्षी-13) द्वारा जारी किया गया प्रमाणपत्र (प्रदर्श पी-3) है जिसके अनुसार मृतका की मृत्यु हृदय-गति रुकने से हुई है । दूसरी ओर हमारे समक्ष शवपरीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श पी-1 है जिसके अनुसार शवपरीक्षण करने वाले चिकित्सक डा. जी. प्रदीप कुमार (अभि. सा. 1) ने यह दावा किया है कि दोरथी की मृत्यु गला घोंटकर किए गए श्वासावरोध से हुई है । निचले न्यायालयों ने प्रदर्श पी-3 को त्यक्त किया है और प्रदर्श पी-1 का अवलंब लिया है । प्रदर्श पी-3 की विश्वसनीयता को अभिखंडित करने के लिए यह कारण दिया गया है कि डा. रेखा ने अपीलार्थी और मृतका के बीच संबंध को ध्यान में रखते हुए, अपीलार्थी को उक्त प्रमाणपत्र जारी करके उसका पक्ष लिया है । निचले न्यायालयों ने अपीलार्थी द्वारा मृतका को आदर्श अस्पताल ले जाए जाने से संबंधित आचरण पर भी संदेह किया है विशेषकर ऐसी स्थिति में कि मृतका के घर के निकट अर्थात् गोरट्टी में एक अन्य अस्पताल मौजूद था । इस आधार पर रोशन कुमार (अभि. सा. 10) के कथन को दृष्टिगत करते हुए, जो मृतका और अपीलार्थी को ऑटोरिक्शा से लेकर गया था, निचले न्यायालयों ने अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत किए गए इस प्रतिरक्षा साक्ष्य को अस्वीकार कर दिया है कि अपीलार्थी ने दोरथी का स्वास्थ्य खराब होने की स्थिति में रोशन कुमार को इसलिए बुलाया था ताकि वह दोरथी को उपचार के लिए तत्काल अस्पताल ले जा सके ।

17. सबसे पहले हम अपीलार्थी के असामान्य और संदिग्ध व्यवहार के

पहलू पर विचार करेंगे । अभिलेख से यह साबित है और यहां तक कि अभियोजन पक्ष द्वारा भी यह स्वीकार किया गया है कि जब कभी मृतका को स्वास्थ्य संबंधी समस्या होती थी । मृतका का उपचार आदर्श अस्पताल के चिकित्सकों द्वारा किया जाता था इसका यह अर्थ हुआ कि आदर्श अस्पताल के चिकित्सक, जिनके पास दोरथी उपचार के लिए आया करती थी, दोरथी की शारीरिक दशा को जानते थे । यह एक स्वीकृत तथ्य है जिसके संबंध में अभि. सा. 2 द्वारा कथन भी किया गया है । जब हम इस महत्वपूर्ण तथ्य पर विचार करते हैं, तब अपीलार्थी द्वारा मृतका को आदर्श अस्पताल ले जाने का विकल्प किसी भी आधार पर अप्राकृतिक या असामान्य नहीं कहा जा सकता है जिससे अपीलार्थी के आचरण पर संदेह किया जा सके । वास्तव में, अपीलार्थी ने रोगी के हित में उसी प्रकार कार्य किया है जिस प्रकार एक जिम्मेदार व्यक्ति करता । दोनों पक्षकारों ने यह स्वीकार किया है कि दोरथी एक वृद्ध और दुर्बल महिला थी जो हृदय रोग सहित अनेक रोगों से ग्रसित थी और इसी कारण अपीलार्थी आदर्श अस्पताल में उसका उपचार करवा रहा था । यही कारण है कि अपीलार्थी दोरथी के अवधायक के रूप में घर पर कार्य कर रहा था और उसकी पूरी तरह देख-रेख करता था । कोई भी व्यक्ति स्वाभाविक रूप से रोगी को उसी चिकित्सक के पास लेकर जाएगा जिसकी देख-रेख और सर्वेक्षण के अधीन रोगी का उपचार पहले से किया जा रहा है क्योंकि वही चिकित्सक रोगी के पिछले उपचार को ध्यान में रखते हुए उसके रोग का तत्काल निदान कर सकता है अतः, मात्र इस कारण कि गोरट्टी के निकट अन्य अस्पताल था और अपीलार्थी मृतका को उस अस्पताल में लेकर नहीं गया अपितु आदर्श अस्पताल लेकर गया, ऐसी परिस्थिति नहीं है जिसके आधार पर अपीलार्थी की सत्यनिष्ठा या आचरण पर संदेह किया जा सके ।

18. जहां तक मृत्यु प्रमाणपत्र (प्रदर्श पी-3) जारी किए जाने का संबंध, अभिलेख पर यह साक्ष्य है कि डा. रेखा (न्यायालय साक्षी-13) ने मृतका का शव देखा है । डा. रेखा ने यह मान लिया कि दोरथी की मृत्यु हृदय-गति रुक जाने से हुई है । उसने डा. जी. एस. चंद्रशेखर (अभि. सा. 2) को इस संबंध में सूचित किया और अभि. सा. 2 ने डा. रेखा को इस संबंध में प्रमाणपत्र जारी करने का निदेश दिया । अभि. सा. 2 ने मात्र यह कहा है कि जब दोरथी को अस्पताल लाया गया था मैंने उसका मुआयना नहीं किया था और मात्र इस कथन के आधार पर अभि. सा. 3 के साक्ष्य को त्यक्त किया गया है । चूंकि डा. रेखा ने शव का परीक्षण किया है और प्रमाणपत्र जारी किया है, वही ऐसा प्रमाणपत्र जारी करने

के लिए सक्षम है । यह बात हमारी समझ से बाहर है कि ऐसा निष्कर्ष कहां से निकाला गया है कि डा. रेखा ने अपीलार्थी की इच्छानुसार मृत्यु का कारण देते हुए प्रमाणपत्र जारी किया है । यह बात महत्वपूर्ण है कि अभियोजन पक्ष द्वारा न्यायालय साक्षी 13 की परीक्षा नहीं कराई गई है । उसके पते-ठिकाने को जानने का भी प्रयास नहीं किया गया है । अतः इस तथ्य का अधिक अवलंब नहीं लिया जा सकता है कि अभि. सा. 2 ने अपने साक्ष्य में यह स्वीकार किया है कि उसने दोरथी का शव नहीं देखा था जो उसके समक्ष कहीं भी नहीं रखा गया था ।

19. तथापि, साथ ही हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि शव का शवपरीक्षण किए जाने के पश्चात् शवपरीक्षण रिपोर्ट में यह उल्लेख किया गया है कि मृत्यु का कारण गला घोंटना है । इसे यूं ही अनदेखा नहीं किया जा सकता है । इस रिपोर्ट पर विचार करने के पूर्व कुछ अन्य बातों पर विचार करना आवश्यक होगा । उच्च न्यायालय के अनुसार, शवपरीक्षण मृतका के भाई अर्थात् एंथनी कुटिनहो (अभि. सा. 3) के कहने पर कराया गया है । तथापि, इस प्रक्रिया में एक सुसंगत और महत्वपूर्ण पहलू पर निचले न्यायालयों द्वारा विचार नहीं किया गया है । आदर्श अस्पताल में दोरथी के मृत घोषित किए जाने और डा. रेखा द्वारा प्रमाणपत्र (प्रदर्श पी-3) जारी किए जाने के पश्चात् अपीलार्थी ने अभि. सा. 3 को उक्त मृत्यु के बारे में सूचित किया । महत्वपूर्ण बात यह है कि अपीलार्थी ने ही शव का शवपरीक्षण किए जाने का सुझाव दिया था । यदि यह अप्राकृतिक मृत्यु का मामला होता और अपीलार्थी ने ही ऐसा किया होता तब अपीलार्थी ऐसा सुझाव नहीं देता । ऐसी स्थिति में, अपीलार्थी के पास ऐसा प्रमाणपत्र होने पर जिससे यह दर्शित होता हो कि मृतका की मृत्यु हृदय-गति रुक जाने से हुई है, वह मृतका का अंतिम संस्कार करने की इच्छा प्रकट करता । ऐसा करने के लिए स्वयं मृतका ने अपीलार्थी को वसीयत के माध्यम से प्राधिकार दिया हुआ था । किंतु उसने ऐसा नहीं किया । अपीलार्थी के ही सुझाव पर अभि. सा. 3 ने पुलिस में शिकायत दर्ज कराई और मृतका का शवपरीक्षण कराए जाने का निवेदन किया । (पृष्ठ 73-74 पर चिकित्सक अर्थात् अभि. सा. 2 के कथन से स्पष्ट है)

20. एक और अत्यंत महत्वपूर्ण और गंभीर परिस्थिति है जिस पर इस प्रक्रम पर विचार किया जाना आवश्यक है । मृतका की मृत्यु 1 मार्च, 2006 को हुई और तारीख 4 मार्च, 2006 को यू. डी. आर. रजिस्ट्रीकृत की गई और शवपरीक्षण तारीख 5 मार्च, 2006 को किया गया । इस आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट 7 मार्च, 2006 को रजिस्ट्रीकृत की गई जिसमें यह

कथन किया गया कि 'अज्ञात व्यक्तियों द्वारा हत्या की गई है' । इससे यह प्रकट होता है कि उस समय तक अपीलार्थी पर कोई भी संदेह नहीं था । अपीलार्थी पर क्यों और किन परिस्थितियों में संदेह किया गया और उसे अभियुक्त बनाया गया, इस पर हम एक समुचित प्रक्रम पर विचार करेंगे । अभी हम शवपरीक्षण रिपोर्ट पर विचार कर रहे हैं । अभि. सा. 1 वह चिकित्सक है जिसने शवपरीक्षण किया और अपनी रिपोर्ट प्रदर्श पी-1 दी जिसमें उसने यह कथन किया है कि शवपरीक्षण किए जाने के पश्चात् उसने मृत्यु का अनुमानित कारण दिया था कि मृत्यु प्रमस्तिष्कीय और फुफ्फुसीय त्वचा शोफ (सेरीब्रल पलमोनरी इडीमा) है जो गला घोंटने के कारण हुआ है । चिकित्सक की यह राय अस्थायी (प्रयोगात्मक) है जो शव पर देखी गई कतिपय बाह्यीय क्षतियों के आधार पर दी गई है । इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया कि शरीर पर जिस प्रकार के गुमटे पाए गए हैं वे किसी खुरदुरी और कठोर सतह के संपर्क में आने से कारित हो सकते हैं । अभि. सा. 1 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह भी स्वीकार किया कि शव में अल्कोहल भी पाया गया था । अतः, इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है कि शराब पीने के पश्चात् दोरथी गिर गई हो और वह किसी कठोर सतह से टकरा गई हो । चिकित्सक के परिसाक्ष्य के इस महत्वपूर्ण भाग पर ध्यान नहीं दिया गया है और इस पर चर्चा किए जाने का भी पूरी तरह लोप किया गया है । इस प्रक्रम पर यह इंगित करना सुसंगत होगा कि डा. चंद्रशेखर (अभि. सा. 2) ने जिसके द्वारा मृतका का नियमित उपचार किया जा रहा था, यह कथन किया है कि मृतका तारीख 5, 8 और 25 नवंबर, 2005 को उसके अस्पताल में उपचार के लिए आई थी । इस साक्षी ने स्पष्ट रूप से यह भी उल्लेख किया कि उच्च रक्तचाप और अवसाद के लिए मृतका का उपचार किया गया था । इस साक्षी ने यह भी उल्लेख किया कि उसे शराब की आदत थी और उसने मृतका को शराब छोड़ने की सलाह भी दी थी । अभि. सा. 2 के परिसाक्ष्य के इस भाग को भी निचले न्यायालयों द्वारा अनदेखा किया गया है ।

21. उपर्युक्त पृष्ठभूमि के आधार पर निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि दोरथी की मृत्यु गला घोंटने से हुई या हृदय रोगी होने के कारण, मृत्यु का वास्तविक रूप से हृदय-गति रुक जाने से हुई । ऐसी परिस्थितियों में जब मृत्यु के दो कारण संभव हों तब निश्चित और स्पष्ट कारण के अभाव में हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय ने अभियुक्त को संदेह का लाभ न देकर गलती की है ।

प्रश्न सं. 2 का उत्तर

22. इस उत्तर में हम द्वितीय मुद्दे पर विचार करेंगे जो हमने ऊपर विरचित किया है । हमारा यह विचार है कि प्रथम प्रश्न का हमने जो उत्तर दिया है उससे अपीलार्थी को संदेह का लाभ देते हुए उसका मामला स्वयं ही दोषमुक्ति का बन जाता है । हम इस प्रश्न पर अभी भी विचार कर रहे हैं कि ऊपर चर्चा की गई परिस्थितियों से अपीलार्थी की निर्दोषिता दिखाई पड़ती है ।

23. सेशन न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के अनुसार ऐसी परिस्थितियां सिद्ध हो गई हैं जिनके आधार पर अपीलार्थी को दोषी ठहराया जा सकता है और संदेह के परे यह साबित होता है कि अपीलार्थी ने ही दोरथी की हत्या कारित की है । अपीलार्थी के विरुद्ध निम्न परिस्थितियां हैं :–

(i) दोरथी की हत्या कारित करने से संबंधित अपीलार्थी का हित सिद्ध हो गया है ।

(ii) अपीलार्थी और मृतका को एक साथ देखा गया था ।

(iii) मृतका के शरीर पर पाई गई क्षतियों से अप्राकृतिक मृत्यु होना दर्शित होता है । (हमने इस पहलू पर पहले ही ऊपर विचार कर लिया है)

(iv) अपीलार्थी के प्रकटीकरण कथन के अनुसरण में कतिपय वस्तुएं बरामद हुई हैं जो उसे अपराध से संबद्ध करती हैं ।

24. जहां तक अपीलार्थी और मृतका के एक साथ रहने का संबंध है, इस पर कोई विवाद नहीं है और इस पर भी कोई विवाद नहीं है कि अंतिम बार दोनों को एक साथ देखा गया था । वास्तव में अपीलार्थी ने अपनी प्रतिरक्षा में भी इस बात को स्वीकार किया और यह दावा किया था कि वह और दोरथी उस समय मकान ही में थे जब दोरथी के वक्ष में दर्द हुआ था और जब अपीलार्थी ने मृतका को दर्द से पीड़ित देखा तो उसने मृतका को अस्पताल ले जाने का विनिश्चय किया । इसके लिए अपीलार्थी ने रोशन कुमार (अभि. सा. 10) को बुलाया और उसके ऑटोरिक्शा से अस्पताल गया । तथापि, हमें अभियुक्त का हेतु सिद्ध होने और उसके द्वारा दिए गए तथाकथित प्रकटीकरण कथन के अनुसरण में बरामद की गई वस्तुओं पर घोर संदेह है । जहां तक हेतु का संबंध है, अभिलेख से यह स्पष्ट है कि निचले न्यायालयों ने तथ्यों को बढ़ा-चढ़ाकर और तोड़-मोड़कर प्रस्तुत किया

है ताकि अपीलार्थी का हेतु साबित किया जा सके । अभिलेख पर यह उपलब्ध है और अभियोजन पक्ष का यह पक्षकथन भी है कि दोरथी और उसके मानसिक रूप से अशक्त भाई रुडोल्फ कुटिनहो की देख-रेख के लिए कोई भी नहीं था, दोरथी अपीलार्थी को अपने घर अवधायक के रूप में लाई थी । अपीलार्थी दोरथी और रुडोल्फ की देख-रेख कर रहा था । यह स्पष्ट है कि अपीलार्थी ने प्रेम और स्नेह के साथ दो अभावग्रस्त व्यक्तियों की पूर्णरूप से सेवा की है । दोरथी उसे अपना पुत्र मानती थी । वह उसकी निःस्वार्थ सेवा से इतनी प्रसन्न थी कि उसने अपनी सभी चल और अचल संपत्ति अपीलार्थी को देने का निश्चय कर लिया । अपनी इस इच्छा को पूरा करने के लिए मृतका ने अपने सभी नातेदारों को निर्हकित करते हुए (जिनमें उसका भाई अभि. सा. 3 और साइमन कुटिनहो था) अपनी संपूर्ण संपत्ति की वसीयत अपीलार्थी के पक्ष में निष्पादित कर दी । यह वसीयत तारीख 5 जुलाई, 2005 को निष्पादित की गई थी । दोरथी ने यह वसीयत अपीलार्थी के ही पास रखवा दी थी जिसका यह अर्थ हुआ कि दोरथी ने उक्त वसीयत के बारे में अपीलार्थी को बता भी दिया था । मृतका ने अपने आभूषण, सावधि जमा राशि और विभिन्न बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं में किए गए निवेश से संबंधित कागजात भी अपीलार्थी को दे दिए थे । इस पृष्ठभूमि के आधार पर अपीलार्थी दोरथी जैसी महिला की हत्या वह भी विल निष्पादित किए जाने के सात मास की अवधि के बाद क्यों करेगा जिसे वह अपनी माता समान समझता था ।

25. हमारा यह निष्कर्ष है कि अपीलार्थी के हितों के संबंध में विचार करने के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू है । यह कथन किया गया है कि विल में एक शर्त रखी गई थी कि अपीलार्थी दोरथी की संपदा तभी प्राप्त कर सकेगा जब वह किसी ईसाई महिला से विवाह करेगा और अपीलार्थी, जो धर्म से हिंदू था, ईसाई लड़की से विवाह नहीं करना चाहता था । इससे एक बहुत महत्वपूर्ण बात सामने आती है कि क्या दोरथी की हत्या किए जाने से अपीलार्थी की इस दुविधा का, यदि यह मान लिया जाए कि अपीलार्थी वास्तव में इस दुविधा से ग्रसित था, समाधान हो सकता था । इसका उत्तर स्पष्ट रूप से "नहीं" ही होगा । दोरथी की मृत्यु प्राकृतिक हुई हो या अप्राकृतिक, उसके बाद ही विल प्रभावी मानी जाएगी । मृत्यु प्राकृतिक या अप्राकृतिक होने से विल में लिखी गई शर्त समाप्त नहीं हो सकती थी । अतः, इसे मुश्किल से ही अपीलार्थी द्वारा दोरथी की हत्या किए जाने का हेतु माना जा सकता है । इसके प्रतिकूल अपीलार्थी और दोरथी के बीच माता और पुत्र जैसे सौहार्द और स्नेहपूर्ण संबंधों को ध्यान में

रखते हुए अपीलार्थी के लिए यह अत्यंत असंभावी था कि वह दोरथी की हत्या करता वह भी ऐसी स्थिति में जब दोरथी ने पहले ही अपनी संपत्ति की विल अपीलार्थी के पक्ष में निष्पादित कर दी हो । एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू को भी ध्यान में रखना चाहिए कि दोरथी वृद्धा अवस्था में थी और वह उच्च रक्तचाप, अवसाद और अन्य वृद्धा अवस्था संबंधी रोगों से पीड़ित थी । अतः ऐसी असहाय महिला की थोड़े समयपूर्व हत्या करने से कोई भी उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता था ।

26. अभिकथित बरामदगी भ्रमित करने के सिवाय कुछ नहीं है । अपीलार्थी पर संदेह करने और इसके पश्चात् उसे हत्या के मामले में आलिप्त करने के लिए जो बरामदगी दिखाई गई, हमें वह अस्वाभाविक महसूस होती है । यह अभिलेख पर उपलब्ध है कि विल, निवेश से संबंधित दस्तावेज और आभूषण अपीलार्थी को सौंपे गए थे, अतः वे अपीलार्थी के प्राधिकृत कब्जे में थे । अपीलार्थी ने इन वस्तुओं को वहां से हटाकर अन्य किसी स्थान पर नहीं रखा है । तथाकथित बरामदगी मृतका के घर से ही की गई है । यह बरामदगी सर्विस स्टेशन से की गई है जो उसी मकान में बना हुआ था जहां पर सभी रहते थे । अतः यह ऐसी परिस्थिति नहीं हो सकती जिससे प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जा सके । हमारा यह मत है कि अपीलार्थी पर संदेह करना विधिमान्य नहीं होगा ।

27. दलीलें दिए जाने के दौरान, हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों के समक्ष एक प्रश्न रखा क्योंकि हम मृतका की उस संपत्ति के बारे में जानना चाहते थे जिसकी वसीयत उसने अपीलार्थी के नाम में की है । एक अत्यंत खेदपूर्ण किंतु महत्वपूर्ण पहलू पक्षकारों द्वारा दिए गए उत्तरों से उद्भूत हुआ है जो इस प्रकार है कि अभि. सा. 3 और अभि. सा. 3 के भाई ने मृतका की उपरोक्त आस्तियां उस समय बेच दी थीं जब इस मामले का विचारण लंबित था और तब तक सेशन न्यायाधीश द्वारा अपीलार्थी को दोषी घोषित नहीं किया गया था । इससे बहुत सी संभाव्यताएं सामने आती हैं और हमारा यह निष्कर्ष प्रबलित होता है कि अपीलार्थी निर्दोष है और उसे दोरथी की उस संपत्ति और आस्तियों को लूटने के मामले में मिथ्या फंसाया गया है जिसकी वसीयत दोरथी ने अभि. सा. 3 और अभि. सा. 3 के भाई सहित अपने अन्य सभी नातेदारों को अपवर्जित करते हुए अपीलार्थी के नाम में प्रेम और स्नेह के आधार पर कर दी थी ।

28. हमने दोरथी के मानसिक रूप से अशक्त भाई रुडोल्फ के पते-ठिकाने के बारे में जांच की है । इसका उत्तर अत्यंत चकित करने वाला

है । हमें यह बताया गया है कि दोरथी की मृत्यु के कुछ मास के भीतर ही उसकी मृत्यु हो गई थी । निःसंदेह, अपीलार्थी के जेल में होने के कारण रुडोल्फ की देख-रेख के लिए कोई व्यक्ति नहीं था । अपीलार्थी के गिरफ्तार किए जाने के पश्चात्, रुडोल्फ के पालित भाई एंथनी कुटिनहो (अभि. सा. 3) और अन्य भाई साइमन कुटिनहो (अमरीका निवासी) ने रुडोल्फ की देख-रेख नहीं की ।

29. हम इस तथ्य से सावधान हैं कि हमने उपर्युक्त साक्ष्य का विश्लेषण करके निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप किया है । तथापि, हत्या जैसे अपराध की प्रकृति की गंभीरता तथा महत्वपूर्ण साक्ष्य को अनदेखा करते हुए निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए हमारे लिए ऐसा करना विधि की दृष्टि से अनुज्ञेय है । इस न्यायालय के अनेक निर्णय द्वारा ऐसा हस्तक्षेप किए जाने की अनुज्ञा प्रदान की गई है जिनमें कुछ उदाहरण निम्न हैं ।

30. **शाम सुन्दर** बनाम **पूरन और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि मामले में घोर अन्याय से बचने के लिए इस प्रकार हस्तक्षेप किया जाना न्यायोचित होगा । हम इस मामले में उल्लिखित मताभिव्यक्तियों को निम्न प्रकार उद्धृत कर रहे हैं :–

> "2. यह सत्य है कि उच्च न्यायालय मामले में साक्ष्य का मूल्यांकन करने का हकदार है । यह भी सत्य है कि संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय, सामान्यतया, स्वयं साक्ष्य का मूल्यांकन करता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उच्च न्यायालय ने तथ्यों के आधार पर सही निष्कर्ष निकाला है या नहीं किंतु जहां उच्च न्यायालय ने विनिश्चित किए जाने के लिए आवश्यक मुद्दों को पूर्णतया अनदेखा किया है और गलत तरीके से साक्ष्य को अविश्वसनीय ठहराया है और इस तथ्य पर विचार करने में असफल रहा है कि पक्षकारों के बीच लंबे समय से चल रही शत्रुता के कारण यह प्रवृत्ति बन जाती है कि निर्दोष व्यक्तियों को अपराध में आलिप्त किया जाता है और घटना घटित होने के संबंध में तथ्यों को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया जाता है, तब ऐसी स्थिति में उच्च न्यायालय के लिए यह न्यायोचित होगा कि वह अपने समाधान के लिए साक्ष्य का परिशीलन करे ताकि मामले में घोर अन्याय न हो ।"

---

[1] (1990) 4 एस. सी. सी. 731.

31. **खिल्ली राम** बनाम **राजस्थान राज्य**[1] (2013 की विशेष इजाजत दांडिक याचिका सं. 7185) वाले मामले में न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि कतिपय संघटकों को निचले न्यायालयों द्वारा अनदेखा किया गया है, इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अधिकारिता संबंधी कोई भी वर्जन नहीं किया गया कि क्या अभियोजन पक्षकथन किसी भी प्रकार से स्वीकार किया जा सकता है या नहीं और हमारे समक्ष उक्त निर्णय के पैरा 4 और पैरा 13 को ठीक ही प्रस्तुत किया गया है जो निम्न प्रकार है :–

> "4. इस मामले में कुछ ऐसे संघटक हैं जिनको विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा अनदेखा किया गया है । दो पंच साक्षी न केवल पक्षद्रोही हो गए हैं अपितु उन्होंने ऐसे तथ्य भी प्रकट किए हैं जिनसे घटना से संबंधित प्रतिरक्षा साक्ष्य का समर्थन होता है । अभि. सा. 2 एक नमूना साक्षी है जिसने ऐसे तथ्यों का उल्लेख किया है जिनसे प्रतिरक्षा पक्षकथन संभावी हो जाता है । यहां तक कि शिक्षित कांस्टेबल (अभि. सा. 7) ने, जिसे पक्षद्रोही घोषित नहीं किया गया है, प्रतिरक्षा पक्ष का समर्थन किया है । जिस जगह और जिस रीति में रिश्वत दी गई है और ली गई है, उससे अभियोजन वृत्तांत किसी व्यक्ति के स्वाभाविक आचरण के पूर्णतया प्रतिकूल है – इस बात को दोनों न्यायालयों ने अनदेखा किया है । हमारा यह मत है कि यह ऐसा मामला है जिसमें साक्ष्य पर इस प्रकार विचार किया जाना चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि अभियोजन पक्षकथन को किसी भी प्रकार से स्वीकार किया जा सकता है या नहीं । विशेष इजाजत द्वारा फाइल की गई अपील में साक्ष्य का मूल्यांकन किए जाने पर प्रतिषेध लगाना एक स्वाधिरोपित कार्य है न कि अधिकारिता संबंधी वर्जन । हम यह भी दोहराते हैं कि सामान्यतया इस न्यायालय को साक्ष्य की पुनः परीक्षा करने से बचना चाहिए, किंतु ऐसे मामले में जिसमें यदि साक्ष्य को अनदेखा किया जाए तो गंभीर अन्याय हो सकता है, न्यायालय को स्वाधिरोपित प्रतिषेध का अनुसरण करते हुए विचार करना चाहिए ।
>
> * * * *
>
> 13. हम राजस्थान राज्य के विद्वान् काउंसेल की इस दलील से सहमत हैं कि सामान्यतया इस प्रकार का मामला साबित करना

[1] (1985) 1 एस. सी. सी. 28.

कठिन है और विधि सुस्थापित है कि जाल बिछाने से संबंधित प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के परिसाक्ष्य पर कार्यवाही की जा सकती है जैसा कि इस न्यायालय ने **प्रकाश चंद्र** बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन)** 1979 क्रि. ला ज. 329 और **किशन चंद्र मंगल** बनाम **राजस्थान राज्य** [1983] 1 एस. सी. आर. 569 वाले मामलों में उपदर्शित किया गया है, किंतु वर्तमान मामले में पंचों का साक्ष्य अभियोजन पक्षकथन का समर्थन करने के लिए उपलब्ध नहीं है । बहुत से महत्वपूर्ण मुद्दों में विरोधाभास है । अभियोजन वृत्तांत सामान्य मानवीय आचरण के प्रतिकूल है । मामला विरोधाभासी तथ्यों पर आधारित है और यदि समुचित रूप से विचार किया जाए तो न्यायालय अभियोजन वृत्तांत को त्यक्त करने के निष्कर्ष पर ही पहुंचेगा । पाउडर का प्रयोग न किए जाने पर साक्ष्य का जो अभाव हुआ है उसे पूरा करने के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, इसलिए अभियोजन पक्षकथन खारिज किए जाने योग्य है । मामले का कुल मिलाकर निर्धारण करने पर यह उपदर्शित होता है कि अभियोजन पक्ष का वृत्तांत सत्य नहीं है और प्रतिरक्षा पक्ष का वृत्तांत अधिक संभावी प्रतीत होता है । इन परिस्थितियों में हमारा यह मत है कि इस अपील में गुणता का निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त सामग्री है । हम अपील मंजूर करते हैं, अपीलार्थी की दोषसिद्धि अपास्त करते हैं और उसे दोषमुक्त करते हैं । उसके बंध-पत्र उन्मोचित किए जाते हैं ।"

32. **सूर्यमूर्ति और एक अन्य** बनाम **गोविन्दस्वामी और अन्य**[1] वाले मामले में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि संविधान के अनुच्छेद 136 द्वारा प्रदत्त विवेकाधिकार अति-व्यापक है जो न्यायालय को समुचित मामलों में तथ्यों के आधार पर उस स्थिति में निष्कर्ष निकालने के लिए अनुज्ञात करता है जब निचले न्यायालयों द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से घोर अन्याय होता है :–

"13. अभियुक्त के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि निचले दोनों न्यायालयों द्वारा अभिलिखित तथ्यों के आधार पर निकाले गए समवर्ती निष्कर्षों में हमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । हम इस तथ्य से अवगत हैं कि सामान्यतया, इस न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को प्रतिस्थापित करने में

---

[1] (1989) 3 एस. सी. सी. 24.

जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए । तथापि, इसका यह अर्थ नहीं है कि इस न्यायालय को हस्तक्षेप करने की शक्ति नहीं है । संविधान के अनुच्छेद 136 द्वारा प्रदत्त विवेकाधिकार के अधीन न्यायालय को व्यापक रूप से अनुज्ञात किया गया है कि वह तथ्यों के आधार पर ऐसे समुचित मामलों में हस्तक्षेप कर सके जिनमें निचले न्यायालयों द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से घोर अन्याय हुआ हो । सामान्यतया स्वाधिरोपित कार्यवाही द्वारा यह न्यायालय साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन या पुनः निर्धारण नहीं करता है जब तक कि उसकी यह राय न हो कि निचले न्यायालयों द्वारा व्यक्त किए गए मत से अन्याय हो रहा है और उसमें सुधार किया जाना आवश्यक है । यदि निचले न्यायालयों ने साक्ष्य का ठीक मूल्यांकन नहीं किया है जिससे न्याय नहीं हो रहा है तब इस न्यायालय का यह कर्तव्य बन जाता है कि वह न्याय प्रशासन के हित के लिए निचले न्यायालय के निष्कर्ष में हस्तक्षेप करे । हमारे मतानुसार, वर्तमान मामला ऐसा मामला है जिसमें हस्तक्षेप किया जाना आवश्यक है । निचले न्यायालयों ने अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 की इस क्षमता पर संदेह किया है कि उनके पास 73,600/- रुपए हो सकते हैं और यह साबित करने की अपेक्षा की है कि 10 वर्ष की अवधि में अभि. सा. 2 ने 33,600/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने के बावजूद किस प्रकार इतना धन बचत के रूप में इकट्ठा किया, निचले न्यायालय का यह दृष्टिकोण त्रुटिपूर्ण है ।"

33. संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन शक्ति की व्यापकता को स्पष्ट करते हुए **महेश दत्तात्रेय तीर्थकर** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में विधिक स्थिति का विस्तार से वर्णन किया है । संविधान के अनुच्छेद 136 की परिधि स्पष्ट करते हुए पूर्ववर्ती नज़ीरों पर विचार करते हुए इस निर्णय के पैरा 22 में विधिक स्थिति संक्षिप्त की गई है जिसे हम निम्न प्रकार उद्धृत कर रहे हैं :–

"22. अतः, संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन इस न्यायालय द्वारा तथ्यों के आधार पर निकाले गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने की शक्ति का प्रयोग किए जाने के प्रश्न के संबंध में विनिश्चयों की उपर्युक्त शृंखला में, जैसा कि इसमें इसके ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, इस न्यायालय द्वारा अधिकथित सिद्धांतों का सूक्ष्मता से परिशीलन करने से निम्नलिखित सिद्धांत उद्भूत होते हैं –

---

[1] (2009) 11 एस. सी. सी. 141.

(i) भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन इस न्यायालय की शक्तियां अति व्यापक हैं ।

(ii) यदि उच्च न्यायालय ने अनुचित या अन्यथा अनुपयुक्त रूप से कार्यवाही की है तब यह न्यायालय तथ्यों के आधार पर निकाले गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने के लिए स्वतंत्र है ।

(iii) यदि पक्षकारों के अपने-अपने पक्षकथन के समर्थन में प्रस्तुत किया गया साक्ष्य विश्वसनीयता और ग्राह्यता की दृष्टि से दुर्बल है और उसके आधार पर कार्यवाही करना अत्यंत अनुचित है ।

(iv) यदि साक्ष्य का मूल्यांकन और निकाला गया निष्कर्ष प्रक्रिया विधि की त्रुटि के कारण दूषित हो जाता है या वह निष्कर्ष नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के प्रतिकूल पाया जाता है, अभिलेख त्रुटिपूर्ण है और साक्ष्य का गलत अर्थ लगाया गया है या अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य से यह प्रकट होता है कि उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष स्पष्ट रूप से अनुचित और असमर्थनीय हैं ।

(v) यदि साक्ष्य के मूल्यांकन और निकाले गए निष्कर्षों से घोर अन्याय होता है या स्पष्ट रूप से अवैधता कारित होती है ।

(vi) यदि अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अनुचित हैं या साक्ष्य के आधार पर नहीं निकाले गए हैं या वे असंगत साक्ष्य के आधार पर निकाले गए हैं या ऐसी सारभूत अनियमितताएं हैं जिनसे उक्त निष्कर्ष प्रभावित होते हैं या न्यायालय यह महसूस करता है कि अन्याय हुआ है और असम्यक् रूप से अत्यधिक अन्याय की संभावना है ।

(vii) यदि उच्च न्यायालय ने किसी सिविल अपील में विवाद्यक तथ्य को पुनः विनिश्चित किया है और अनुमान के आधार पर त्रुटिपूर्ण निष्कर्ष निकाला है ।

(viii) यदि विचारण न्यायालय के निर्णय को उलटने वाला उच्च न्यायालय का निर्णय उचित नहीं है ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

34. उपर्युक्त चर्चा के परिणामस्वरूप हम अपीलार्थी को संदेह का लाभ देते हुए यह अपील मंजूर करते हैं । तदनुसार अपीलार्थी को आरोप से दोषमुक्त किया जाता है । उसे तत्काल छोड़ा जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

अस./अनू.

[2015] 1 उम. नि. प. 95

ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन आफ इंडिया लिमिटेड (मैसर्स)

बनाम

गणेश प्लोएटैक्स लिमिटेड (मैसर्स)

5 नवम्बर, 2014

न्यायमूर्ति जे. चेलमेश्वर और न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (1986 का 68) – धारा 21(क)(i) [सपठित सीमा-शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 40, 41, 50, 51 और निर्यात रिपोर्ट (प्ररूप) विनियम, 1976 का विनियम 3 और 4] – विदेश में माल परिवहन करने की संविदा – सेवा में कमी – प्रतिकर का दावा – परिवहन कंपनी-अपीलार्थी को सौंपे गए माल के पांच परेषणों में से चार परेषणों को उसके द्वारा बांग्लादेश सीमा-शुल्क स्टेशन पर परिदत्त किए जाने का अभिवाक् – अपीलार्थी के पक्षकथन का सर्वोत्तम सबूत यह होता कि वह विवादग्रस्त चार परेषणों के परिदत्त किए जाने की बाबत सीमा-शुल्क के उचित अधिकारी द्वारा सम्यक्‌तः पारित किए गए निर्यात पत्र और विहित प्ररूप में निर्यात रिपोर्ट की प्रतियां पेश करता, जिन्हें पेश करने में वह असफल रहा है, इसलिए राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निपटान आयोग द्वारा मंजूर किए गए प्रत्यर्थी के दावे में हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं है ।

इस अपील में के दोनों पक्षकार कंपनी अधिनियम के अधीन पब्लिक कंपनी हैं । प्रत्यर्थी सूत के विनिर्माण और विक्रय तथा विभिन्न प्रकार के कपड़ों के निर्यात के काम में लगी है, जबकि अपीलार्थी प्रतिफल पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल का परिवहन करने के कारबार में लगी है ।

वर्ष 1992 में प्रत्यर्थी को एक मांग-पत्र सूती कपड़े का निर्यात करने के लिए प्राप्त हुआ । उक्त मांग-पत्र मैसर्स अलीफ इंटरप्राइजिज (ट्रेडिंग), ढाका, बांग्लादेश द्वारा दिया गया था जिसमें प्रत्यर्थी को मांग-पत्र में विनिर्दिष्ट माल को मैसर्स अज़ीम गारमेंट्स लिमिटेड, ढाका, बांग्लादेश को निर्यात करने के लिए कहा गया था । प्रत्यर्थी से अभिहित माल भेजने और बीजक, माल की रसीद की परेषण प्रति, परेषण पत्र और विनिमय पत्र आदि सहित विभिन्न दस्तावेज मैसर्स इस्लामी बैंक बांग्लादेश लिमिटेड, जो अभिकथित रूप से मैसर्स अज़ीम गारमेंट्स लिमिटेड, ढाका का बैंक है, के माध्यम से परक्रामित करने की अपेक्षा की गई थी । प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को विभिन्न तारीखों पर माल के पांच परेषण सौंपे । परेषण पत्र के अधीन उक्त माल अहमदाबाद से बांग्लादेश में बेनापोल परिवहन किया जाना अपेक्षित था । ऊपर उल्लिखित पांचों परेषणों के परेषण पत्रों की परेषिती प्रतियां प्रत्यर्थी को सौंपी गई थीं । परेषण पत्रों की परेषिती प्रतियों सहित सभी सुसंगत दस्तावेज प्रत्यर्थी द्वारा अपने बैंक के माध्यम से इस्लामी बैंक बांग्लादेश लिमिटेड को सम्यक् रूप से संसूचित किए गए थे । इस्लामी बैंक बांग्लादेश को यद्यपि प्रत्यर्थी द्वारा भेजे गए सभी दस्तावेज प्राप्त हुए थे, तो भी इनका आदरण नहीं किया और लंबे समय तक कोई भुगतान नहीं किया । उक्त परिस्थितियों में, प्रत्यर्थी ने अपने बैंक के माध्यम से भारत में माल वापस आयात करने के लिए सभी दस्तावेज वापस मंगाए । इस्लामी बैंक द्वारा मूल दस्तावेज वापस भेजने पर इस अपील में प्रत्यर्थी ने अपने पत्र द्वारा अपीलार्थी को 'सभी पांचों परेषणों को नई दिल्ली परिवहन करने और इन्हें नई दिल्ली में उसे परिदत्त करने के लिए पुनः बुक करने' के लिए कहा । उक्त पत्र के उत्तर में अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी को आश्वस्त किया कि सभी पांचों परेषणों को नई दिल्ली में परिदत्त करने के लिए पुनः बुक किया जाएगा । अपीलार्थी ने इसके पश्चात् प्रत्यर्थी से मूल परेषिती प्रतियों के साथ-साथ बीजक की प्रतियों को उसके अहमदाबाद स्थित कार्यालय में अभ्यर्पित करने और पुनः बुकिंग करने के लिए एक तरफ का भाटक और चुंगी का संदाय करने के लिए कहा । अपीलार्थी के उक्त पत्र के उत्तर में प्रत्यर्थी ने अपने पत्र द्वारा अपीलार्थी से कहा कि अन्य बातों के साथ-साथ इस बात की पुष्टि की जाए कि उक्त परेषण पत्र के अधीन समावेशित माल प्रत्यर्थी के पास उपलब्ध है और उक्त माल के अवस्थान की भी पुष्टि की जाए । अपीलार्थी ने अपने पत्र द्वारा प्रत्यर्थी द्वारा मांगी गई कोई सूचना दिए बिना उत्तर दिया अपितु केवल यह आश्वासन दिया कि

माल मूल परेषिती प्रतियां प्राप्त होने के पश्चात् पंद्रह से बीस दिन के भीतर परिदत्त कर दिया जाएगा । प्रत्यर्थी ने अपने पूर्ववर्ती पत्र में उसके द्वारा की गई विभिन्न पूछताछ के स्पष्ट उत्तर देने की ईप्सा करते हुए एक अन्य पत्र भेजा । अपीलार्थी ने उत्तर में इस बात की पुष्टि की कि पूर्वोक्त सभी परेषण गोदाम में सुरक्षित और सही दशा में पड़े हैं और इस बात की भी पुष्टि की कि मूल परेषिती प्रतियां प्राप्त होने पर उक्त माल को नई दिल्ली भेजने के लिए पुनः बुक कर दिया जाएगा । अपीलार्थी के उक्त पत्र के पश्चात् एक अन्य पत्र भेजा गया, जिसमें उसने यह कहा कि हमारे कलकत्ता कार्यालय से प्राप्त उत्तर के अनुसार पहले चार परेषण पहले ही निर्यात कर दिए गए हैं और दस्तावेज सीधे पक्षकार को भेज दिए हैं । अंतिम परेषण हमारे कलकत्ता के गोदाम में पड़ा हुआ है । यदि आप इसे दिल्ली के लिए पुनः बुक कराना चाहते हैं तो आप मूल परेषिती प्रति और बकाया का डी डी भेजें । परेषिती प्रति और डी डी प्राप्त होने पर हमारा कलकत्ता स्थित कार्यालय इस परेषण को दिल्ली के लिए पुनः बुक कर देगा । ऊपर उल्लिखित तथ्यों की पृष्ठभूमि में इस अपील में प्रत्यर्थी ने उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 21(क)(i) के अधीन राष्ट्रीय आयोग के समक्ष अर्जी में शिकायत फाइल की जिसमें कुल 40,98,164.04 रुपए की विभिन्न रकमों के साथ-साथ 34,74,321.45 रुपए पर 21 प्रतिशत वार्षिक की दर से वाद कालीन और भावी ब्याज तथा खर्चे का दावा किया । राष्ट्रीय आयोग ने यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि इस अपील में अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत की गई बीजकों की प्रतियां और शिकायतकर्ता द्वारा फाइल की गई बीजकों की प्रतियां आपस में मेल नहीं खाती हैं और इसलिए इस अपील में अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेज 'जाली' हैं और यह अधिनिर्णीत किया कि विरोधी पक्षकार को निदेशित किया जाता है कि वह परेषण बुक करने की तारीख से लेकर शिकायत फाइल करने की तारीख तक 12 प्रतिशत वार्षिक ब्याज के साथ और इसी दर पर वाद कालीन और भावी ब्याज सहित 29,74,321.45 रुपए का संदाय करे । विरोधी पक्षकार खर्चे के रूप में 25,000/- रुपए का भी संदाय करेगा । अपीलार्थी द्वारा राष्ट्रीय आयोग के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – भारत में आयात और भारत से बाहर निर्यात सीमा-शुल्क अधिनियम, 1962 और तद्धीन बनाए गए नियमों और विनियमों द्वारा

अधिनियमित होता है । उक्त अधिनियम की धारा 50 में यह अनुबंधित है कि भूमि मार्ग द्वारा किसी माल का निर्यात करने वाले निर्यातकर्ता द्वारा उचित अधिकारी को निर्यात पत्र पेश करके उसकी प्रविष्टि करना आवश्यक है । धारा 51 के अधीन निर्यात पत्र (धारा 50 के अधीन अनुध्यात) प्राप्त करने के पश्चात् यदि उचित अधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि निर्यातकर्ता ने अधिनियम के अधीन निर्यात शुल्क और अन्य प्रभारों का, यदि कोई हो, संदाय कर दिया है और ऐसा माल प्रतिषिद्ध माल नहीं है, तो निर्यात के लिए ऐसे माल की निकासी और लदाई अनुज्ञात करते हुए आदेश दे सकता है । धारा 40 के अधीन, किसी प्रवहण का भारसाधक व्यक्ति किसी सीमा-शुल्क स्टेशन पर निर्यातित माल लादने के लिए तब तक अनुज्ञात नहीं है जब तक कि उचित अधिकारी द्वारा सम्यक्तः पास निर्यात पत्र निर्यातकर्ता द्वारा प्रवहण के भारसाधक व्यक्ति को हस्तांतरित न किया जाए । अपीलार्थी, जिसने प्रत्यर्थी द्वारा उसे सौंपे गए पांच परेषणों में से चार परेषणों को निर्यात करने का दावा किया है, पेटरापोल सीमा-शुल्क स्टेशन पर उचित अधिकारी द्वारा सम्यक्तः पास किया गया निर्यात पत्र अभिप्राप्त किए बिना माल को लदवा नहीं सकता था और अपीलार्थी के स्वामित्वाधीन प्रवहण का भारसाधक व्यक्ति उचित प्राधिकारी को धारा 41 के अधीन अनुध्यात विहित प्ररूप में निर्यात रिपोर्ट परिदत्त किए बिना न तो पेटरापोल सीमा-शुल्क स्टेशन पर यान में माल को लाद सकता था और न ही वहां से प्रस्थान कर सकता था । अधिनियम की धारा 41 के अधीन यह आज्ञापक है कि निर्यातित माल का वहन करने वाले किसी प्रवहण का भारसाधक व्यक्ति किसी यान द्वारा निर्यात करने की दशा में उचित अधिकारी को विहित प्ररूप में निर्यात रिपोर्ट देगा । अपीलार्थी के इस पक्षकथन का, कि उसने विवादग्रस्त माल का पेटरापोल सीमा-शुल्क से परे और भारत की सीमा-शुल्क सीमा से बाहर वास्तव में परिवहन किया था, सर्वोत्तम सबूत यह होता कि वह ऊपर उल्लिखित दो दस्तावेज अर्थात् विवादग्रस्त चार परेषणों के निर्यात पत्र और निर्यात रिपोर्ट की प्रतियां पेश करता । अपीलार्थी की ओर से प्रश्नगत चार परेषणों के संबंध में ऊपर उल्लिखित दोनों दस्तावेजों के विद्यमान होने के संबंध में राष्ट्रीय आयोग के समक्ष न तो कोई अभिवाक् किया गया है और न ही अपीलाधीन आदेश में कोई चर्चा है । अपीलार्थी ने राष्ट्रीय आयोग के समक्ष लिखित कथन में यह सारहीन प्रकथन करने के सिवाय कि उसे सौंपे गए पांच परेषणों में से चार परेषणों को बेनापोल में परिदत्त कर दिया गया था उसने (1) परिवहन करने

हेतु माल को लादने के लिए धारा 51 के अधीन उचित अधिकारी द्वारा अनुज्ञा ; या (2) चारों परेषणों, जो अभिकथित रूप से परिवहन किए गए हैं और बांग्लादेश के बेनापोल सीमा-शुल्क स्टेशन के भांडागार में परिदत्त किए गए हैं, में से प्रत्येक के संबंध में धारा 41 के अधीन निर्यात रिपोर्ट के परिदान की वास्तविक तारीखों के संबंध में कोई विनिर्दिष्ट अभिवाक् नहीं किया । अपीलार्थी का यह अभिवाचित पक्षकथन है कि परिवाहक के रूप में उसकी विधिक बाध्यता उसे सौंपे गए माल को बेनापोल सीमा-शुल्क स्टेशन पर इसका परिदान करने पर समाप्त हो जाती है । इस देश में किसी भी सीमा-शुल्क स्टेशन पर आयातित माल को उतारा जाना भी सीमा-शुल्क अधिनियम, 1962 के उपबंधों द्वारा विनियमित होता है । यह न्यायालय विश्वस्त है कि यह बांग्लादेश की विधि द्वारा भी समान रूप से विनियमित होता होगा । इस बाबत वस्तुतः बांग्लादेश की क्या विधि है और अपीलार्थी द्वारा अभिकथित रूप से वहन किए गए बेनापोल में परिदत्त किए गए माल के परिदान के तथ्य को कैसे साबित किया जाना है, दो भिन्न और अलग-अलग बातें हैं । प्राइवेट अंतरराष्ट्रीय विधि का यह स्थिर सिद्धांत है कि विदेशी विधि सदैव एक तथ्य का प्रश्न होती है जिसे उस पक्षकार द्वारा अभिवाचित और साबित किया जाना अपेक्षित है जिसके अधिकार या बाध्यताएं उस विदेशी विधि से प्रवाहित होते हैं । वर्तमान मामले में इस बाबत ऐसा कोई अभिवाक् या सबूत नहीं है । अपीलार्थी ने इस बारे में कोई अभिवाक् नहीं किया है कि आयातित माल को बांग्लादेश की विधि के अधीन विहित इसके सीमा-शुल्क स्टेशनों पर उतारे जाने की प्रक्रिया क्या है । अपीलार्थी ने न ही बेनापोल में प्रत्येक चारों परेषणों के वस्तुतः परिदान की तारीखों का ब्यौरा दिया है । तथापि, अपीलार्थी ने बांग्लादेश गणराज्य के बेनापोल स्थित सीमा-शुल्क विभाग के किसी अधिकारी द्वारा अभिकथित रूप से लिखित तारीख 11 अप्रैल, 2002 का एक पत्र, जो संयुक्त आयुक्त, सीमा-शुल्क विभाग, बेनापोल-जेसोर (बांग्लादेश) को संबोधित है, का जोरदार अवलंब लिया है । इसमें तारीख 9 जनवरी, 1993, 13 दिसम्बर, 1992, 20 दिसम्बर, 1992 और 11 दिसम्बर, 1993 को चार बिलों की प्रविष्टि का उल्लेख है । दस्तावेज, जो बांग्लादेश के सीमा-शुल्क के दो अधिकारियों के बीच आंतरिक पत्राचार होना तात्पर्यित है, निस्संदेह उसकी एक प्रति तात्पर्यित रूप से इस अपील में अपीलार्थी को भी चिन्हित है । ऐसे किसी पत्राचार के अवसर को स्पष्ट करते हुए कोई अभिवाक् नहीं किया गया है । लोक दस्तावेज का सबूत साक्ष्य अधिनियम की धारा 78 के

अधीन विनिर्दिष्ट रीति में दिया जाना चाहिए । अभिलेख पर यह सिद्ध करने के लिए कुछ नहीं है कि ऊपर उल्लिखित पत्र साक्ष्य अधिनियम की धारा 78 के अनुसार सम्यक् रूप से साबित किया गया है । (पैरा 29, 30, 32, 39, 41, 42, 43 और 45)

अपीलार्थी की अन्य दलील यह है कि इस तथ्य को देखते हुए कि इस अपील में प्रत्यर्थी ने माल, जो इस अपील में विवाद का विषय है, निर्यात करने के आधार पर शुल्क वापसी का दावा किया है, इसलिए प्रत्यर्थी इस तथ्य पर विवाद नहीं कर सकता है कि माल सम्यक्तः निर्यात किया गया था अर्थात् भारतीय सीमा-शुल्क सीमा से परे सम्यक्तः परिवहन किया गया था और बांग्लादेश के बेनापोल सीमा-शुल्क स्टेशन पर परिदत्त किया गया था । प्रस्तुत मामले में पुनः एक बार अपीलार्थी के अभिवाकों से यह स्पष्ट नहीं है कि इस अपील में प्रत्यर्थी ने धारा 74 या धारा 75 के अधीन वापसी का दावा किया है या नहीं । जैसी भी स्थिति हो, दोनों दशाओं में निर्यातकर्ता को वापसी का अधिकार तब प्रोद्भूत होता है जब निर्यातकर्ता माल का निर्यात करने के लिए अधिनियम की धारा 50 के अधीन प्रविष्टि करता है और धारा 51 के अधीन उचित अधिकारी द्वारा माल की निकासी और लदाई के लिए आदेश किया जाता है । भारत सरकार द्वारा इस संबंध में समय-समय पर नियम बनाए गए हैं । नियम जो वर्तमान में प्रचलन में हैं, 'सीमा-शुल्क, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और सेवा कर वापसी नियम, 1995' के रूप में जाने जाते हैं, जो सीमा-शुल्क अधिनियम सहित विभिन्न अधिनियमितियों के अधीन प्रदत्त नियम बनाने के प्राधिकार का प्रयोग करते हुए बनाए गए हैं । तथापि, ये नियम प्रश्नगत निर्यात के संव्यवहार के पश्चात् बनाए गए हैं । इस न्यायालय के समक्ष न तो उस तारीख को, जब प्रत्यर्थी ने वापसी का दावा किया था, स्थिति को शासित करने वाले सुसंगत नियम प्रस्तुत किए गए हैं और न ही दोनों में से किसी पक्षकार द्वारा उस सुसंगत तारीख के बारे में कोई स्पष्ट अभिवाक् किया गया है जिस पर वापसी का कोई दावा किया गया था । हम इस बात से आश्वस्त नहीं हैं कि प्रश्नगत संव्यवहार पर लागू नियमों के अधीन क्या वह तारीख, जो निर्यातकर्ता को वापसी का दावा करने के लिए आवेदन फाइल करने का हकदार बनाती है, विदेश में माल के वस्तुतः परिदान की तारीख है या क्या वह भारत से निर्यात के लिए माल की प्रविष्टि की तारीख है । अभिलेख पर ऐसी किसी सामग्री के अभाव में जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है, केवल इस तथ्य से कि प्रत्यर्थी ने वापसी शुल्क का दावा

किया है (प्रत्यर्थी ने यह स्वीकार किया है कि उन्होंने वापसी शुल्क का दावा किया था जैसा कि अपीलार्थी द्वारा अभिकथन किया गया है) आवश्यक रूप से यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि अपीलार्थी ने प्रश्नगत माल को बेनापोल सीमा-शुल्क स्टेशन पर सम्यक् रूप से परिदत्त किया था । 1995 के वापसी नियमों के अधीन, जो आज प्रवर्तन में हैं, नियम 13 में यह अनुबंधित है कि वापसी के लिए दावा उस तारीख को फाइल किया जा सकता है जब उचित अधिकारी अधिनियम की धारा 51 के अधीन माल की निकासी और लदाई को अनुज्ञात करते हुए आदेश करता है । हमने नियम 13 को इसलिए निर्दिष्ट नहीं किया है कि यह मामले के तथ्यों पर लागू होता है, अपितु केवल यह प्रदर्शित करने के लिए निर्दिष्ट किया है कि विधि में उस तारीख और घटना का स्पष्ट रूप से उपबंध किया गया है जिसके परिणामस्वरूप निर्यातकर्ता वापसी की ईप्सा करने का हकदार हो जाता है । इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी द्वारा उसे बेनापोल (बांग्लादेश) परिवहन करने के लिए माल सौंपे जाने की बात स्वीकार की है, यह साबित करने का भार अपीलार्थी पर था कि उसने समाधानप्रद रूप से बेनापोल (बांग्लादेश) में विधि के अनुसार माल का परिदान करके अपने विधिक दायित्व का निर्वहन किया है और अपीलार्थी इस भार का निर्वहन करने में असफल रहा है । इसलिए न्यायालय की राय में, राष्ट्रीय आयोग ने प्रत्यर्थी के दावे को ठीक ही मंजूर किया है । (पैरा 48, 51, 52, 53 और 54)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2007 की सिविल अपील सं. 1427.

1993 की मूल अर्जी सं. 341 में राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निपटान आयोग, नई दिल्ली के तारीख 20 दिसम्बर, 2006 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री जयंत भूषण, ज्येष्ठ अधिवक्ता और उनके साथ (सुश्री) माधवी दिवान, ऋषि महेश्वरी और पी. एस. सुधीर

प्रत्यर्थी की ओर से — सर्वश्री ए. एन. हकसर, राजीव के. विरमानी, ज्येष्ठ अधिवक्ता और उनके साथ (सुश्री) रश्मी विरमानी, संदीप नारायण, (सुश्री) मुक्ता दत्ता, ज्योति प्रकाश, मैसर्स एस. नारायण एंड कं.

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति जे. चेलमेश्वर ने दिया ।

न्या. चेलमेश्वर – यह अपील 1993 की मूल अर्जी सं. 341 में राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निपटान आयोग, नई दिल्ली (जिसे संक्षेप में इसमें आगे 'राष्ट्रीय आयोग' कहा गया है) के तारीख 20 दिसम्बर, 2006 के आदेश के विरुद्ध उपभोक्ता संक्षरण अधिनियम, 1986 की धारा 23 के अधीन फाइल की गई है । विरोधी पक्षकार/ऊपर-वर्णित मूल अर्जी में प्रत्यर्थी इस अपील में अपीलार्थी है । इस अपील में एकमात्र प्रत्यर्थी राष्ट्रीय आयोग के समक्ष शिकायतकर्ता था ।

2. राष्ट्रीय आयोग ने आक्षेपित आदेश द्वारा इस अपील में प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई शिकायत को मंजूर किया और इस अपील में अपीलार्थी को 29,74,321.45 रुपए की रकम 25,000/- रुपए के खर्च के अतिरिक्त शिकायत फाइल करने की तारीख से वसूली की तारीख तक 12 प्रतिशत वार्षिक दर से ब्याज के साथ संदाय करने का निदेश दिया ।

3. राष्ट्रीय आयोग के समक्ष शिकायत का सार निम्नलिखित है :–

4. शिकायत में के दोनों पक्षकार कंपनी अधिनियम के अधीन पब्लिक कंपनी हैं । प्रत्यर्थी सूत के विनिर्माण और विक्रय तथा विभिन्न प्रकार के कपड़ों के निर्यात के काम में लगी है, जबकि अपीलार्थी प्रतिफल पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल का परिवहन करने के कारबार में लगी है ।

5. वर्ष 1992 में प्रत्यर्थी को एक मांग-पत्र इसमें विनिर्दिष्ट प्रकार के शत-प्रतिशत सूती कपड़े का निर्यात करने के लिए प्राप्त हुआ, जिसका इस निर्णय के प्रयोजन के लिए विस्तृत ब्यौरा देना आवश्यक नहीं है । उक्त मांग-पत्र मैसर्स अलीफ इंटरप्राइजिज (ट्रेडिंग), ढाका द्वारा दिया गया था जिसमें प्रत्यर्थी को मांग-पत्र में विनिर्दिष्ट माल को मैसर्स अज़ीम गारमेंट्स लिमिटेड, ढाका, बांग्लादेश को निर्यात करने के लिए कहा गया था ।

6. शिकायत के अनुसार, प्रत्यर्थी से अभिहित माल भेजने और 'बीजक, माल की रसीद की परेषण प्रति, परेषण पत्र और विनिमय पत्र आदि सहित' विभिन्न दस्तावेज मैसर्स इस्लामी बैंक बांग्लादेश लिमिटेड, जो अभिकथित रूप से मैसर्स अज़ीम गारमेंट्स लिमिटेड, ढाका का बैंक है, के माध्यम से परक्रामित करने की अपेक्षा की गई थी । शिकायत का पैरा 3 निम्न प्रकार से है :–

> "उक्त मांग-पत्र के निबंधनों के अनुसार, शिकायतकर्ता से उक्त माल की मात्रा प्रेषित करने और बीजक, माल की रसीद की परेषिती

प्रति, परेषण पत्र, विनिमय पत्र आदि सहित विभिन्न दस्तावेजों और प्रेषण संबंधी अन्य दस्तावेजों के बारे में उक्त मैसर्स अज़ीम गारमेंट्स लिमिटेड के बैंक मैसर्स इस्लामी बैंक बांग्लादेश लिमिटेड को परक्रामित करने की अपेक्षा की गई थी ।"

7. प्रत्यर्थी ने शिकायत में यह प्रकथन किया कि वह उक्त इस्लामी बैंक को परक्रामित किए जाने वाले और प्रत्यर्थी के बैंक अर्थात् अमेरिकन एक्सप्रेस बैंक लिमिटेड द्वारा दी गई स्वीकृति के विभिन्न दस्तावेज भेजने के लिए सहमत हुई थी । शिकायत में यह भी कथन किया गया है कि उक्त इस्लामी बैंक माल का परिदान लेने या मैसर्स अज़ीम गारमेंट्स लिमिटेड के पक्ष में माल की रसीद/परेषण पत्र की परेषिती प्रति पर पृष्ठांकन करने का हकदार था । शिकायत के पैरा 3 का सुसंगत भाग निम्न प्रकार से है :–

"उक्त दस्तावेज उक्त इस्लामी बैंक बांग्लादेश लिमिटेड को परक्रामित करने और शिकायतकर्ता के बैंक अमेरिकन एक्सप्रेस बैंक लिमिटेड द्वारा स्वीकृति के लिए सहमति हुई थी । उक्त इस्लामी बैंक बांग्लादेश लिमिटेड ने परेषित माल की कीमत के लिए विनिमय पत्र सहित उक्त दस्तावेजों के संदाय के लिए स्वीकृति देने पर या तो स्वयं उक्त माल के परेषण का परिदान लेने का हकदार था या माल की रसीद/परेषण पत्र की परेषिती प्रति का पृष्ठांकन मैसर्स अज़ीम गारमेंट्स लिमिटेड के पक्ष में करने का हकदार था ।"

8. प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को विभिन्न तारीखों पर माल के पांच परेषण सौंपे, जिनका ब्यौरा निम्नलिखित है :–

बीजक सं.	तारीख	मात्रा, मीटर में	रकम यूएस डालर	परेषण पत्र सं.	तारीख
ईएक्सपी/2	28.10.92	13982	18176.60	ए 08465	28.10.92
ईएक्सपी/3	05.11.92	25109	32641.70	ए 08565	05.11.92
ईएक्सपी/4	14.12.92	12208	15870.40	ए 08658	16.11.92
ईएक्सपी/5	30.01.93	16188	21044.60	ए 98738	29.12.92
ईएक्सपी/6	25.02.93	5447	7081.10	ए 11351	15.02.93
			94814.20		

...शिकायत का पैरा 4

9. परेषण पत्र के अधीन उक्त माल अहमदाबाद से बांग्लादेश में बेनापोल परिवहन किया जाना अपेक्षित था । ऊपर उल्लिखित पांचों परेषणों

के परेषण पत्रों की परेषिती प्रतियां प्रत्यर्थी को सौंपी गई थीं । शिकायत में यह स्वीकार किया गया है कि माल, जो ऊपर उल्लिखित पांचों परेषणों की विषयवस्तु हैं, अलग-अलग परेषण पत्रों की परेषिती प्रति प्रस्तुत करने पर परिदत्त किए जाने की अपेक्षा की गई थी । शिकायत का पैरा 4 निम्न प्रकार से है :–

"शिकायतकर्ता ने प्रत्यर्थी को समय-समय पर उक्त माल की विभिन्न मात्रा अहमदाबाद से बेनापोल, बांग्लादेश में परिवहन किए जाने के लिए सौंपी । प्रत्यर्थी ने भाटक लेने के पश्चात् अपने परेषण पत्र जारी किए । अलग-अलग परेषण पत्रों की परेषिती प्रतियां शिकायतकर्ता को दी गईं और प्रत्येक परेषण पत्र में समावेशित माल परिदत्त किए जाने थे और संबंधित परेषण पत्र की परेषिती प्रति पेश करने के उपरांत ही परिदान लिया जा सकता था अन्यथा नहीं ।"

10. प्रत्यर्थी के अनुसार, परेषण पत्रों की परेषिती प्रतियों सहित सभी सुसंगत दस्तावेज प्रत्यर्थी द्वारा अपने बैंक के माध्यम से इस्लामी बैंक बांग्लादेश लिमिटेड को सम्यक् रूप से संसूचित किए गए थे । शिकायत में यह विनिर्दिष्ट रूप से प्रकथन किया गया है कि उक्त संव्यवहार मूलतः उक्त इस्लामी बैंक द्वारा खोले गए प्रत्यय पत्र के अंतर्गत था किंतु उक्त प्रत्यय पत्र का पर्यवसान हो गया था । इसलिए ऊपर उल्लिखित दस्तावेज उक्त बैंक को संग्रहण आधार पर भेजे गए थे । शिकायत का पैरा 5 निम्न प्रकार से है :–

"शिकायतकर्ता द्वारा सभी दस्तावेज, जिनमें अन्य के साथ-साथ, बीजक, परेषण पत्रों की परेषिती प्रतियां और विनिमय पत्र सम्मिलित हैं, अमेरिकन एक्सप्रेस बैंक लि. के माध्यम से संदाय की स्वीकृति के लिए सम्यक् रूप से इस्लामी बैंक बांग्लादेश लिमिटेड को भेजे गए थे । उक्त दस्तावेज हालांकि जो उक्त इस्लामी बैंक बांग्लादेश लिमिटेड द्वारा खोले गए प्रत्यय पत्र के अधीन लिखे गए थे, संग्रहण आधार पर भेजे गए थे क्योंकि उक्त पत्र का पर्यवसान हो गया था ।"

11. शिकायत से यह प्रतीत होता है कि इस्लामी बैंक बांग्लादेश को यद्यपि प्रत्यर्थी द्वारा भेजे गए सभी दस्तावेज प्राप्त हुए थे, तो भी इनका आदरण नहीं किया और लंबे समय तक कोई भुगतान नहीं किया । उक्त परिस्थितियों में, प्रत्यर्थी ने अपने बैंक के माध्यम से 'भारत में माल वापस आयात करने के लिए सभी दस्तावेज वापस मंगाए'। स्वीकृततः, इस्लामी

बैंक बांग्लादेश द्वारा शिकायतकर्ता के बैंक को उक्त दस्तावेज असंदत्त वापस भेजे गए थे । शिकायत का पैरा 8 निम्न प्रकार से है :–

> "इसके पश्चात् पूर्वोक्त पांच परेषणों के उक्त दस्तावेज उक्त इस्लामी बैंक बांग्लादेश लिमिटेड द्वारा शिकायतकर्ता के बैंक को अपने तारीख 16.6.1993 के पत्र के साथ असंदत्त लौटा दिए गए ।"

12. इस्लामी बैंक द्वारा मूल दस्तावेज वापस भेजने पर इस अपील में प्रत्यर्थी ने तारीख 12 जुलाई, 1993 के अपने पत्र द्वारा अपीलार्थी को 'सभी पांचों परेषणों को नई दिल्ली परिवहन करने और इन्हें नई दिल्ली में शिकायतकर्ता को परिदत्त करने के लिए पुनः बुक करने' के लिए कहा । (शिकायत का पैरा 10) उक्त पत्र के उत्तर में इस अपील में अपीलार्थी ने तारीख 22 जुलाई, 1993 के अपने पत्र द्वारा प्रत्यर्थी को आश्वस्त किया कि सभी पांचों परेषणों को नई दिल्ली में परिदत्त करने के लिए पुनः बुक किया जाएगा । अपीलार्थी ने इसके पश्चात् प्रत्यर्थी से 'मूल परेषिती प्रतियों के साथ-साथ बीजक की प्रतियों को उसके अहमदाबाद स्थित कार्यालय में अभ्यर्पित करने और पुनः बुकिंग करने के लिए एक तरफ का भाटक और चुंगी का संदाय करने' के लिए कहा ।

13. अपीलार्थी के तारीख 22 जुलाई, 1993 के पत्र के उत्तर में प्रत्यर्थी ने तारीख 31 जुलाई, 1993 के अपने पत्र द्वारा अपीलार्थी से कहा कि अन्य बातों के साथ-साथ इस बात की पुष्टि की जाए 'कि उक्त परेषण पत्र के अधीन समावेशित माल प्रत्यर्थी के पास उपलब्ध है और उक्त माल के अवस्थान की भी पुष्टि की जाए' । अपीलार्थी ने तारीख 16 अगस्त, 1993 के अपने पत्र द्वारा प्रत्यर्थी द्वारा मांगी गई कोई सूचना दिए बिना उत्तर दिया अपितु केवल यह आश्वासन दिया कि माल 'मूल परेषिती प्रतियां प्राप्त होने के पश्चात्' पंद्रह से बीस दिन के भीतर परिदत्त कर दिया जाएगा ।

14. प्रत्यर्थी ने तारीख 22 जुलाई, 1993 के अपने पूर्ववर्ती पत्र में उसके द्वारा की गई विभिन्न पूछताछ के स्पष्ट उत्तर देने की ईप्सा करते हुए तारीख 28 अगस्त, 1993 को एक अन्य पत्र भेजा ।

15. अपीलार्थी ने उत्तर में तारीख 11 सितम्बर, 1993 के अपने पत्र द्वारा इस बात की पुष्टि की कि पूर्वोक्त सभी परेषण गोदाम में सुरक्षित और सही दशा में पड़े हैं और इस बात की भी पुष्टि की कि मूल परेषिती प्रतियां प्राप्त होने पर उक्त माल को नई दिल्ली भेजने के लिए पुनः बुक कर दिया जाएगा । सुसंगत भाग निम्न प्रकार से है :–

"विषय : चालान सं. ए-08465, तारीख 28.10.1992

चालान सं. ए-08565, तारीख 05.11.1992

चालान सं. ए-08658, तारीख 16.11.1992

चालान सं. ए-098738, तारीख 29.12.1992

चालान सं. ए-11351, तारीख 15.02.1993

सारी कवायद अहमदाबाद से बेनापोल के लिए

हमें आपका पत्र सं. आरकेवी/एम-889, तारीख 28 अगस्त, 1993 उपरोक्त परेषणों की पुनः बुकिंग के लिए प्राप्त हुआ ।

हमने आपको पहले ही दो पत्र आपके ग्राहकों को यह परामर्श देते हुए दिए हैं कि परेषण की मूल प्रति और एक तरफ का भाटक तथा अन्य बकाया का निक्षेप करें और केवल उसके पश्चात् ही हम उपरोक्त परेषणों की पुनः बुकिंग करेंगे । किंतु आप अपने पूर्ववर्ती पत्र के पैरा 1(क) और (ख) में निर्दिष्ट पुष्टि करने की मांग कर रहे हैं ।

कृपया यह नोट करें कि उपरोक्त परेषण हमारे गोदाम में सुरक्षित और सही दशा में पड़े हुए हैं । जब आपका ग्राहक परेषण की मूल प्रति के साथ हमारे बकाया का डी डी हमारे अहमदाबाद या कलकत्ता कार्यालय में भेजेगा, तब हमारा संबंधित कार्यालय आपके परामर्श अनुसार बेनापोल को सामग्री दिल्ली के लिए पुनः बुक करने का परामर्श देगा । आप अनावश्यक पत्राचार कर रहे हैं और इस लंबे विलंब के कारण विलंब-शुल्क तीन रुपए प्रति किलो प्रतिदिन की दर से बढ़ता जा रहा है ।

हम आशा करते हैं कि आप सभी बातों को समझें और तुरंत आवश्यक कार्रवाई करें ।"

16. अपीलार्थी के उक्त पत्र के पश्चात् तारीख 29 सितम्बर, 1993 को एक अन्य पत्र भेजा गया, जिसका सुसंगत भाग निम्नलिखित है :–

"विषय : चालान सं. ए-08465, तारीख 28.10.1992

चालान सं. ए-08565, तारीख 05.11.1992

चालान सं. ए-08658, तारीख 16.11.1992

चालान सं. ए-098738, तारीख 29.12.1992

चालान सं. ए-11351, तारीख 15.02.1993

सारी कवायद अहमदाबाद से बेनापोल के लिए

यह पत्र उपरोक्त परेषणों के संबंध में हमारे पूर्ववर्ती पत्र सं. एसबीडी/ओपीएन/आईएनएम/3569/93, तारीख 11 सितम्बर, 1993 के संदर्भ में है ।

हमारे कलकत्ता कार्यालय को प्राप्त उत्तर के अनुसार पहले चार परेषण पहले ही निर्यात कर दिए गए हैं और दस्तावेज सीधे पक्षकार को भेज दिए हैं ।

अंतिम परेषण अर्थात् चालान सं. ए-11351 हमारे कलकत्ता के गोदाम में पड़ा हुआ है । यदि आप इसे दिल्ली के लिए पुनः बुक कराना चाहते हैं तो आप कृपया मूल परेषिती प्रति और हमारे बकाया का डी डी द्वारा सीधे हमारे अहमदाबाद या कलकत्ता स्थित कार्यालय को उनकी ओर से आवश्यक कार्रवाई के लिए भेजें । परेषिती प्रति और डी डी प्राप्त होने पर हमारा कलकत्ता स्थित कार्यालय इस परेषण को दिल्ली के लिए पुनः बुक कर देगा ।"

17. ऊपर उल्लिखित तथ्यों की पृष्ठभूमि में इस अपील में प्रत्यर्थी ने उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 21(क)(i) के अधीन राष्ट्रीय आयोग के समक्ष 1993 की मूल अर्जी सं. 341 में एक शिकायत फाइल की जिसमें कुल 40,98,164.04 रुपए की विभिन्न रकमों के साथ-साथ 34,74,321.45 रुपए पर 21 प्रतिशत वार्षिक की दर से वाद कालीन और भावी ब्याज तथा खर्चे का दावा किया ।

18. इस अपील में अपीलार्थी ने उक्त शिकायत के उत्तर में अपना लिखित कथन फाइल किया, जिसमें उसने इस तथ्य को स्वीकार किया कि माल के पांच परेषण भिन्न-भिन्न परेषण पत्रों के अधीन (जैसा कि शिकायत में विनिर्दिष्ट है) अहमदाबाद से बेनापोल (बांग्लादेश) परिवहन करने के लिए अपीलार्थी को सौंपे गए थे । अपीलार्थी के अनुसार, ऊपर उल्लिखित पांच परेषणों में से चार परेषण वस्तुतः परिदत्त किए गए थे । अपीलार्थी के लिखित कथन का सुसंगत भाग निम्नलिखित है :–

"विरोधी पक्षकार ने भारत-बांग्लादेश सीमा पर परेषणों का भारतीय सीमा-शुल्क से सम्यक् रूप से निकासी की और इन्हें निर्यात प्रक्रिया के अनुसार बांग्लादेश के सीमा-शुल्क अधिकारी को सौंपा,

जिसने उक्त चार परेषणों की प्राप्ति की सम्यक् रूप से अभिस्वीकृति रसीदें दीं ।"

19. अपीलार्थी का यह भी पक्षकथन है कि पांचवां परेषण इस तथ्य को देखते हुए बांग्लादेश निर्यात नहीं किया गया कि इस मामले में प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को इसे दिल्ली के लिए पुनः बुक करने का निदेश दिया था । यह निम्न प्रकार से है :–

"परेषण पत्र सं. ए-11351 द्वारा समावेशित माल बांग्लादेश निर्यात नहीं किया जा सका था क्योंकि इसी बीच विरोधी पक्षकार को इस परेषण को पुनः बुक करने का निदेश प्राप्त हुआ था । ....यह परेषण विरोधी पक्षकार के कलकत्ता स्थित गोदाम में पूर्णतः शिकायतकर्ता के जोखिम और उत्तरदायित्व पर पड़ा हुआ है और दिनों-दिन डेमरेज प्रभार व्यपगत हो रहा है । विरोधी पक्षकार परेषण पत्र सं. ए-11351 द्वारा समावेशित माल का पहले भी परिदान करने के लिए तैयार था और अभी भी तैयार और इच्छुक है ।"

20. अपीलार्थी का यह पक्षकथन है कि निर्यात प्रक्रिया के अनुसार माल (जो विवाद की विषयवस्तु हैं) को पेटरापोल में भारतीय सीमा पार करने के पश्चात् बांग्लादेश के बेनापोल सीमा पर उतारा जाना और सीमा-शुल्क के लिए परिदत्त करना अपेक्षित था । लिखित कथन का सुसंगत भाग, पैरा 4 में, निम्नलिखित है :–

"विषयाधीन परेषणों का वहन अहमदाबाद/ओधव से बेनापोल (बांग्लादेश) लारी से होना था और निर्यात प्रक्रिया के अनुसार और/या रूढ़ि अनुसार उक्त माल को पेटरापोल में भारतीय सीमा पार करने के पश्चात् बेनापोल में बांग्लादेश के सीमा-शुल्क विभाग के भांडागार में उतारा जाना और परिदत्त करना था । आयातकर्ता के परेषिती को बांग्लादेश के आयात सीमा-शुल्क नियमों के अनुसार औपचारिकताओं का अनुपालन करने के पश्चात् और बेनापोल में बांग्लादेश के सीमा-शुल्क प्राधिकारियों को सुसंगत दस्तावेज प्रस्तुत करके सीमा-शुल्क का संदाय करने के उपरांत उक्त माल का परिदान लेना था । विरोधी पक्षकार का दायित्व उक्त माल को अपनी लारी से परिवहन करना और उसे भारत से बेनापोल (बांग्लादेश) सामग्री का निर्यात करने की

प्रचलित प्रक्रिया के अनुसार बांग्लादेश के बेनापोल में सीमा-शुल्क विभाग के भांडागार में परिदत्त करना था । विरोधी पक्षकार ने उक्त चारों परेषणों का सम्यक् रूप से परिवहन किया और इन्हें बेनापोल में परिदत्त किया ।"

21. अपीलार्थी के तारीख 11 सितम्बर, 1993 के पत्र पर आते हैं जिसमें (प्रत्यर्थी के अनुसार) अपीलार्थी विवादग्रस्त पांचों परेषणों को दिल्ली के लिए पुनः बुक करने के लिए सहमत हुआ था, जबकि अपीलार्थी ने यह प्रतिरक्षा ली है कि (क) उक्त पत्र में परेषणों की पुनः बुकिंग करने की केवल प्रक्रिया स्पष्ट की गई है, और (ख) पांचों परेषण अभिरक्षा में होने संबंधी स्वीकृति अपीलार्थी के मुख्यालय और उसके विभिन्न शाखा कार्यालयों के बीच संवादहीनता के कारण हुई तथ्य की भूल थी । यह पत्र प्रेषित करने के थोड़े समय के भीतर ही अपीलार्थी को अपनी गलती का अहसास हुआ और तारीख 29 सितम्बर, 1993 के पश्चात्वर्ती पत्र (जिसकी अंतर्वस्तुओं को पहले ही उद्धृत किया गया है) द्वारा अपनी स्थिति स्पष्ट की गई । अपीलार्थी की उक्त प्रतिरक्षा निम्न प्रकार से है :–

"विरोधी पक्षकार ने तारीख 22 जुलाई, 1993 के अपने पत्र द्वारा यह कहा कि उसने कभी भी शिकायतकर्ता को पांचों परेषणों को दिल्ली के लिए पुनः बुक करने का आश्वासन नहीं दिया था, जैसा कि अभिकथन किया गया है । इसके विपरीत, विरोधी पक्षकार ने तारीख 22 जुलाई, 1993 के अपने पत्र द्वारा संबंधित परेषिती द्वारा परेषणों को पुनः बुक करने की प्रक्रिया स्पष्ट की थी । इसके पश्चात्, विरोधी पक्षकार ने अपने संबद्ध शाखा कार्यालयों से पूरी जांच करने के पश्चात् तारीख 29 सितम्बर, 1993 के अपने पत्र द्वारा शिकायतकर्ता को सम्यक् रूप से सूचित किया कि चार परेषणों द्वारा समावेशित माल निर्यात कर दिए गए हैं और वहन की संविदा के निबंधनों के अनुसार गंतव्य स्थल पर परिदत्त कर दिए हैं ।"

22. अपीलार्थी की यह भी प्रतिरक्षा है कि उस माल के निर्यात के अनुक्रम में माल जब एक बार भारतीय सीमा-शुल्क से पार हो गया था, तो केवल निर्यातकर्ता ही विधि के अधीन प्रक्रिया का पालन करके माल को वापस ला सकता है । यह प्रतिरक्षा निम्न प्रकार से है :–

"शिकायतकर्ता इस तथ्य से भलीभांति परिचित था कि भारत में जारी किए गए परेषण पत्रों के विरुद्ध परिवाहक द्वारा परेषणों को पुनः बुक करने के लिए भारत और बांग्लादेश के बीच कोई 'व्यापार संधि' नहीं है । केवल निर्यातकर्ता ही बांग्लादेश स्थित अपने निकासी अभिकर्ता के माध्यम से भारत बांग्लादेश सीमा-शुल्क वापसी की प्रक्रिया अनुसार निर्यातित परेषणों को पुनः निर्यात कर सकता है । ....बांग्लादेश परेषणों को निर्यात करने के पश्चात् केवल माल का स्वामी ही सभी औपचारिकताएं पूर्ण करने के पश्चात् बांग्लादेश सीमा-शुल्क से परेषणों की निकासी करा सकता है और केवल तभी इन्हें भारत वापस लाया जा सकता है । विरोधी पक्षकार एक वाहक के रूप में स्वयं अपने आप निर्यातित परेषणों को विधि के अनुसार भारत में वापस नहीं ला सकता है ।"

23. अपीलार्थी ने यह भी प्रतिरक्षा ली है कि प्रत्यर्थी ने सीमा-शुल्क अधिनियम के अधीन इस तथ्य के आधार पर जमा किए गए शुल्क की वापसी का उपभोग किया है कि विवादग्रस्त माल निर्यात किया गया है । इसलिए प्रत्यर्थी यह शिकायत करने के लिए स्वतंत्र नहीं है कि अपीलार्थी ने या तो माल का दुर्व्यपदेशन किया है या गलत परिदान किया है । यह प्रतिरक्षा निम्न प्रकार से है :–

"शिकायतकर्ता ने इस तथ्य से भलीभांति परिचित होने पर कि उक्त चार परेषण वहन संविदा के निबंधनों के अनुसार बेनापोल (बांग्लादेश) में सम्यक्तः परिदत्त किए गए थे, सीमा-शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 74/75 के अधीन यथा उपबंधित शुल्क वापसी के लिए आवेदन किया जो कि भारत सरकार द्वारा दिया गया निर्यातोन्मुख फायदा है ।"

24. अपीलार्थी ने अपनी प्रतिरक्षा के समर्थन में तीन दस्तावेजों अर्थात् उपाबंध एक्स, वाई और जेड जो क्रमशः 8, 2 और 6 पृष्ठ के हैं, का अवलंब लिया है । उपाबंध 'एक्स' में चार बीजकों की प्रतियां और विवादग्रस्त माल के चार परेषणों के चार परेषण पत्रों की प्रतियां समाविष्ट हैं ।

25. राष्ट्रीय आयोग ने यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि इस अपील में अपीलार्थी द्वारा उपाबंध 'एक्स' के अधीन प्रस्तुत की गई बीजकों की

प्रतियां और शिकायतकर्ता द्वारा फाइल की गई बीजकों की प्रतियां आपस में मेल नहीं खाती हैं और इसलिए इस अपील में अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेज 'जाली' हैं । सुसंगत भाग निम्न प्रकार से है :–

> "बीजकों के दोनों समुच्चयों को एकसाथ पढ़ने पर यह दर्शित होता है कि बीजकों में पैरा 61, 63, 65 और 67 पर अभिलिखित कार्टूनों की संख्या, कपड़ों की माप और तारीखें बीजकों के पृष्ठ 15, 18, 21 और 24 पर अभिलिखित से सारभूत रूप से भिन्न हैं जिसके बारे में विरोधी पक्षकार द्वारा कोई समाधानप्रद स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । श्री विरमानी द्वारा ऊपर निर्दिष्ट दलील पर विचार करने पर भी विरोधी पक्षकार द्वारा फाइल किए गए बीजकों को अवश्य जाली ठहराया जाना चाहिए और उन्हें साक्ष्य में प्रदर्शित और ग्रहण नहीं किया जा सकता है ।"

26. राष्ट्रीय आयोग ने तारीख 8 अप्रैल, 2002 और तारीख 10 अप्रैल, 2002 के दो पत्रों की भी परीक्षा की । ये दोनों पत्र क्रमशः पेटरापोल, कोलकाता और बेनापोल (बांग्लादेश) के सीमा-शुल्क प्राधिकारियों द्वारा अपीलार्थी के क्रमशः तारीख 14 मार्च, 2002 और तारीख 12 मार्च, 2002 के पत्रों के उत्तर में भेजे गए थे । राष्ट्रीय आयोग ने यह निष्कर्ष अभिलिखित किया, "इसलिए न तो इन दोनों पत्रों और न ही उक्त बीजकों पर स्थोरा अधिकारी के हस्ताक्षरों के साथ-साथ पृष्ठांकनों और मुद्राओं या महाफुज़र रहमान के कथन से अपीलार्थी को प्रस्तुत विवाद में कोई सहायता मिलती है"। इसलिए आयोग शिकायत को मंजूर करता है । आदेश का प्रभावी भाग निम्नलिखित प्रकार से है :–

> "इस प्रकार, शिकायतकर्ता विरोधी पक्षकार से प्रश्नगत परेषणों के मूल्य 29,73,321.45 रुपए का इस पर ब्याज, जो हम बुकिंग की तारीख से शिकायत फाइल करने की तारीख तक 12 प्रतिशत वार्षिक की दर से निर्धारित करते हैं और उक्त दर पर वाद कालीन तथा भावी ब्याज सहित प्राप्त करने का हकदार है । चूंकि शिकायतकर्ता को ब्याज अधिनिर्णीत किया गया है, इसलिए वह अलग से किसी नुकसान का हकदार नहीं है ।
>
> तद्नुसार, यह शिकायत मंजूर की जाती है और विरोधी पक्षकार को निदेशित किया जाता है कि वह परेषण बुक करने की तारीख से

लेकर शिकायत फाइल करने की तारीख तक 12 प्रतिशत वार्षिक ब्याज के साथ और इसी दर पर वाद कालीन और भावी ब्याज सहित 29,74,321.45 रुपए का संदाय करे । विरोधी पक्षकार खर्चे के रूप में 25,000/- रुपए का भी संदाय करेगा ।"

27. इसलिए, यह अपील फाइल की गई है ।

28. दोनों पक्षों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेलों द्वारा अपने-अपने पक्षकथन के समर्थन में, वस्तुतः अपने-अपने अभिवचनों को दोहराते हुए, विस्तृत दलीलें दी गई हैं ।

29. चूंकि यह मामला अपीलार्थी द्वारा विदेश में माल का परिवहन करने के लिए की गई संविदा से उद्‌भूत हुआ है, इसलिए सीमा-शुल्क अधिनियम, जो माल के निर्यात के संबंध में है, के सुसंगत उपबंधों का अवलोकन करना आवश्यक है । भारत में और भारत से बाहर आयात और निर्यात सीमा-शुल्क अधिनियम, 1962 और तद्‌धीन बनाए गए नियमों और विनियमों द्वारा अधिनियमित होता है । उक्त अधिनियम की धारा 50 में यह अनुबंधित है कि भूमि मार्ग द्वारा किसी माल का निर्यात करने वाले निर्यातकर्ता के लिए उचित अधिकारी को निर्यात पत्र पेश करके उसकी प्रविष्टि करना आवश्यक है । धारा 51 के अधीन, निर्यात पत्र (धारा 50 के अधीन अनुध्यात) प्राप्त करने के पश्चात् यदि उचित अधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि निर्यातकर्ता ने अधिनियम के अधीन निर्यात शुल्क और अन्य प्रभारों का, यदि कोई हो, संदाय कर दिया है और ऐसा माल प्रतिषिद्ध माल नहीं है, तो निर्यात के लिए ऐसे माल की निकासी और लदाई अनुज्ञात करते हुए आदेश दे सकता है । अधिनियम की धारा 2(16), 2(5), 50 और 51 निम्न प्रकार से हैं :–

"**धारा 2(16).** 'प्रविष्टि' से माल के संबंध में प्रवेश पत्र, पोत पत्र या निर्यात पत्र में की गई प्रविष्टि अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत आयातित माल या डाक द्वारा निर्यात किए जाने वाले माल की दशाओं में, धारा 82 में निर्दिष्ट प्रविष्टि या धारा 84 के अधीन बनाए गए विनियमों के अधीन की गई प्रविष्टि है ।

धारा 2(5). 'निर्यात पत्र' से धारा 50 में निर्दिष्ट निर्यात पत्र अभिप्रेत है ।

धारा 50. निर्यात के लिए माल की प्रविष्टि – (1) किसी माल का निर्यातकर्ता किसी जलयान या वायुयान में निर्यात किए जाने वाले

माल की दशा में पोत पत्र इलैक्ट्रोनिक रूप में, और भूमि मार्ग द्वारा निर्यात किए जाने वाले माल की दशा में निर्यात पत्र, उचित अधिकारी को विहित प्ररूप में पेश करके उसकी प्रविष्टि करेगा ।

धारा 51. निर्यात के लिए माल की निकासी – जहां उचित अधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि निर्यात के लिए प्रविष्ट माल प्रतिषिद्ध माल नहीं है और निर्यातकर्ता ने उस पर निर्धारित निर्यात शुल्क का, यदि कोई हो, और उसकी बाबत इस अधिनियम के अधीन संदेय प्रभारों का संदाय कर दिया है, वहां उचित अधिकारी निर्यात के लिए ऐसे माल की निकासी और लदाई अनुज्ञात करते हुए आदेश दे सकता है ।"

30. धारा 40 के अधीन, किसी प्रवहण का भारसाधक व्यक्ति किसी सीमा-शुल्क स्टेशन पर निर्यातित माल लादने के लिए तब तक अनुज्ञात नहीं है जब तक कि उचित अधिकारी द्वारा सम्यक्तः पास निर्यात पत्र निर्यातकर्ता द्वारा प्रवहण के भारसाधक व्यक्ति को हस्तांतरित न किया जाए ।

31. धारा 40 का सुसंगत भाग निम्नलिखित है :–

"40. जब तक उचित अधिकारी द्वारा सम्यक्तः पास न किए जाएं तब तक निर्यातित माल का न लादा जाना – किसी प्रवहण का भारसाधक व्यक्ति किसी सीमा-शुल्क स्टेशन पर –

(क) निर्यातित माल.......लादने की अनुज्ञा तब तक नहीं देगा जब तक कि.....उचित अधिकारी द्वारा सम्यक्तः पास किया हुआ निर्यात पत्र निर्यातकर्ता द्वारा उसे हस्तांतरित न किया जाए ;

(ख) ...."

32. अधिनियम की धारा 41 के अधीन यह आज्ञापक है कि निर्यातित माल का वहन करने वाले किसी प्रवहण का भारसाधक व्यक्ति किसी यान द्वारा निर्यात करने की दशा में उचित अधिकारी को विहित प्ररूप में निर्यात रिपोर्ट देगा । धारा 41 निम्नलिखित है :–

"धारा 41. निर्यात सूची या निर्यात रिपोर्ट का परिदान – (1) निर्यातित माल का वहन करने वाले किसी प्रवहण का भारसाधक

व्यक्ति सीमा-शुल्क स्टेशन से प्रवहण के चलने के पहले उचित अधिकारी को किसी जलयान या वायुयान की दशा में निर्यात सूची और किसी यान की दशा में निर्यात रिपोर्ट विहित प्ररूप में देगा ।"

अधिनियम में 'प्रवहण' और 'यान' शब्द को निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है :–

"**धारा 2(9).** 'प्रवहण' के अंतर्गत जलयान, वायुयान और यान है ।

धारा 2(42). 'यान' से भूमि पर उपयोग किया जाने वाला किसी भी प्रकार का प्रवहण अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत रेल यान है ।"

33. केन्द्रीय उत्पाद और सीमा-शुल्क बोर्ड ने सीमा-शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 50 और 60 के साथ पठित धारा 157 के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए तारीख 29 अगस्त, 1991 की अधिसूचना सं. 61/91/(एन.टी.)-कस्टम द्वारा विनियम अर्थात् पोत परिवहन पत्र और निर्यात पत्र (प्ररूप) विनियम, 1991 बनाए । इन विनियमों का विनियम 3 निम्नलिखित है :–

*"विनियम 3. निर्यात पत्र – माल के निर्यातकर्ता द्वारा पेश किया जाने वाला निर्यात पत्र इन विनियमों से संलग्न, यथास्थिति, उपाबंध 5, उपाबंध 6, उपाबंध 7 या उपाबंध 8 में विनिर्दिष्ट प्ररूप (भाग 5 में प्ररूप 97, 98 और 100 देखें) में होगा ।"

34. विनियम 4 में निर्यात पत्र के प्ररूप की विशिष्टियां विहित की गई हैं, जो निम्नलिखित हैं :–

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"Regulation 3. Bill of Export – A bill of export to be presented by an exporter of goods be in the form specified in Annexure V, Annexure VI, Annexure VII or Annexure VIII (See Forms 97, 98, 99 and 100 in Part 5), as the case may be, appended to these regulations."

*"विनियम 4. पोत परिवहन पत्र और निर्यात पत्र (प्ररूप) की विशिष्टियां – उपाबंध 1 से 8 में विनिर्दिष्ट पोत परिवहन पत्र और निर्यात पत्र के प्ररूप निम्नलिखित विशिष्टियों के अनुसार होंगे, अर्थात् –

(क) प्ररूप 34.5 से. मी. x 21.5 से. मी. माप के फुलस्केप आकार के कागज पर मुद्रित होंगे और निम्नलिखित हाशिया होगा, अर्थात् –

(i) शीर्ष - 1.5 से. मी., (ii) तल - 1.5 से. मी., (iii) बाएं - 1.8 से. मी., (iv) दाएं - 0.5 से. मी.

प्ररूपों का विन्यास और खानों का आकार उपाबंधों में दर्शाए गए विन्यास और खानों के अनुसार होगा ;

(ख) प्ररूप 70 से 85 ग्राम प्रति वर्ग मीटर के कागज पर मुद्रित होंगे ; कागज 50 से 60 प्रतिशत की सापेक्ष आद्रता की दशा में टिकाऊ होना चाहिए ;

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"Regulation 4. Specifications of Shipping Bill and Bill of Export (Form) – The Shipping Bill and Bill of Export forms specified in Annexures I to VIII shall be in accordance with the following specifications, namely –

(a) the forms shall be printed on foolscape size of paper measuring 34.5 cms. by 21.5 cms. and shall have the following margins namely –

(i) top – 1.5 cms., (ii) bottom – 1.5 cms., (iii) left – 1.8 cms., (vi) right – 0.5 cms.

The layout of the forms and the size of the boxes shall be as per the layout and boxes shown in the Annexures;

(b) the forms shall be printed on paper of grammage 70 to 85 grams per square metre; the paper should be stable in conditions of 50 to 60 per cent relative humidity;

(ग) प्ररूपों के खानों के अंदर अनुशीर्षक 6 प्वाइंट में टाइप के अक्षर की नोक रहित मुद्रित होना चाहिए और खानों के दाएं शीर्ष के यथा संभव निकट अवस्थित होना चाहिए ;

(घ) प्ररूप केवल टाइपराइटर का प्रयोग करके भरे जाएंगे ।"

35. केन्द्रीय उत्पाद और सीमा-शुल्क बोर्ड ने तारीख 23 अक्तूबर, 1976 की अधिसूचना द्वारा, जिसे बाद में एक अन्य अधिसूचना द्वारा संशोधित किया गया, निर्यात रिपोर्ट (प्ररूप) विनियम, 1976 के रूप में ज्ञात विनियम बनाए । इन विनियमों के विनियम 3 में यह अनुबंधित है कि प्रत्येक निर्यात रिपोर्ट दोहरी प्रति में दी जाएगी और इसमें यान में वहन किए जाने वाले सभी माल का ब्यौरा होगा ।

36. विनियम 4 में प्ररूप को विहित किया गया है :–

"विनियम 4. निर्यात रिपोर्ट का प्ररूप – (1) निर्यात माल का वहन करने वाले यान के भारसाधक व्यक्ति द्वारा सीमा-शुल्क अधिनियम, 1962 (1962 का 52) की धारा 41 के अधीन परिदत्त की जाने वाली निर्यात रिपोर्ट इन विनियमों से संलग्न प्ररूप (भाग 5 में प्ररूप 73 देखें) में होगी ।

(2) इसे 21.5 से. मी. x 34.5 से. मी. आकार के स्थायी गुणवत्ता के सफेद कागज पर मुद्रित किया जाएगा ।"

37. इस प्रकार, निर्यात के अनुक्रम में माल के परिचलन को अतिसावधानी पूर्वक विनियमित और अभिलिखित किया जाता है ।

38. अपीलार्थी, जिसने प्रत्यर्थी द्वारा उसे सौंपे गए पांच परेषणों में से चार परेषणों को निर्यात करने का दावा किया है, पेटरापोल सीमा-शुल्क स्टेशन पर उचित अधिकारी द्वारा सम्यक्तः पास किया गया निर्यात पत्र अभिप्राप्त किए बिना माल को लदवा नहीं सकता था और अपीलार्थी के स्वामित्वाधीन प्रवहण का भारसाधक व्यक्ति उचित प्राधिकारी को धारा 41 के अधीन अनुध्यात विहित प्ररूप में निर्यात रिपोर्ट परिदत्त किए बिना न तो

(c) the captions inside th boxes of the forms should be printed in 6 pt. mono sans-serif; and

(d) the forms shall be filled in by using a typewriter only."

पेटरापोल सीमा-शुल्क स्टेशन पर यान में माल को लाद सकता था और न ही वहां से प्रस्थान कर सकता था ।

39. अपीलार्थी के इस पक्षकथन का, कि उसने विवादग्रस्त माल का पेटरापोल सीमा-शुल्क से परे और भारत की सीमा-शुल्क सीमा से बाहर वास्तव में परिवहन किया था, सर्वोत्तम सबूत यह होता कि वह ऊपर उल्लिखित दो दस्तावेज अर्थात् विवादग्रस्त चार परेषणों के निर्यात पत्र और निर्यात रिपोर्ट की प्रतियां पेश करता । अपीलार्थी की ओर से प्रश्नगत चार परेषणों के संबंध में ऊपर उल्लिखित दोनों दस्तावेजों के विद्यमान होने के संबंध में राष्ट्रीय आयोग के समक्ष न तो कोई अभिवाक् किया गया है और न ही अपीलाधीन आदेश में कोई चर्चा है । अपीलार्थी ने राष्ट्रीय आयोग के समक्ष लिखित कथन में यह सारहीन प्रकथन करने के सिवाय कि उसे सौंपे गए पांच परेषणों में से चार परेषणों को बेनापोल में परिदत्त कर दिया गया था (जिस पर पहले ही इस निर्णय के पैरा 4 में विचार किया गया है), उसने :–

1. परिवहन करने हेतु माल को लादने के लिए धारा 51 के अधीन उचित अधिकारी द्वारा अनुज्ञा ; या

2. चारों परेषणों, जो अभिकथित रूप से परिवहन किए गए हैं और बांग्लादेश के बेनापोल सीमा-शुल्क स्टेशन के भांडागार में परिदत्त किए गए हैं, में से प्रत्येक के संबंध में अपीलार्थी द्वारा धारा 41 के अधीन निर्यात रिपोर्ट के परिदान,

की वास्तविक तारीखों के संबंध में कोई विनिर्दिष्ट अभिवाक् नहीं किया ।

40. हमें इस बात का भान है कि ऊपर उल्लिखित दस्तावेजों को प्रस्तुत करने से और इनके सबूत से यह सिद्ध करने के लिए एकमात्र संभव साक्ष्य नहीं हो सकता है कि अपीलार्थी अपनी विधिक बाध्यता से निर्मुक्त हो गया है ।

41. अपीलार्थी का यह अभिवाचित पक्षकथन है कि परिवाहक के रूप में उसकी विधिक बाध्यता उसे सौंपे गए माल को बेनापोल सीमा-शुल्क स्टेशन पर इसका परिदान करने पर समाप्त हो जाती है । इस देश में किसी भी सीमा-शुल्क स्टेशन पर आयातित माल को उतारा जाना भी सीमा-शुल्क अधिनियम, 1962 के उपबंधों द्वारा विनियमित होता है । हम विश्वस्त हैं कि यह बांग्लादेश की विधि द्वारा भी समान रूप से विनियमित होता होगा । इस बाबत वस्तुतः बांग्लादेश की क्या विधि है और अपीलार्थी

द्वारा अभिकथित रूप से वहन किए गए बेनापोल में परिदत्त किए गए माल के परिदान के तथ्य को कैसे साबित किया जाना है, दो भिन्न और अलग-अलग बातें हैं । प्राइवेट अंतरराष्ट्रीय विधि का यह स्थिर सिद्धांत है कि विदेशी विधि सदैव एक तथ्य का प्रश्न होती है जिसे उस पक्षकार द्वारा अभिवाचित और साबित किया जाना अपेक्षित है जिसके अधिकार या बाध्यताएं उस विदेशी विधि से प्रवाहित होते हैं । वर्तमान मामले में इस बाबत ऐसा कोई अभिवाक् या सबूत नहीं है ।

42. अपीलार्थी ने इस बारे में कोई अभिवाक् नहीं किया है कि आयातित माल को बांग्लादेश की विधि के अधीन विहित इसके सीमा-शुल्क स्टेशनों पर उतारे जाने की प्रक्रिया क्या है । अपीलार्थी ने न ही बेनापोल में प्रत्येक चारों परेषणों के वस्तुतः परिदान की तारीखों का ब्यौरा दिया है ।

43. तथापि, अपीलार्थी ने बांग्लादेश गणराज्य के बेनापोल स्थित सीमा-शुल्क विभाग के किसी अधिकारी द्वारा अभिकथित रूप से लिखित तारीख 11 अप्रैल, 2002 का एक पत्र, जो संयुक्त आयुक्त, सीमा-शुल्क विभाग, बेनापोल-जेसोर (बांग्लादेश) को संबोधित है, का जोरदार अवलंब लिया है । इसमें तारीख 9 जनवरी, 1993, 13 दिसम्बर, 1992, 20 दिसम्बर, 1992 और 11 दिसम्बर, 1993 को चार बिलों की प्रविष्टि का उल्लेख है । इस दस्तावेज का सुसंगत भाग निम्नलिखित है :–

> "(1) पोत परिवहन पत्र सं. 4949/डीबी, तारीख 28 दिसम्बर, 1992 का प्रवेश पत्र सं. 14305, तारीख 9 जनवरी, 1993 मैसर्स अज़ीम गारमेंट्स लिमिटेड ढाका-बांग्लादेश द्वारा स्वीकार किया गया है । माल – कपड़े की 21 गांठें और पोत परिवहन अभिकर्ता का नाम मैसर्स मुन मुन शिपिंग – बेनापोल ।
>
> (2) पोत परिवहन पत्र सं. 3833/डीबी, तारीख 2 नवम्बर, 1992 का प्रवेश पत्र सं. 2267, तारीख 13 दिसम्बर, 1992 मैसर्स अज़ीम गारमेंट्स लिमिटेड ढाका-बांग्लादेश द्वारा स्वीकार किया गया है । माल – कपड़े की 30 गांठें और पोत परिवहन अभिकर्ता का नाम देयर ग्रीन (मुन मुन) बेनापोल ।
>
> (3) पोत परिवहन पत्र सं. 3834/डीबी, तारीख 2 नवम्बर, 1992 का प्रवेश पत्र सं. 12516, तारीख 20 दिसम्बर, 1992 मैसर्स अज़ीम गारमेंट्स लिमिटेड ढाका-बांग्लादेश द्वारा स्वीकार किया गया है । माल – कपड़े की 30 गांठें और पोत परिवहन अभिकर्ता का नाम मैसर्स मुदीजुद्दीन (ए-29) ।

(4) पोत परिवहन पत्र सं. 699/डीबी, तारीख 11 फरवरी, 1993 का माल पक्षकार द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है । माल की नीलामी कर दी गई है ।"

44. इस दस्तावेज की अन्य समस्याओं के अतिरिक्त इसकी अंतर्वस्तुओं को समझना वास्तव में कठिन है, जिन पर बाद में चर्चा की जाएगी । इसमें मैसर्स अज़ीम गारमेंट्स लिमिटेड, ढाका के तीन अलग-अलग पोत परिवहन अभिकर्ताओं के माध्यम से 'स्वीकार' किए गए तीन प्रवेश पत्रों का उल्लेख है । चौथे प्रवेश पत्र को स्वीकार नहीं किए जाने पर माल की नीलामी कर दी गई थी । यह समझना कठिन है कि किसी प्रवेश पत्र को 'स्वीकार करने' का ठीक-ठीक क्या अर्थ है । कम से कम, जहां तक भारतीय विधि का संबंध है, सीमा-शुल्क अधिनियम की धारा 46 के अधीन प्रवेश पत्र ऐसा दस्तावेज है, जिसे आयातकर्ता द्वारा पेश किए जाने की अपेक्षा की जाती है । यह धारा निम्नलिखित है :–

"**धारा 46. आयात किए जाने पर माल की प्रविष्टि** – (1) अभिवहन और यानान्तरण के लिए आशयित माल से भिन्न किसी माल का आयातकर्ता, देशी उपभोग या भांडागारण के लिए उचित अधिकारी का विहित प्ररूप में प्रवेश पत्र इलेक्ट्रोनिक रूप में पेश करके उसकी प्रविष्टि करेगा :

परन्तु सीमा-शुल्क आयुक्त ऐसी दशाओं में, जहां इलेक्ट्रोनिक रूप में प्रविष्टि करना साध्य नहीं है, किसी अन्य रीति में प्रविष्टि पेश किए जाने की अनुज्ञा दे सकेगा :

परन्तु यह और कि यदि आयातकर्ता उचित अधिकारी के समक्ष इस प्रभाव की यह घोषणा करता है और उस पर हस्ताक्षर करता है कि पूरी जानकारी के अभाव में वह इस धारा के अधीन अपेक्षित माल की सभी विशिष्टियां देने में असमर्थ है, तो उचित अधिकारी, ऐसी जानकारी पेश किए जाने तक, उसकी प्रविष्टि के पूर्व उसको (क) सीमा-शुल्क अधिकारी की उपस्थिति में माल की परीक्षा करने के लिए, या (ख) माल को भांडागारित किए बिना धारा 57 के अधीन नियत सार्वजनिक भांडागार में माल का निक्षेप करने के लिए अनुज्ञात कर सकता है ।

(2) उचित अधिकारी द्वारा, जैसा अन्यथा अनुज्ञात किया जाए उसके सिवाय, वहन पत्र में या वाहक द्वारा प्रेषक को दी गई अन्य रसीद में वर्णित सभी माल, प्रवेश पत्र में सम्मिलित होंगे ।

(3) उपधारा (1) के अधीन प्रवेश पत्र, यथास्थिति, आयात सूची या आयात रिपोर्ट के दिए जाने के पश्चात् किसी भी समय पेश किया जा सकता है :

परन्तु सीमा-शुल्क आयुक्त विशेष परिस्थितियों में ऐसी रिपोर्ट के दिए जाने के पहले ही प्रवेश पत्र के पेश किए जाने की अनुज्ञा दे सकता है :

परन्तु यह और कि यदि उस यान के बारे में, जिसके द्वारा माल भारत में आयात के लिए भेजा गया है, यह आशा की जाती है कि वह प्रवेश पत्र पेश किए जाने की तारीख से एक सप्ताह के भीतर पहुंच जाएगा तो प्रवेश पत्र ऐसी सूची के दिए जाने के पूर्व भी पेश किया जा सकता है ।

(4) आयातकर्ता प्रवेश पत्र पेश करते समय उसके नीचे की ओर उसकी अंतर्वस्तु की सच्चाई के बारे में एक घोषणा करेगा और उस पर हस्ताक्षर करेगा और ऐसी घोषणा के समर्थन में आयातित माल से संबंधित बीजक, यदि कोई हो, उचित अधिकारी को पेश करेगा ।

(5) यदि उचित अधिकारी का यह समाधान हो जाता है कि राजस्व के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा और इसके पीछे कोई कपटपूर्ण आशय नहीं है तो वह भांडागारण के लिए प्रवेश पत्र के स्थान पर देशी उपभोग के लिए प्रवेश पत्र रखने की अनुज्ञा दे सकता है या उसका उलटा कर सकता है ।"

धारा 47 में यह अनुबंधित है कि उचित अधिकारी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रवेश पत्र प्राप्त होने पर आयात की वैधता और उस माल के आयात पर समुचित शुल्क के संदाय के तथ्य के बारे में समाधान हो जाने पर माल की निकासी करे । यह माना जा सकता है कि बांग्लादेश की विधि भी भारत में सीमा-शुल्क विधि के समान है, इसलिए उक्त पत्र की अंतर्वस्तु को समझना कठिन है । इस पत्र में तीन प्रवेश पत्रों को तीन अलग-अलग तारीखों को मैसर्स अज़ीम गारमेंट्स लिमिटेड के तीन अलग-अलग पोत परिवहन अभिकर्ताओं द्वारा स्वीकार किए जाने का उल्लेख है । अभिवचनों में ऐसा कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि ऊपर उद्धृत कथन का ठीक-ठीक तात्पर्य क्या है । दलील के लिए यह मान भी लिया जाए कि पत्र में यह बताने की ईप्सा की गई है कि मैसर्स अज़ीम गारमेंट्स लिमिटेड

के पोत परिवहन अभिकर्ताओं द्वारा तीन अलग-अलग परेषणों के लिए प्रवेश पत्र पेश किए गए थे और उन प्रवेश पत्रों में समावेशित माल की निकासी की गई थी, तो भी पत्र में यह दर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि उक्त प्रवेश पत्रों में समावेशित माल वही माल हैं जो उन चार परेषण पत्रों में दिया गया है जो इस अपील में विवादग्रस्त हैं ।

45. दस्तावेज, जो बांग्लादेश के सीमा-शुल्क के दो अधिकारियों के बीच आंतरिक पत्राचार होना तात्पर्यित है, निस्संदेह उसकी एक प्रति तात्पर्यित रूप से इस अपील में अपीलार्थी को भी चिन्हित है । ऐसे किसी पत्राचार के अवसर को स्पष्ट करते हुए कोई अभिवाक् नहीं किया गया है । लोक दस्तावेज का सबूत साक्ष्य अधिनियम की धारा 78 के अधीन विनिर्दिष्ट रीति में दिया जाना चाहिए । उपधारा (6) में उपधारा (4) से भिन्न किसी विदेश के लोक दस्तावेजों के सबूत का ढंग अनुबंधित है :–

> "**धारा 78. अन्य शासकीय दस्तावेजों का सबूत** – निम्नलिखित लोक दस्तावेजें निम्नलिखित रूप से साबित की जा सकेंगी –
>
> (1) से (3) * * *
>
> (4) किसी विदेश की कार्यपालिका के कार्य या विधान-मंडल की कार्यवाहियां, –
>
> उनके प्राधिकार से प्रकाशित, या उस देश में सामान्यतः इस रूप में गृहीत जर्नलों द्वारा या उस देश या प्रभू की मुद्रा के अधीन प्रमाणित प्रति द्वारा, या किसी केन्द्रीय अधिनियम में उनकी मान्यता द्वारा ;
>
> (5) * * *
>
> (6) किसी विदेश की अन्य प्रकार की लोक दस्तावेजें,
>
> मूल द्वारा, या उसके विधिक पालक द्वारा प्रमाणित किसी प्रति द्वारा, जिस प्रति के साथ किसी नोटरी पब्लिक की, या भारतीय कौंसिल या राजनयिक अभिकर्ता की मुद्रा के अधीन यह प्रमाणपत्र है कि वह प्रति मूल की विधिक अभिरक्षा रखने वाले आफिसर द्वारा सम्यक् रूप से प्रमाणित है, तथा उस दस्तावेज की प्रकृति उस विदेश की विधि के अनुसार साबित किए जाने पर ।"

46. अभिलेख पर यह सिद्ध करने के लिए कुछ नहीं है कि ऊपर

उल्लिखित पत्र साक्ष्य अधिनियम की धारा 78 के अनुसार सम्यक् रूप से साबित किया गया है ।

47. ऊपर उल्लिखित सभी कारणों से, तारीख 10 अप्रैल, 2002 के पत्र (उपरोक्त) पर आधारित अपीलार्थी की यह प्रतिरक्षा स्वीकार नहीं की जा सकती है कि उसने प्रत्यर्थी द्वारा उसे सौंपे गए चार परेषण बेनापोल सीमा-शुल्क स्टेशन, बांग्लादेश में परिदत्त किए थे ।

48. अपीलार्थी की अन्य दलील यह है कि इस तथ्य को देखते हुए कि इस अपील में प्रत्यर्थी ने माल, जो इस अपील में विवाद का विषय है, निर्यात करने के आधार पर शुल्क वापसी का दावा किया है, इसलिए प्रत्यर्थी इस तथ्य पर विवाद नहीं कर सकता है कि माल सम्यक्तः निर्यात किया गया था अर्थात् भारतीय सीमा-शुल्क सीमा से परे सम्यक्तः परिवहन किया गया था और बांग्लादेश के बेनापोल सीमा-शुल्क स्टेशन पर परिदत्त किया गया था ।

49. वापसी का विषय सीमा-शुल्क अधिनियम, 1962 के अध्याय 10 के अधीन उपबंधित है । "वापसी" अभिव्यक्ति को अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है । धारा 74 और 75 "वापसी" का दावा करने का अधिकार सृजित करती है । धारा 74 में निर्यातकर्ता को भारत में आयात की गई सामग्री पर संदत्त किसी शुल्क के 98 प्रतिशत का इस धारा और तद्धीन बनाए गए नियमों के अधीन विनिर्दिष्ट विभिन्न शर्तों के अधीन रहते हुए प्रतिसंदाय/वापस (ड्राबैक) करने का दावा करने के लिए तब हकदार बनाया गया है जब वह सामग्री पुनः भारत से बाहर निर्यात की जाती है । धारा 74 निम्न प्रकार से है :–

> "**धारा 74. शुल्क संदत्त माल के पुनः निर्यात पर अनुज्ञेय वापसी** – (1) जब सहज रूप में पहचाने जा सकने वाले कोई ऐसे माल, जो भारत में आयात किए गए हैं और जिन पर आयात किए जाने के समय शुल्क का संदाय कर दिया है, –
>
> > (i) निर्यात के लिए प्रविष्ट किए जाते हैं और उचित अधिकारी धारा 51 के अधीन निर्यात के लिए ऐसे माल की निकासी और लदाई अनुज्ञात करने वाला आदेश देता है ; या
> >
> > (ii) यात्री सामान के रूप में निर्यात किए जाने हैं और ऐसे यात्री सामान का स्वामी, उसकी निकासी के प्रयोजन के लिए उसकी अंतर्वस्तुओं की धारा 77 के अधीन घोषणा (जिस

घोषणा को इस धारा के प्रयोजनों के लिए निर्यात के लिए प्रविष्टि समझा जाएगा) उचित अधिकारी को करता है और ऐसा अधिकारी निर्यात के लिए माल की निकासी अनुज्ञात करने वाला आदेश देता है ; या

(iii) धारा 82 के अधीन डाक द्वारा निर्यात के लिए प्रविष्ट किए जाते हैं और उचित अधिकारी निर्यात के लिए माल की निकासी अनुज्ञात करने वाला आदेश देता है,

तब ऐसे शुल्क का 98 प्रतिशत, इसमें इसके पश्चात् जैसा अन्यथा उपबंधित है, उसके सिवाय, वापसी के रूप में प्रतिसंदत्त किया जाएगा, यदि –

(क) माल, सीमा-शुल्क सहायक आयुक्त या सीमा-शुल्क उपायुक्त के समाधानपर्यन्त आयातित माल के रूप में पहचाने जाते हैं ; और

(ख) माल उनके आयात पर शुल्क का संदाय करने की तारीख से दो वर्ष के अन्दर निर्यात के लिए प्रविष्ट किए जाते हैं :

परन्तु किसी विशिष्ट दशा में पर्याप्त हेतुक दर्शाए जाने पर दो वर्ष की पूर्वोक्त अवधि बोर्ड द्वारा ऐसी अतिरिक्त अवधि के लिए बढ़ाई जा सकती है जो वह ठीक समझे ।"

50. धारा 75 में किन्हीं माल के निर्यातकर्ता को, जो भारत सरकार द्वारा अधिसूचित किसी वर्ग या वर्णन की आयातित सामग्री का ऐसे माल के विनिर्माण या प्रसंस्करण में उपयोग करता है जो निर्यात किया जाना है, उक्त धारा और तद्धीन बनाए गए नियमों के अधीन अनुबंधित अन्य शर्तों के अधीन रहते हुए, वापसी संदत्त किए जाने का उपबंध किया गया है । धारा 75 निम्न प्रकार से है :–

"**उस माल के विनिर्माण में उपयोग की गई आयातित सामग्री पर वापसी जो निर्यात किए जाते हैं** – (1) जहां केन्द्रीय सरकार को यह प्रतीत होता है कि भारत में विनिर्मित किसी वर्ग या वर्णन के माल के संबंध में, जो ऐसा माल है जो निर्यात के लिए प्रविष्ट किया गया है और जिसकी बाबत धारा 51 के अधीन उचित अधिकारी द्वारा निर्यात के लिए उसकी निकासी और लदाई अनुज्ञात करने वाला आदेश दे दिया गया है, या ऐसा माल है जो धारा 82 के अधीन डाक

द्वारा निर्यात के लिए प्रविष्ट किया गया है और जिसकी बाबत उचित अधिकारी द्वारा निर्यात के लिए निकासी अनुज्ञात करने वाला आदेश दे दिया गया है, ऐसे माल के विनिर्माण या प्रसंस्करण या ऐसे माल पर किए गए किसी प्रचालन में उपयोग की गई किसी वर्ग या वर्णन की आयातित सामग्री पर इस अधिनियम के अधीन प्रभार्य सीमा-शुल्क की वापसी अनुज्ञात की जानी चाहिए, वहां केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, यह निदेश दे सकती है कि ऐसे माल की बाबत उपधारा (2) के अधीन बनाए गए नियमों के अनुसार और उन्हीं के अधीन रहते हुए वापसी अनुज्ञात की जाएगी :

परन्तु इस उपधारा के अधीन पूर्वोक्त ऐसे किसी माल की बाबत, जो केन्द्रीय सरकार उपधारा (2) के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विनिर्दिष्ट करे, वापसी अनुज्ञात नहीं की जाएगी, यदि ऐसे माल या माल के वर्ग का निर्यात मूल्य ऐसे माल के विनिर्माण या प्रसंस्करण में या ऐसे माल या माल के वर्ग पर कोई संक्रिया करने में उपयोग की गई आयातित सामग्री के मूल्य से कम है, या ऐसे माल के विनिर्माण या प्रसंस्करण में या ऐसे माल या माल के वर्ग पर कोई संक्रिया करने में उपयोग की गई आयातित सामग्री के मूल्य के ऐसे प्रतिशत से अधिक है, जो केन्द्रीय सरकार इस बाबत, अधिसूचना द्वारा, राजपत्र में विनिर्दिष्ट करे :

परन्तु यह और कि जहां इस उपधारा के अधीन किसी माल पर कोई वापसी अनुज्ञात की गई है और ऐसे माल की बाबत विक्रय आगम भारत में निर्यातकर्ता द्वारा या उसकी ओर से विदेशी विनिमय प्रबंध अधिनियम, 1999 (1999 का 42) के अधीन अनुज्ञात अवधि के भीतर प्राप्त नहीं किए जाते हैं, तो ऐसी वापसी, ऐसी परिस्थितियों या ऐसी दशाओं के सिवाय जैसा केन्द्रीय सरकार नियम द्वारा विनिर्दिष्ट करे, कभी अनुज्ञात नहीं की गई समझी जाएगी और केन्द्रीय सरकार उपधारा (2) के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा ऐसी वापसी की रकम की वसूली या समायोजन की प्रक्रिया विनिर्दिष्ट कर सकेगी ।"

51. प्रस्तुत मामले में पुनः एक बार अपीलार्थी के अभिवाकों से यह स्पष्ट नहीं है कि इस अपील में प्रत्यर्थी ने धारा 74 या धारा 75 के अधीन वापसी का दावा किया है या नहीं । जैसी भी स्थिति हो, दोनों दशाओं में निर्यातकर्ता को वापसी का अधिकार तब प्रोद्‌भूत होता है जब निर्यातकर्ता

माल का निर्यात करने के लिए अधिनियम की धारा 50 के अधीन प्रविष्टि करता है और धारा 51 के अधीन उचित अधिकारी द्वारा माल की निकासी और लदाई के लिए आदेश किया जाता है ।

52. भारत सरकार द्वारा इस संबंध में समय-समय पर नियम बनाए जाते हैं । नियम जो वर्तमान में प्रचलन में हैं, "सीमा-शुल्क, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और सेवा कर वापसी नियम, 1995" के रूप में जाने जाते हैं, जो सीमा-शुल्क अधिनियम सहित विभिन्न अधिनियमितियों के अधीन प्रदत्त नियम बनाने के प्राधिकार का प्रयोग करते हुए बनाए गए हैं । तथापि, ये नियम प्रश्नगत निर्यात के संव्यवहार के पश्चात् बनाए गए हैं । हमारे समक्ष न तो उस तारीख को, जब प्रत्यर्थी ने वापसी का दावा किया था, स्थिति को शासित करने वाले सुसंगत नियम प्रस्तुत किए गए हैं और न ही दोनों में से किसी पक्षकार द्वारा उस सुसंगत तारीख के बारे में कोई स्पष्ट अभिवाक् किया गया है जिस पर वापसी का कोई दावा किया गया था । हम इस बात से आश्वस्त नहीं हैं कि प्रश्नगत संव्यवहार पर लागू नियमों के अधीन क्या वह तारीख, जो निर्यातकर्ता को वापसी का दावा करने के लिए आवेदन फाइल करने का हकदार बनाती है, विदेश में माल के वस्तुतः परिदान की तारीख है या क्या वह भारत से निर्यात के लिए माल की प्रविष्टि की तारीख है । अभिलेख पर ऐसी किसी सामग्री के अभाव में जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है, केवल इस तथ्य से कि प्रत्यर्थी ने वापसी शुल्क का दावा किया है (प्रत्यर्थी ने यह स्वीकार किया है कि उन्होंने वापसी शुल्क का दावा किया था जैसा कि अपीलार्थी द्वारा अभिकथन किया गया है) आवश्यक से यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि अपीलार्थी ने प्रश्नगत माल को बेनापोल सीमा-शुल्क स्टेशन पर सम्यक् रूप से परिदत्त किया था ।

53. 1995 के वापसी नियमों के अधीन, जो आज प्रवर्तन में हैं, नियम 13 में यह अनुबंधित है कि वापसी के लिए दावा उस तारीख को फाइल किया जा सकता है जब उचित अधिकारी अधिनियम की धारा 51 के अधीन माल की निकासी और लदाई को अनुज्ञात करते हुए आदेश करता है । हमने नियम 13 को इसलिए निर्दिष्ट नहीं किया है कि यह मामले के तथ्यों पर लागू होता है, अपितु केवल यह प्रदर्शित करने के लिए निर्दिष्ट किया है कि विधि में उस तारीख और घटना का स्पष्ट रूप से उपबंध किया गया है जिसके परिणामस्वरूप निर्यातकर्ता वापसी की ईप्सा करने का हकदार हो जाता है ।

54. इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी द्वारा उसे बेनापोल (बांग्लादेश) परिवहन करने के लिए माल सौंपे जाने की बात स्वीकार की है, यह साबित करने का भार अपीलार्थी पर था कि उसने समाधानप्रद रूप से बेनापोल (बांग्लादेश) में विधि के अनुसार माल का परिदान करके अपने विधिक दायित्व का निर्वहन किया है और अपीलार्थी इस भार का निर्वहन करने में असफल रहा है । इसलिए हमारी राय में, राष्ट्रीय आयोग ने प्रत्यर्थी के दावे को ठीक ही मंजूर किया है । हम इसमें हस्तक्षेप करने का कोई कारण नहीं पाते हैं । यह अपील खारिज की जाती है । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

जस.

[2015] 1 उम. नि. प. 126

नर सिंह

बनाम

हरियाणा राज्य

11 नवम्बर, 2014

न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर और न्यायमूर्ति (श्रीमती) आर. बानुमति

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 313 और 386 – अभियुक्त की परीक्षा करने की शक्ति – अपराध में आलिप्त करने वाले तात्विक साक्ष्य के बारे में विचारण न्यायालय द्वारा प्रश्न करने में लोप किया जाना – अभियुक्त द्वारा अपील न्यायालय में लोप के कारण अभियुक्त पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव को दर्शित किया जाना – विचारण न्यायालय को पुनःविचारण के लिए मामला प्रतिप्रेषित करने की अपील न्यायालय की शक्ति – जब अभियुक्त द्वारा यह दर्शित किया गया हो कि विचारण न्यायालय द्वारा तात्विक साक्ष्य पर प्रश्न करने में किए गए लोप के कारण उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, तो अपील न्यायालय धारा

313 के अधीन कथन अभिलिखित करने के प्रक्रम से मामले का पुनःविचारण करने के लिए मामले को प्रतिप्रेषित कर सकता है ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 313 – अभियुक्त की परीक्षा करने की शक्ति – विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषसिद्ध और दंडादिष्ट करने के लिए अवलंब ली गई प्राक्षेपिकी विज्ञानी की राय पर अभियुक्त से प्रश्न न करने से उस पर पड़ने वाले तात्विक प्रतिकूल प्रभाव को ध्यान में रखते हुए दोषसिद्धि और दंडादेश को अपास्त करते हुए मामले को धारा 313 के अधीन कथन अभिलिखित करने के प्रक्रम से पुनःविचारण करने के लिए प्रतिप्रेषित करना उचित होगा ।

अभियुक्त-अपीलार्थी को मृतक की हत्या करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और आयुध अधिनियम की धारा 25 के अधीन दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया था । उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि और दंडादेश की अभिपुष्टि की गई । दोषसिद्धि और दंडादेश के निर्णयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की गई । अभियुक्त की ओर से उच्चतम न्यायालय में पहली बार यह अभिवाक् किया गया कि विचारण न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन परीक्षा के समय उससे अपराध में आलिप्त करने वाले एकमात्र साक्ष्य अर्थात् प्राक्षेपिकी विज्ञानी की राय पर कोई प्रश्न नहीं किया गया था जिसके कारण विचारण दूषित हो गया था और वह दोषमुक्ति का हकदार है । उच्चतम न्यायालय ने मामले के गुणागुण पर विचार न करते हुए केवल इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या तात्विक साक्ष्य पर धारा 313 के अधीन अभियुक्त से प्रश्न करने में किए गए लोप का आक्षेप प्रथम बार अपील न्यायालय में किया जा सकता है और यदि लोप के कारण उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है तो क्या मामला स्वतः ही दूषित हो जाएगा और यदि अभियुक्त द्वारा यह दर्शित किया गया है कि लोप के कारण उस पर तात्विक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है तो क्या मामले को धारा 313 के अधीन कथन अभिलिखित करने के प्रक्रम से पुनःविचारण के लिए विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया जा सकता है । उच्चतम न्यायालय द्वारा उक्त सभी प्रश्नों का उत्तर देते हुए अपील का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – निस्संदेह, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के

अधीन किए गए कथन के महत्व को, जहां तक इसका अभियुक्त से संबंध है, मुश्किल से कम आंका जा सकता है । यह कानूनी उपबंध अभियुक्त के लिए नैसर्गिक न्याय के नियमों पर आधारित है, जिसे उसके विरुद्ध प्रस्तुत की जा रही परिस्थितियों से अवश्य अवगत कराया जाना चाहिए ताकि वह उस मामले का सामना करने के लिए उचित स्पष्टीकरण दे सके । यदि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन किए गए कथन के बारे में कोई आक्षेप सर्वप्रथम प्रक्रम पर किया जाता है, तो न्यायालय त्रुटि को ठीक कर सकता है और अभियुक्त का अतिरिक्त कथन अभिलिखित कर सकता है क्योंकि यह सबके हित में होगा । जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन किए गए कथन के त्रुटिपूर्ण होने के बारे में आक्षेप अपील न्यायालय में किए जाते हैं, तब अभियोजन पक्ष तथा अभियुक्त के लिए कठिनाई पैदा होती है । जब विचारण न्यायालय से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के आज्ञापक उपबंधों के अनुसार कार्य करने की अपेक्षा की गई है, तब विचारण न्यायालय के विधि की आज्ञा का पालने करने में असफल रहने से, हमारे मत में, अभियुक्त को स्वयमेव इसका फायदा प्राप्त नहीं हो सकता है । अभियुक्त से किसी अपराध में आलिप्त करने वाली परिस्थिति पर प्रश्न करने में न्यायालय की ओर से किए गए किसी लोप से विचारण तब तक स्वतः ही दूषित नहीं हो जाएगा जब तक कि यह दर्शित न किया जाए कि अभियुक्त पर कोई तात्विक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है । जहां तक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के आज्ञापक उपबंधों के अननुपालन का संबंध है, यह ऐसी गलती है जो आवश्यक रूप से विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा कारित की गई है । चूंकि न्यायालय के हाथों न्याय की हानि हुई है, इसलिए इसे अपील में ठीक या परिशोधित किया जाना चाहिए । यह प्रश्न कि क्या विचारण दूषित हो गया है या नहीं, गलती की मात्रा पर निर्भर करता है और अभियुक्त को अवश्य यह दर्शित करना चाहिए कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अननुपालन से उस पर तात्विक रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है या उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना संभाव्य है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन प्रश्न करने में हुई त्रुटि मात्र से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि अभियुक्त पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, यहां तक कि यह मान भी लिया जाए कि अभियोजन पक्षकथन में अपराध में आलिप्त करने वाली कुछ परिस्थितियां छूट गई हैं । जब अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने का अभिकथन किया जाता है, तब यह

दर्शित किया जाना चाहिए कि अभियुक्त को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन उसे दिए गए रक्षोपाय के संबंध में निर्योग्यता या अहित कारित हुआ है । ऐसे प्रतिकूल प्रभाव से यह भी प्रदर्शित होना चाहिए कि अभियुक्त के साथ अन्याय हुआ है । यह साबित करने का भार अभियुक्त पर है कि उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में ऐसा प्रतिकूल प्रभाव उपलक्षित हो सकता है और न्यायालय ऐसे प्रतिकूल प्रभाव का निष्कर्ष निकाल सकता है । यह अवधारण करने के लिए प्रत्येक मामले के तथ्यों की परीक्षा की जानी चाहिए कि क्या अपराध में आलिप्त करने वाली किन्हीं परिस्थितियों को अभियुक्त के समक्ष प्रस्तुत करने में हुए लोप के कारण अपीलार्थी पर वस्तुतः कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है या नहीं । (पैरा 16 और 20)

जब अभियुक्त द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन प्रश्न करने में किए गए लोप के बारे में ऐसा आक्षेप अपील न्यायालय में उठाया जाता है और अभियुक्त पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव को भी दर्शित किया जाता है, तब अपील न्यायालय को उपलब्ध क्रियाविधि क्या है ? अपील न्यायालय दोषसिद्ध व्यक्ति की परीक्षा कर सकता है या अभियुक्त की ओर से काउंसेल को यह दर्शित करने के लिए कह सकता है कि अभियुक्त के पास उन परिस्थितियों के बारे में क्या स्पष्टीकरण है जो उसके विरुद्ध सिद्ध की गई हैं किंतु दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन उसके समक्ष प्रस्तुत नहीं की गई हैं और उक्त उत्तर को विचार में ले सकता है । (पैरा 23)

इसके पश्चात्, इस न्यायालय के विचार करने के लिए यह प्रश्न उद्भूत होता है कि यदि विचारण न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन उपबंधित आज्ञा के अनुसार अभियुक्त से सभी सुसंगत प्रश्न नहीं किए गए हैं और जहां अभियुक्त ने यह दर्शित भी कर दिया है कि उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है या जहां प्रतिकूल प्रभाव पड़ना स्पष्ट है, वहां क्या अपील न्यायालय को मामले को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन कथन अभिलिखित करने के प्रक्रम से पुनःविनिश्चय करने के लिए प्रतिप्रेषित करने की शक्ति है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 386 अपील न्यायालय की शक्ति से संबंधित है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 386 के उप-खंड (ख)(i) के अनुसार अपील न्यायालय को उस अपील

न्यायालय के अधीनस्थ सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा मामले का पुनःविचारण करने का आदेश देने की शक्ति है । इसलिए, यदि विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त से सभी सुसंगत प्रश्न नहीं किए गए हों और अभियुक्त ने यह दर्शित किया हो कि उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, तो अपील न्यायालय को मामले को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त की पुनः परीक्षा करने के लिए प्रतिप्रेषित करने की शक्ति है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन कथन अभिलिखित करने के प्रक्रम से मामले का पुनःविचारण करने के लिए भी प्रतिप्रेषित कर सकता है और मामले को इस प्रकार प्रतिप्रेषित करने के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि यह बात अभियोजन पक्षकथन की खामी को भरने की कोटि में आती है । जब कभी अभियुक्त से महत्वपूर्ण प्रश्न करने में किए गए लोप का अभिवाक् अपील न्यायालय में किया जाता है तो अपील न्यायालय को उपलब्ध प्रक्रिया के सार का संक्षेप में इस प्रकार से उल्लेख किया जा सकता है – (i) जब कभी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अननुपालन का कोई अभिवाक् किया जाता है, तो अपील न्यायालय को यह शक्ति है कि वह इसकी परीक्षा करे और इसके अतिरिक्त दोषसिद्ध व्यक्ति या अभियुक्त की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेल की परीक्षा करे और उक्त उत्तरों को मामले का विनिश्चय करने के लिए विचार में लिया जाएगा । यदि अभियुक्त अपील न्यायालय को उक्त परिस्थिति का कोई युक्तियुक्त स्पष्टीकरण देने में असमर्थ रहता है, तो न्यायालय यह धारणा कर सकता है कि अभियुक्त के पास कोई स्वीकार्य स्पष्टीकरण नहीं है । (ii) मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यदि अपील न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अभियुक्त पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है या न्याय की हानि नहीं हुई है, तो अपील न्यायालय गुणागुण के आधार पर मामले की सुनवाई और विनिश्चय करेगा । (iii) यदि अपील न्यायालय की यह राय है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के उपबंधों के अननुपालन से अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है या प्रतिकूल प्रभाव पड़ना संभाव्य है, तो अपील न्यायालय अभियुक्त के कथन अभिलिखित किए जाने के प्रक्रम से उस बिंदु से जहां अनियमितता कारित हुई, अर्थात् दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त से प्रश्न करने के प्रक्रम से, पुनः विचारण करने का निदेश दे सकता है और विचारण न्यायाधीश को अभियुक्त और प्रतिरक्षा साक्षियों, यदि कोई हो, की नए सिरे

से परीक्षा करने और नए सिरे से मामले का निपटारा करने का निदेश दे सकता है । (iv) अपील न्यायालय मामले के विचारण में पहले ही व्यतीत हो चुकी लंबी अवधि और दोषसिद्ध व्यक्ति द्वारा पहले ही भोगी जा चुकी लंबी अवधि के कारण मामले को विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित करने से इनकार कर सकता है और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अभियुक्त पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव को ध्यान में रखते हुए अपील का इसके गुणागुण के आधार पर विनिश्चय कर सकता है । (पैरा 27 और 30)

विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय दोनों के द्वारा न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट (प्रदर्श पी-12) का अवलंब लिया गया है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन त्रुटिपूर्ण कथन के बारे में आक्षेप विचारण न्यायालय या उच्च न्यायालय में नहीं किया गया था और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन प्रश्न करने में किए गए लोप और अभियुक्त पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव को पहली बार इस न्यायालय के समक्ष उठाया गया है । न्यायालय के ध्यान में यह बात लाई गई है कि अपीलार्थी आठ वर्षों से अभिरक्षा में है । यद्यपि शीघ्र विचारण का अभियुक्त का अधिकार एक मूल्यवान अधिकार है, तो भी इस न्यायालय को अपराध के शिकार व्यक्ति के परिवार और संपूर्ण समाज के अधिकार को ध्यान में रखते हुए न्याय के हित का पक्षधर होना चाहिए । न्यायालय के मत में, अभियुक्त दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के आज्ञापक उपबंधों के अननुपालन के आधार पर दोषमुक्ति का हकदार नहीं है । हम कुछ सीमा तक इस बात से सहमत हैं कि अभियुक्त को प्राक्षेपिकी विज्ञानी की राय, जिसका विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा अवलंब लिया गया है, के बारे में प्रश्न पूछने में किए गए लोप के कारण उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है । विचारण न्यायालय को प्रश्नों को विरचित करने में और यह सुनिश्चित करने में अधिक सावधान रहना चाहिए कि सभी तात्विक साक्ष्य और अपराध में आलिप्त करने वाली परिस्थितियां अभियुक्त के समक्ष प्रस्तुत की जाएं । तथापि, न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त से प्रश्न पूछने में किए गए लोप का फायदा अभियुक्त को नहीं मिल सकता है । विचारण न्यायालय द्वारा 2005 के सेशन मामला सं. 40 में अपीलार्थी की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 और आयुध अधिनियम की धारा 25(1ख) के अधीन दोषसिद्धि और उस पर अधिरोपित

दंडादेश, जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा अभिपुष्टि की गई है, को अपास्त किया जाता है । विचारण न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त के कथन अभिलिखित करने के प्रक्रम से नए सिरे से मामले में कार्यवाही करने के लिए मामला वापस प्रतिप्रेषित किया जाता है । (पैरा 33, 34 और 35)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2010]	(2010) 10 एस. सी. सी. 439 : **परमजीत सिंह** उर्फ **पम्मा** बनाम **उत्तराखंड राज्य** ;	12, 19
[2010]	(2010) 9 एस. सी. सी. 747 : **संतोष कुमार सिंह** बनाम **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की** मार्फत **राज्य** ;	18, 22
[2008]	(2008) 8 एस. सी. सी. 740 : **बासवा आर. पाटिल और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** ;	13
[2008]	(2008) 16 एस. सी. सी. 328 : **असरफ अली** बनाम **असम राज्य** ;	28
[2003]	(2003) 12 एस. सी. सी. 528 : **कुलदीप सिंह और अन्य** बनाम **दिल्ली राज्य** ;	21
[2001]	(2001) 10 एस. सी. सी. 372 : **राज्य (दिल्ली प्रशासन)** बनाम **धर्मपाल** ;	25
[1993]	(1993) 3 एस. सी. सी. 208 : **उषा के. पिल्लै** बनाम **राज के. श्रीनिवास और अन्य** ;	10
[1980]	(1980) 1 एस. सी. सी. 363 : **गणेशमल जशराज** बनाम **गुजरात सरकार और एक अन्य** ;	29
[1974]	ए. आई. आर. 1974 एस. सी. 1256 : **भूर सिंह और एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य** ;	17

[1973]	[1973] 3 उम. नि. प. 1011 = (1973) 2 एस. सी. सी. 793 : **शिवाजी साहबराव बोबडे और एक अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	24
[1956]	ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 400 : **वसीम खान** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य ।**	17

निर्दिष्ट निर्णय

[2012]	(2012) 2 एस. सी. सी. 648 : **अलिस्टर एंथनी परेयरा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	22
[2009]	(2009) 4 एस. सी. सी. 200 : **पंजाब राज्य** बनाम **हरी सिंह और अन्य** ;	6, 21
[2002]	(2002) 7 एस. सी. सी. 419 : **अवतार सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य** ;	14, 15
[1992]	(1992) 1 एस. सी. सी. 225 : **अब्दुल रहमान अंतुले और अन्य** बनाम **आर. एस. नायक और एक अन्य** ।	31

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2014 की दांडिक अपील सं. 2388.

2006 की दांडिक अपील सं. 960 में चंडीगढ़ स्थित पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के तारीख 30 अगस्त, 2012 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री सुशील कुमार जैन, ज्येष्ठ अधिवक्ता और उनके साथ (सुश्री) खुशबु जैन, ए. विक्रम, अभिनव गुप्ता और (सुश्री) प्रतिभा जैन
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री नरेन्द्र हुडा, अपर महाधिवक्ता और उनके साथ (सुश्री) बानो देसवाल और डा. मोनिका गुसैन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (श्रीमती) आर. बानुमति ने दिया ।

न्या. (श्रीमती) बानुमति – इजाजत दी गई ।

2. यह अपील 2006 की दांडिक अपील सं. 960 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थी की अपील को खारिज करते हुए तद्द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा यथा अधिरोपित भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन उसकी दोषसिद्धि और कठोर आजीवन कारावास तथा 20,000/- रुपए के जुर्माने के दंडादेश, जिसके साथ व्यतिक्रम खंड भी है, और आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 25(1ख) के अधीन दोषसिद्धि और तीन वर्ष के कठोर कारावास तथा 10,000/- रुपए के जुर्माने, जिसके साथ व्यतिक्रम खंड भी है, के दंडादेश की पुष्टि करते हुए तारीख 30 अगस्त, 2012 को पारित किए गए निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है ।

3. संक्षेप में अभियोजन का पक्षकथन यह है कि राजबीर तारीख 6 मार्च, 2005 को अपराह्न में 7.30 बजे गली में चारपाई पर सोने के लिए गया था और दया नंद (अभि. सा. 7) भी रात्रि में लगभग 9.00 बजे अपने मकान में सोने के लिए गया था । रात्रि में 11.00 बजे दया नंद को अपने भाई द्वारा उल्टी करने की आवाज सुनाई दी और वह बाहर आया तथा अपने भाई राजबीर को दर्द से कराहते हुए पाया । अभि. सा. 7 ने अपने भाई चन्द्र भान को बुलाया और उन दोनों ने राजबीर के माथे पर अत्यधिक रक्त के साथ क्षतियां देखीं । अभि. सा. 7 डाक्टर को बुलाने गया किंतु डाक्टर ने उसके साथ आने से इनकार कर दिया । जब दया नंद वापस आया, तो राजबीर की पहले ही क्षतियों के कारण मृत्यु हो गई थी । अभि. सा. 7 द्वारा विधि की शरण ली गई और भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई । अभि. सा. 14 ने अन्वेषण का कार्य संभाला और मृतक राजबीर के शव की मृत्यु-समीक्षा की । डा. जे. के. भल्ला (अभि. सा. 10) ने मृतक राजबीर की शव-परीक्षा की और मृतक राजबीर के मस्तिष्क के अनुकपालीय भाग से एक देशी गोली अभिगृहीत की । डा. भल्ला ने यह राय व्यक्त की कि मृत्यु मस्तिष्क की क्षति के कारण हुई थी और उसने प्रदर्श पी-13-मरणोत्तर परीक्षा प्रमाणपत्र जारी किया । घटनास्थल का स्थल नक्शा बनाया गया और तात्विक वस्तुएं अभिगृहीत की गईं । तारीख 14 मार्च, 2005 को अपीलार्थी-अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया और उसके संस्वीकृति कथन के आधार पर उसके

मकान में बने पानी के टैंक के पीछे से एक पिस्तौल बरामद की गई । गोली (.315" और .303" ब्यास के अग्न्यायुध के कोष्ठ वाली) और देशी पिस्तौल (.315" और .303" ब्यास के गोलीकोश के कोष्ठ वाली) प्राक्षेपिकी विज्ञान की राय के लिए भेजे गए । प्राक्षेपिकी विज्ञानी ने यह राय व्यक्त की कि गोली (.315" और .303" ब्यास के अग्न्यायुध के कोष्ठ वाली) उपर्युक्त देशी पिस्तौल से चलाई गई थी और किसी अन्य अग्न्यायुध से नहीं । प्राक्षेपिकी विज्ञानी की राय प्राप्त होने और अन्वेषण पूर्ण होने पर अपीलार्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और आयुध अधिनियम की धारा 25(1ख) के अधीन आरोप पत्र फाइल किया गया ।

4. अभियुक्त के दोष को सिद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष ने अभि. सा. 1 से 14 की परीक्षा कराई और दस्तावेज तथा तात्विक वस्तुएं प्रदर्शित कीं । विचारण न्यायालय ने साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और आयुध अधिनियम की धारा 25(1ख) के अधीन दोषसिद्ध किया और उसे पूर्वोक्त अनुसार कारावास भोगने का दंडादेश दिया । अपील करने पर उच्च न्यायालय ने दोनों अपराधों के लिए अपीलार्थी की दोषसिद्धि और कारावास के अधिरोपित दंडादेश की अभिपुष्टि की । अपीलार्थी ने व्यथित होकर विशेष इजाजत लेकर यह अपील फाइल की है ।

5. अभियोजन पक्ष ने पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त के दोष को सिद्ध करने के लिए निम्नलिखित परिस्थितियों का अवलंब लिया :–

(i) हेतु – मृतक की माता, अभि. सा. 8 का साक्ष्य, जिसने एक घटना के बारे में बताया जो 18 वर्ष पूर्व घटी थी जब राजबीर-मृतक और होशियार सिंह-अभियुक्त का पिता गांव सतनाली से एक यंत्रयुक्त बोझागाड़ी में बुरादा ला रहे थे और वह बोझागाड़ी रास्ते में उलट गई तथा इस दुर्घटना में होशियार सिंह की मृत्यु हो गई, जिसके कारण अपीलार्थी और उसके परिवार का राजबीर के प्रति वैरभाव था क्योंकि उन्हें यह लगता था कि राजबीर ने उनके पिता की हत्या की है । इस साक्षी ने यह भी कथन किया कि लगभग चार वर्ष पूर्व अभियुक्त ने राजबीर को धमकी दी थी कि वह अपने पिता की

हत्या का बदला लेगा ;

(ii) अभि. सा. 11 रणबीर सिंह का साक्ष्य, जिसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि तारीख 6 मार्च, 2005 को जब वह रात्रि में लगभग 11.00 बजे अपने मकान से बाहर आया तो उसने अपीलार्थी नर सिंह को गली में भागते हुए देखा । अभि. सा. 11 ने अग्न्यायुध से गोली चलने की आवाज सुनने की बात भी कही ;

(iii) अपीलार्थी का प्रकटन कथन, जिसके आधार पर अपीलार्थी के मकान में बने पानी के टैंक के पीछे से देशी पिस्तौल (.315" और .303" ब्यास के गोलीकोश के कोष्ठ वाली) की बरामदगी हुई ;

(iv) प्रदर्श पी-13 और अभि. सा. 10 डा. जे. के. भल्ला का साक्ष्य, जिसने मृतक राजबीर के शव की मरणोत्तर परीक्षा की थी और मृतक राजबीर के मस्तिष्क के अनुकपालिय भाग से एक गोली की बरामदगी होना ; और

(v) प्राक्षेपिकी विज्ञानी की यह राय (प्रदर्श पी-12) कि देशी गोली (.315" और .303" ब्यास के अग्न्यायुध के कोष्ठ वाली) अभियुक्त के प्रकटन कथन के अनुसरण में बरामद की गई देशी पिस्तौल (.315" और .303" ब्यास के गोलीकोश के कोष्ठ वाली) से चलाई गई थी, न कि किसी और अन्य अग्न्यायुध से ।

विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन पक्ष द्वारा उपरोक्त परिस्थितियों को साबित किया गया है और उनसे अभियुक्त की दोषिता को सिद्ध करते हुए एक पूर्ण श्रृंखला का गठन होता है । विचारण न्यायालय ने ऐसा अभिनिर्धारित करते हुए न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट (प्रदर्श पी-12) का अपीलार्थी के विरुद्ध एक महत्वपूर्ण साक्ष्य के रूप में अवलंब लिया । अपीलार्थी की दोषसिद्धि को कायम रखने के लिए उच्च न्यायालय ने भी न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट का एक तात्विक साक्ष्य के रूप में अवलंब लिया ।

6. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल, श्री सुशील कुमार जैन ने यह दलील दी कि निचले न्यायालयों द्वारा अवलंब ली गई किसी भी परिस्थिति को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित नहीं किया गया है और वे परिस्थितियां संचयी रूप से या अकेले अभियुक्त की दोषिता को सिद्ध करने के लिए अपर्याप्त हैं । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने मुख्य रूप से यह दलील

दी कि अपीलार्थी के विरुद्ध अपराध में आलिप्त करने वाला एकमात्र पारिस्थितिक साक्ष्य न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट, प्रदर्श पी-12 थी और जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपीलार्थी से प्रश्न किए जा रहे थे तो उसके समक्ष यह रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की गई थी । यह दलील दी गई कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 में यह आज्ञापक किया गया है कि अपराध में आलिप्त करने वाले सभी साक्ष्य और परिस्थितियां अभियुक्त को प्रस्तुत किए जाने चाहिएं और न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट, प्रदर्श पी-12, जो कि अपीलार्थी की दोषसिद्धि का आधार है, अभियुक्त को प्रस्तुत नहीं की गई थी तथा अभियुक्त से महत्वपूर्ण साक्ष्य के बारे में प्रश्न न करना अभियोजन के पक्षकथन के लिए घातक है और इससे दोषसिद्धि दूषित हो जाती है । **पंजाब राज्य** बनाम **हरी सिंह और अन्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया गया ।

7. हरियाणा राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् अपर महाधिवक्ता, श्री नरेन्द्र हुडा ने यह दलील दी कि अभियोजन पक्ष द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध सभी परिस्थितियों को सिद्ध किया गया था और विद्वान् निचले न्यायालयों ने अभियुक्त की दोषिता के बारे में एक जैसे निष्कर्ष अभिलिखित किए हैं । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अभियुक्त से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन प्रश्न करने के दौरान न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट, प्रदर्श पी-12 और प्राक्षेपिकी विज्ञानी की राय के बारे में प्रश्न न पूछने से विचारण स्वयमेव ही दूषित नहीं हो जाएगा और अभियुक्त को उस पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव को सिद्ध करना होगा । यह दलील दी गई कि न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट और प्राक्षेपिकी विज्ञानी की राय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अपीलार्थी को प्रस्तुत करने में हुए लोप और अपीलार्थी पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव की बात न तो विचारण न्यायालय और न ही उच्च न्यायालय के समक्ष उठाई गई थी और अपीलार्थी ऐसा अभिवाक् प्रथम बार इस न्यायालय में करने के लिए स्वतंत्र नहीं है ।

8. क्योंकि अपीलार्थी की दलील का मुख्य जोर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अननुपालन के प्रश्न पर है, इसलिए हम इस अपील पर सिवाय इस महत्वपूर्ण प्रश्न के अर्थात् क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के आज्ञापक उपबंधों के अननुपालन से अपीलार्थी का विचारण और

---

[1] (2009) 4 एस. सी. सी. 200.

दोषसिद्धि दूषित हो गए हैं, गुणागुण के आधार पर विचार करना प्रस्थापित नहीं करते हैं ।

9. अभियुक्त की परीक्षा करने की शक्ति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 में उपबंधित है, जो निम्नलिखित प्रकार से है :–

"**313. अभियुक्त की परीक्षा करने की शक्ति** – (1) प्रत्येक जांच या विचारण में, इस प्रयोजन से कि अभियुक्त अपने विरुद्ध साक्ष्य में प्रकट होने वाली किन्हीं परिस्थितियों का स्वयं स्पष्टीकरण कर सके, न्यायालय –

(क) किसी प्रक्रम में, अभियुक्त को पहले से चेतावनी दिए बिना, उससे ऐसे प्रश्न कर सकता है जो न्यायालय आवश्यक समझे ;

(ख) अभियोजन के साक्षियों की परीक्षा किए जाने के पश्चात् और अभियुक्त से अपनी प्रतिरक्षा करने की अपेक्षा किए जाने के पूर्व उस मामले के बारे में उससे साधारणतया प्रश्न करेगा :

परन्तु किसी समन-मामले में, जहां न्यायालय ने अभियुक्त को वैयक्तिक हाजिरी से अभिमुक्ति दे दी है, वहां वह खंड (ख) के अधीन उसकी परीक्षा से भी अभिमुक्ति दे सकता है ।

(2) जब अभियुक्त की उपधारा (1) के अधीन परीक्षा की जाती है तब उसे कोई शपथ न दिलाई जाएगी ।

(3) अभियुक्त ऐसे प्रश्नों के उत्तर देने से इनकार करने से या उसके मिथ्या उत्तर देने से दंडनीय न हो जाएगा ।

(4) अभियुक्त द्वारा दिए गए उत्तरों पर उस जांच या विचारण में विचार किया जा सकता है और किसी अन्य ऐसे अपराध की, जिसका उसके द्वारा किया जाना दर्शाने की उन उत्तरों की प्रवृत्ति हो, किसी अन्य जांच या विचारण में ऐसे उत्तरों को उसके पक्ष में या उसके विरुद्ध साक्ष्य के तौर पर रखा जा सकता है ।

(5) न्यायालय ऐसे सुसंगत प्रश्न तैयार करने में, जो अभियुक्त से पूछे जाने हैं, अभियोजक और प्रतिरक्षा काउंसेल की सहायता ले सकेगा और न्यायालय इस धारा के पर्याप्त अनुपालन के रूप में अभियुक्त द्वारा लिखित कथन फाइल किए जाने की अनुज्ञा दे

सकेगा ।"

10. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन दो प्रकार की परीक्षा आती है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313(1)(क) के अधीन प्रथम परीक्षा जांच या विचारण के किसी भी प्रक्रम पर किए जाने से संबंधित है, जबकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313(1)(ख) के अधीन द्वितीय परीक्षा अभियोजन के साक्षियों की परीक्षा किए जाने के पश्चात् और अभियुक्त से अपनी प्रतिरक्षा प्रस्तुत करने की अपेक्षा किए जाने से पूर्व की जाती है । प्रथम परीक्षा विशिष्ट और वैकल्पिक है, किंतु द्वितीय परीक्षा साधारण और आज्ञापक है । **उषा के. पिल्लै** बनाम **राज के. श्रीनिवास और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय को धारा 313(1) के खंड (क) के द्वारा अभियुक्त से जांच या विचारण के किसी भी प्रक्रम पर प्रश्न पूछने के लिए सशक्त किया गया है, जबकि धारा 313(1) के खंड (ख) के द्वारा न्यायालय को अभियुक्त से उसके विरुद्ध अभियोजन साक्ष्य में प्रकट होने वाली किसी परिस्थिति पर अपनी प्रतिरक्षा प्रस्तुत करने से पूर्व प्रश्न पूछने के लिए आबद्धकर किया गया है ।

11. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313(1)(ख) का उद्देश्य अभियोग के सार को अभियुक्त को बताना है जिससे कि वह अपने विरुद्ध साक्ष्य में प्रकट होने वाली प्रत्येक परिस्थिति का स्पष्टीकरण देने में समर्थ हो सके । इस धारा के उपबंध आज्ञापक हैं और न्यायालय पर यह कर्तव्य अधिरोपित करते हैं कि अभियुक्त को उसके विरुद्ध प्रकट होने वाली प्रत्येक परिस्थिति और अपराध में आलिप्त करने वाले साक्ष्य का स्पष्टीकरण देने का अवसर प्रदान करे । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313(1)(ख) के अधीन अभियुक्त की परीक्षा मात्र एक औपचारिकता नहीं है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 में अभियुक्त को साक्ष्य में उसके विरुद्ध प्रकट होने वाले तथ्यों और परिस्थितियों के बारे में उसे स्पष्टीकरण देने का अवसर देकर एक प्रक्रियात्मक रक्षोपाय विहित किया गया है और अभियुक्त के दृष्टिकोण से यह अवसर एक मूल्यवान अवसर है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 का वास्तविक महत्व इस बात में निहित है कि यह धारा न्यायालय पर अभियुक्त से उचित रूप से और ऋजुतापूर्वक प्रश्न पूछने का कर्तव्य अधिरोपित करती है ताकि उसे उस वास्तविक मामले से अवगत किया जा सके जिसका उसे सामना करना है और तद्द्वारा उसे ऐसे किसी बिंदु को स्पष्ट करने का अवसर दिया जाता है ।

---

[1] (1993) 3 एस. सी. सी. 208.

12. **परमजीत सिंह** उर्फ **पम्मा** बनाम **उत्तराखंड राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन किए गए कथन के महत्व को सविस्तार प्रतिपादित करते हुए निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 निष्पक्षता के मूलभूत सिद्धांत पर आधारित है । अभियुक्त के ध्यान में उसे अपराध में आलिप्त करने वाले साक्ष्य को, उसे स्पष्टीकरण देने का अवसर देने के लिए यदि वह स्पष्टीकरण देना चाहता है, विनिर्दिष्ट रूप से लाया जाना आवश्यक है । इसलिए न्यायालय अपराध में आलिप्त करने वाली परिस्थितियों को अभियुक्त के समक्ष प्रस्तुत करने और उसका उत्तर मांगने के लिए विधिक बाध्यता अधीन है । यह उपबंध आज्ञापक प्रकृति का है और न्यायालय पर अनिवार्य कर्तव्य अधिरोपित करता है और साथ-ही-साथ अभियुक्त को यह अधिकार प्रदत्त करता है कि उसे उसके विरुद्ध प्रकट अपराध में आलिप्त करने वाली ऐसी सामग्री के बारे में स्पष्टीकरण देने का अवसर दिया जाए । परिस्थितियां, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन की गई अभियुक्त की परीक्षा में उसके समक्ष प्रस्तुत नहीं की गई हैं, उन्हें उसके विरुद्ध प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है और उन्हें विचार में नहीं लिया जाना चाहिए । शरद बिरधीचंद शारदा **बनाम** महाराष्ट्र राज्य [(1984) 4 एस. सी. सी.116] और महाराष्ट्र राज्य **बनाम** सुखदेव सिंह [(1992) 3 एस. सी. सी. 700 वाले मामले देखें] ।"

13. **बासवा आर. पाटिल और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 की परिधि पर विचार किया और पैरा 18 से 20 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "18. संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त की परीक्षा का उद्देश्य क्या है ? इस धारा में ही स्पष्ट भाषा में इसके इस उद्देश्य को बताया गया है कि यह धारा 'अभियुक्त के विरुद्ध साक्ष्य में प्रकट होने वाली किन्हीं परिस्थितियों का व्यक्तिगत तौर पर स्पष्टीकरण देने के लिए उसे समर्थ बनाने के प्रयोजन' के लिए है । जय देव **बनाम**

---

[1] (2010) 10 एस. सी. सी. 439.

[2] (2008) 8 एस. सी. सी. 740.

पंजाब राज्य (ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 612) वाले मामले में न्यायमूर्ति गजेन्द्रगढकर (जो वह उस समय थे) ने तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ की ओर से निर्णय सुनाते हुए यह अवधारित करने के लिए कि क्या इस उपबंध का ऋजुतापूर्वक पालन किया गया है या नहीं, इसकी निर्णायक कसौटी पर ध्यान केंद्रित किया । उन्होंने यह मत व्यक्त किया :–

> 'यह अवधारित करने के लिए कि क्या धारा 342 के अधीन अभियुक्त की ऋजुतापूर्वक परीक्षा की गई है या नहीं, निर्णायक कसौटी यह होगी कि यह जांच की जाए कि क्या उसे पूछे गए सभी प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए उसे वह बात कहने का अवसर मिला जो वह अपने विरुद्ध अभियोजन पक्षकथन के संबंध में कहना चाहता था । यदि यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त की परीक्षा त्रुटिपूर्ण थी और तद्द्वारा उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, तब यह बात निस्संदेह एक गंभीर त्रुटि होगी ।'

19. इस प्रकार, यह सुस्थिर है कि इस उपबंध का मुख्य आशय अभियुक्त को फायदा देना और इसके परिणाम के तौर पर न्यायालय को अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचने में सहायता करना है ।

20. साथ-ही-साथ यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि इस उपबंध का आशय अभियुक्त को किसी बात से बांधना नहीं अपितु दूसरे पक्षकार को भी सुनो सूत्र में प्रतिष्ठापित नैसर्गिक न्याय के अति श्रेयस्कर सिद्धांत का पालन करना है । संहिता की धारा 313 की उपधारा (1) के खंड (क) में दिए गए शब्द 'कर सकता है' (में) से निस्संदेह यह उपदर्शित होता है कि यदि न्यायालय अभियुक्त से इस खंड के अधीन कोई प्रश्न नहीं पूछता है तो वह इसके लिए कोई शिकायत नहीं कर सकता है । किंतु यदि न्यायालय इस उपधारा के खंड (ख) के अधीन आवश्यक प्रश्न पूछने में असफल रहता है तो इसके परिणामस्वरूप अभियुक्त को कठिनाई होगी और वह विधिसम्मत रूप से यह दावा कर सकता है कि उसके विरुद्ध किसी साक्ष्य का प्रयोग उसे इसका स्पष्टीकरण देने का अवसर दिए बिना नहीं किया जा सकता है । अब यह सुस्थिर है कि कोई परिस्थिति जिसके बारे में अभियुक्त से उसका स्पष्टीकरण देने के लिए नहीं

कहा जाता है, उसे उसके विरुद्ध प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है ।"

14. अपीलार्थी की मुख्य दलील यह है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन उसके कथन के समय चूंकि तात्विक साक्ष्य, प्रदर्श पी-12 और प्राक्षेपिकी विज्ञानी की राय को उसे नहीं बताया गया था, इसलिए इसे विचार में लेने से पूर्णतः अपवर्जित किया जाना चाहिए और इसे वर्जित करने पर दोषसिद्धि कायम करने के लिए कोई अन्य साक्ष्य नहीं है तथा **अवतार सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया गया ।

15. **अवतार सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में जब अभियुक्तों की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन परीक्षा की गई, तब अभियोग के सार, विशिष्ट रूप से माल कब्जे में रखने की बात, उनके ध्यान में नहीं लाई गई थी । यह भी पाया गया कि अभियुक्तों के ट्रक के श्रमिक होने की संभाव्यता से भी साक्ष्य द्वारा इनकार नहीं किया गया । अवतार सिंह वाले मामले का निर्णय उस मामले के कई विशिष्ट तथ्यात्मक पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् सुनाया गया था और यह निर्णय सर्वव्यापी प्रयोग की विधि अधिकथित नहीं करता है क्योंकि यह मामला इसके अपने तथ्यों के आधार पर विनिश्चित किया गया था ।

16. निस्संदेह, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन किए गए कथन के महत्व को, जहां तक इसका अभियुक्त से संबंध है, मुश्किल से कम आंका जा सकता है । यह कानूनी उपबंध अभियुक्त के लिए नैसर्गिक न्याय के नियमों पर आधारित है, जिसे उसके विरुद्ध प्रस्तुत की जा रही परिस्थितियों से अवश्य अवगत कराया जाना चाहिए ताकि वह उस मामले का सामना करने के लिए उचित स्पष्टीकरण दे सके । यदि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन किए गए कथन के बारे में कोई आक्षेप सर्वप्रथम प्रक्रम पर किया जाता है, तो न्यायालय त्रुटि को ठीक कर सकता है और अभियुक्त का अतिरिक्त कथन अभिलिखित कर सकता है क्योंकि यह सबके हित में होगा । जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन किए गए कथन के त्रुटिपूर्ण होने के बारे में आक्षेप अपील न्यायालय में किए जाते हैं, तब अभियोजन पक्ष तथा अभियुक्त के लिए कठिनाई पैदा होती है । जब विचारण न्यायालय से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के आज्ञापक उपबंधों के अनुसार कार्य करने की अपेक्षा की गई है, तब

---

[1] (2002) 7 एस. सी. सी. 419.

विचारण न्यायालय के विधि की आज्ञा का पालन करने में असफल रहने से, हमारे मत में, अभियुक्त को स्वयमेव ही इसका फायदा प्राप्त नहीं हो सकता है । अभियुक्त से अपराध में आलिप्त करने वाली किसी परिस्थिति पर प्रश्न करने में न्यायालय की ओर से किए गए किसी लोप से विचारण तब तक स्वतः ही दूषित नहीं हो जाएगा जब तक कि यह दर्शित न किया जाए कि अभियुक्त पर कोई तात्विक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है । जहां तक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के आज्ञापक उपबंधों के अननुपालन का संबंध है, यह ऐसी गलती है जो आवश्यक रूप से विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा कारित की गई है । चूंकि न्यायालय के हाथों न्याय की हानि हुई है, इसलिए इसे अपील में ठीक या परिशोधित किया जाना चाहिए ।

17. जहां तक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 का संबंध है, निस्संदेह अभियुक्त का ध्यान विनिर्दिष्ट रूप से अपराध में आलिप्त करने वाले साक्ष्य की ओर उसे उसका स्पष्टीकरण देने का अवसर देने के लिए, यदि वह स्पष्टीकरण देना चाहता है, दिलाया जाना आवश्यक है । **वसीम खान** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] और **भूर सिंह और एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि पुरानी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 342 के उपबंधों के पालन में हुई हर किसी गलती या लोप से विचारण आवश्यक रूप से दूषित नहीं हो जाता है । अभियुक्त को यह दर्शित करना आवश्यक है कि उस पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है या पड़ने की संभावना है ।

18. **संतोष कुमार सिंह** बनाम **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की** मार्फत **राज्य**[3] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त करते हुए कि अभियुक्त के समक्ष कोई तात्विक परिस्थिति का उल्लेख करने में हुए लोप से विचारण स्वयमेव ही दूषित नहीं हो जाता है और अभियुक्त के लिए यह दर्शित करना आवश्यक है कि उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और उसके द्वारा न्याय की हानि सहन की गई है, निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> " ......प्रत्येक मामले के तथ्यों की परीक्षा की जानी चाहिए किंतु मुख्य सिद्धांत यह है कि अभियुक्त के समक्ष अपराध में आलिप्त करने वाली सभी तात्विक परिस्थितियों को संहिता की धारा 313 के अधीन

---

[1] ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 400.

[2] ए. आई. आर. 1974 एस. सी. 1256.

[3] (2010) 9 एस. सी. सी. 747.

उसका कथन अभिलिखित करते समय अवश्य रखा जाना चाहिए, किंतु यदि कोई तात्विक परिस्थिति छूट गई है तो इसके परिणामस्वरूप उस साक्ष्य से स्वयमेव ही तब तक उसका अपवर्जन नहीं हो जाएगा जब तक कि अभियुक्त द्वारा आगे यह दर्शित न किया जाए कि उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है या उसके द्वारा न्याय की हानि सहन की गई है .....।"

19. **परमजीत सिंह** उर्फ **पम्मा** बनाम **उत्तराखंड राज्य** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

"इस प्रकार उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के उपबंध न्यायालय को इस बात के लिए आबद्ध करते हैं कि अभियुक्त से उसके विरुद्ध साक्ष्य या परिस्थितियों पर प्रश्न पूछे जाएं ताकि अभियुक्त को उनका स्पष्टीकरण देने का अवसर दिया जा सके । किंतु अभियुक्त के लिए यह दर्शित करना ही पर्याप्त नहीं होगा कि उसे किसी विशिष्ट परिस्थिति पर प्रश्न नहीं पूछे गए हैं या परीक्षा नहीं की गई है, इसके बजाय, उसे अवश्य यह दर्शित करना चाहिए कि ऐसी परीक्षा नहीं होने से उस पर वस्तुतः और तात्विक रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और इसके परिणामस्वरूप न्याय की हानि हुई है । दूसरे शब्दों में, अभियुक्त से अपराध में आलिप्त करने वाली किसी परिस्थिति पर प्रश्न पूछने में न्यायालय की ओर से अनवधानता से हुए किसी लोप से स्वयमेव ही विचारण तब तक दूषित नहीं हो सकता है जब तक कि यह दर्शित न किया जाए कि न्यायालय के लोप द्वारा अभियुक्त पर कोई तात्विक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है ।"

20. यह प्रश्न कि क्या विचारण दूषित हो गया है या नहीं, गलती की मात्रा पर निर्भर करता है और अभियुक्त को अवश्य यह दर्शित करना चाहिए कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अननुपालन से उस पर तात्विक रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है या उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना संभाव्य है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन प्रश्न करने में हुई त्रुटि मात्र से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि अभियुक्त पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, यहां तक कि यह मान भी लिया जाए कि अभियोजन पक्षकथन में अपराध में आलिप्त करने वाली कुछ परिस्थितियां छूट गई हैं । जब अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने का अभिकथन किया जाता है, तब यह दर्शित किया जाना चाहिए कि अभियुक्त को दंड प्रक्रिया

संहिता की धारा 313 के अधीन उसे दिए गए रक्षोपाय के संबंध में निर्योग्यता हुई है या अहित कारित हुआ है । ऐसे प्रतिकूल प्रभाव से यह भी प्रदर्शित होना चाहिए कि अभियुक्त के साथ अन्याय हुआ है । यह साबित करने का भार अभियुक्त पर है कि उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में ऐसा प्रतिकूल प्रभाव उपलक्षित हो सकता है और न्यायालय ऐसे प्रतिकूल प्रभाव का निष्कर्ष निकाल सकता है । यह अवधारण करने के लिए प्रत्येक मामले के तथ्यों की परीक्षा की जानी चाहिए कि क्या अपराध में आलिप्त करने वाली किन्हीं परिस्थितियों को अभियुक्त के समक्ष प्रस्तुत करने में हुए लोप के कारण अपीलार्थी पर वस्तुतः कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है या नहीं ।

21. हम इस न्यायालय के कुछ ऐसे निर्णय निर्दिष्ट कर सकते हैं जिनमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन प्रश्न पूछने में हुए लोप से अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और दोषसिद्धि दूषित हो गई है । **पंजाब राज्य** बनाम **हरी सिंह और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में जब अभियुक्त की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन परीक्षा की गई तो उससे स्वापक पदार्थ के सबोध कब्जे से संबंधित प्रश्न नहीं पूछा गया था । इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालते हुए कि अभियुक्त से विनिषिद्ध पदार्थ के सबोध कब्जे से संबंधित प्रश्न नहीं पूछा गया था, यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसे लोप के कारण अभियोजन का पक्षकथन अत्यधिक प्रभावित हुआ है और इस न्यायालय ने दोषमुक्ति की अभिपुष्टि की । **कुलदीप सिंह और अन्य** बनाम **दिल्ली राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त की परीक्षा में उसके समक्ष अपराध में आलिप्त करने वाली महत्वपूर्ण परिस्थिति का उल्लेख नहीं किया गया था, इसलिए अभियोजन पक्ष उक्त साक्ष्य का अवलंब नहीं ले सकता है ।

22. हम कुछ अन्य विनिश्चय भी निर्दिष्ट कर सकते हैं जिनमें मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभियुक्त पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है या न्याय की हानि नहीं हुई है । **संतोष कुमार सिंह** बनाम **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो की** मार्फत **राज्य** (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि हैलमट और गर्दन पर बांधे जाने के चिह्न, जिसके बारे में डाक्टर से प्रश्न किया गया

---

[1] (2003) 12 एस. सी. सी. 528.

था, से संबंधित मुख्य मुद्‌दों पर प्रतिरक्षा पक्ष के काउंसेल ने विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय के समक्ष भी विस्तृत दलीलें दी थीं और इसलिए प्रतिरक्षा पक्ष अपीलार्थी के विरुद्ध परिस्थितियों के प्रति अभिज्ञ था और अभियुक्त पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है और न्याय की हानि नहीं हुई है । **अलिस्टर एंथनी परेयरा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में के तथ्यों और परिस्थितियों में यह अभिनिर्धारित किया गया कि अपीलार्थी के समक्ष रसायन विश्लेषक की रिपोर्ट का अभिव्यक्त रूप से उल्लेख न करने से यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थी पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और अभियोजन के साक्ष्य की बाबत जो वह कहना चाहता था उसे कहने का उसके पास पर्याप्त अवसर था और उच्च न्यायालय ने इस बाबत अपीलार्थी-अभियुक्त की दलील को ठीक ही नामंजूर किया है ।

23. जब अभियुक्त द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन प्रश्न करने में किए गए लोप के बारे में ऐसा आक्षेप अपील न्यायालय में उठाया जाता है और अभियुक्त पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव को भी दर्शित किया जाता है, तब अपील न्यायालय को उपलब्ध क्रियाविधि क्या है ? अपील न्यायालय दोषसिद्ध व्यक्ति की परीक्षा कर सकता है या अभियुक्त की ओर से काउंसेल को यह दर्शित करने के लिए कह सकता है कि अभियुक्त के पास उन परिस्थितियों के बारे में क्या स्पष्टीकरण है जो उसके विरुद्ध सिद्ध की गई हैं किंतु दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन उसके समक्ष प्रस्तुत नहीं की गई हैं और उक्त उत्तर पर विचार किया जा सकता है ।

24. **शिवाजी साहबराव बोबडे और एक अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने अभियुक्त के विरुद्ध प्रकट होने वाली महत्वपूर्ण परिस्थिति पर उससे प्रश्न न पूछने में किए गए लोप के परिणाम पर विचार किया और इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अपील न्यायालय अभियुक्त के काउंसेल से उस परिस्थिति के बारे में प्रश्न कर सकता है जिसका अभियुक्त के समक्ष प्रस्तुत करने में लोप हो गया था और पैरा 16 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया :–

> "…. यह प्राचीन विधि भले ही वह मूल विधि क्यों न हो कि कैदी का ध्यान प्रत्येक अभिशंसी सामग्री की ओर आकृष्ट किया जाना चाहिए, विचारण की मौलिक उचित बात है और यदि इस क्षेत्र में

---

[1] (2012) 2 एस. सी. सी. 648.

[2] [1973] 3 उम. नि. प. 1011 = (1973) 2 एस. सी. सी. 793.

असफलता होती है, तो उससे संबंधित विचारण की विधिमान्यता गंभीर रूप से खतरे में उस दशा में पड़ जाती है, यदि उसके परिणामस्वरूप न्याय की हानि हुई है । किंतु जहां कि ऐसी गलती हो गई है, उससे संबंधित कार्यवाहियां अपने आप ही दूषित नहीं हो जाती हैं और ऐसी त्रुटि के परिणामस्वरूप यदि कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, तो अभियुक्त को वह बात साबित करनी पड़ेगी । ऐसी दशा में, जिसमें साक्ष्य संबंधी सामग्री अभियुक्त के समक्ष पेश न की गई हो, न्यायालय को साधारणतः ऐसी सामग्री पर विचार नहीं करना चाहिए । अपील न्यायालय को यह अधिकार भी प्राप्त है कि वह अभियुक्त के काउंसेल से यह दर्शित करने के लिए कहे कि उसके विरुद्ध साबित की गई परिस्थितियों के संबंध में, किंतु जो कि उसके समक्ष पेश न की गई हों, उसका स्पष्टीकरण क्या है और यदि अभियुक्त और अपील न्यायालय के समक्ष ऐसी परिस्थितियों के संबंध में कोई भी संकेत या युक्तियुक्त स्पष्टीकरण देने में असमर्थ रहता है, तो न्यायालय यह उपधारणा कर सकेगा कि कोई भी स्वीकार्य उत्तर मौजूद नहीं है और यह कि यदि विचारण न्यायालय ने उचित समय पर अभियुक्त से वह प्रश्न पूछा होता तो भी उसने उन परिस्थितियों से जिनका विचारण न्यायालय ने उसको दोषी ठहराने के लिए आश्रय लिया था, छुटकारा पाने का कोई अच्छा आधार प्रस्तुत न किया होता । ऐसे मामले में, न्यायालय इस आधार पर कार्यवाही करता है कि यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 342 का अनुसरण करने के संबंध में गंभीर अनियमितताएं की गई हैं, तथापि, ऐसी चूक के बारे में यह बात दर्शित नहीं की गई है कि उसके परिणामस्वरूप अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है ....।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

25. **राज्य (दिल्ली प्रशासन)** बनाम **धर्मपाल**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा यही मत दोहराया गया था, जिसमें इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

"इस प्रकार यह देखा जाना चाहिए कि जहां अपराध में आलिप्त करने वाली किसी सामग्री को अभियुक्त के ध्यान में लाने में लोप किया गया है, वहां इस बात से स्वतः ही कार्यवाहियां दूषित नहीं हो

---

[1] (2001) 10 एस. सी. सी. 372.

जाती हैं । अभियुक्त के लिए यह दर्शित करना आवश्यक है कि ऐसे लोप द्वारा न्याय की हानि हुई है । इसके अतिरिक्त, अपराध में आलिप्त करने वाली किसी सामग्री को अभियुक्त के समक्ष प्रस्तुत नहीं किए जाने की दशा में, अपील न्यायालय सदैव इस चूक को अभियुक्त की ओर से काउंसेल को यह दर्शित करने के लिए कहकर ठीक कर सकता है कि अभियुक्त के पास उन परिस्थितियों के बारे में क्या स्पष्टीकरण है जो उसके विरुद्ध सिद्ध की गई हैं किंतु उन्हें उसके समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था ।

हमारे मत में, यह विधि होते हुए सेशन न्यायाधीश और उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालकर गलती की है कि निदेशक, केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला के प्रमाणपत्र की अंतर्वस्तुओं को अभियुक्त के समक्ष प्रस्तुत करने में किए गए लोप का परिणाम केवल यह होगा कि अभियुक्त को दोषमुक्त किया जाए । अभियुक्त को यह दर्शित करना होगा कि उसके समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत न करने से उस पर कुछ प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है । अन्यथा भी, सेशन न्यायाधीश और/या उच्च न्यायालय का यह कर्तव्य है कि यदि वे यह पाते हैं कि किसी महत्वपूर्ण परिस्थिति को अभियुक्त के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है, तो अभियुक्त की ओर से काउंसेल से वे प्रश्न किए जाएं और अभियुक्त के उत्तर प्राप्त किए जाएं । यदि अभियुक्त कोई स्पष्ट और युक्तियुक्त स्पष्टीकरण नहीं दे सका है, तो यह धारणा की जाएगी कि कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । सेशन न्यायाधीश और उच्च न्यायालय दोनों ने विधि की इस स्थिति की अनदेखी की है और अपने-अपने कर्तव्य का पालन करने में असफल रहे हैं तथा गलत रूप से अभियुक्त को दोषमुक्त किया गया है ।''

26. इस प्रकार, इस न्यायालय ने अभियोजन साक्ष्य पूर्ण होने के पश्चात् अभियुक्त की परीक्षा से संबंधित उपबंधों की परिधि को विस्तृत कर दिया है और अपील के प्रक्रम पर अभियुक्त की ओर से काउंसेल द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को ही स्वयं अभियुक्त द्वारा दिए जाने वाले उत्तरों का एक पर्याप्त अनुकल्प अभिनिर्धारित किया है ।

27. इसके पश्चात्, हमारे विचार करने के लिए यह प्रश्न उद्‌भूत होता है कि यदि विचारण न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के

अधीन उपबंधित आज्ञा के अनुसार अभियुक्त से सभी सुसंगत प्रश्न नहीं किए गए हैं और जहां अभियुक्त ने यह दर्शित भी कर दिया है कि उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है या जहां प्रतिकूल प्रभाव पड़ना स्पष्ट है, वहां क्या अपील न्यायालय को मामले को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन कथन अभिलिखित करने के प्रक्रम से पुनःविनिश्चय करने के लिए प्रतिप्रेषित करने की शक्ति है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 386 अपील न्यायालय की शक्ति से संबंधित है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 386 के उप-खंड (ख)(i) के अनुसार अपील न्यायालय को उस अपील न्यायालय के अधीनस्थ सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा मामले का पुनःविचारण करने का आदेश देने की शक्ति है । इसलिए, यदि विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त से सभी सुसंगत प्रश्न नहीं किए गए हों और अभियुक्त ने यह दर्शित किया हो कि उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, तो अपील न्यायालय को मामले को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त की पुनः परीक्षा करने के लिए प्रतिप्रेषित करने की शक्ति है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन कथन अभिलिखित करने के प्रक्रम से मामले का पुनःविचारण करने के लिए भी प्रतिप्रेषित कर सकता है और मामले को इस प्रकार प्रतिप्रेषित करने के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि यह बात अभियोजन पक्षकथन की खामी को भरने की कोटि में आती है ।

28. **असरफ अली** बनाम **असम राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त की परीक्षा की परिधि और उद्देश्य का विवेचन किया और पैरा 24 में यह मत व्यक्त किया कि कतिपय मामलों में जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन परीक्षा लापरवाही से की गई है, तो मामला विचारण न्यायालय को उस प्रक्रम से पुनः विचारण करने के निदेश के साथ प्रतिप्रेषित किया जा सकता है, जिस प्रक्रम पर अभियोजन साक्ष्य समाप्त हुआ था ।

29. **गणेशमल जशराज** बनाम **गुजरात सरकार और एक अन्य**[2] वाले मामले में अभियोजन साक्ष्य समाप्त होने और अभियुक्त की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन परीक्षा पूर्ण होने के पश्चात् अभियुक्त ने संभाव्यतः सौदे-बाजी के परिणामस्वरूप अपना दोष स्वीकार कर लिया था और अभियुक्त को दोषसिद्ध किया गया । यह उल्लेख किए जाने पर कि

[1] (2008) 16 एस. सी. सी. 328.

[2] (1980) 1 एस. सी. सी. 363.

विचारण न्यायालय का दृष्टिकोण अभियुक्त द्वारा दोष की स्वीकृति करने से प्रभावित था और अभियुक्त की दोषसिद्धि को कायम नहीं रखा जा सकता है, इस न्यायालय ने मामले को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन परीक्षा के प्रक्रम से नए सिरे से कार्यवाही करने के लिए विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित कर दिया ।

30. जब कभी अभियुक्त से महत्वपूर्ण प्रश्न करने में किए गए लोप का अभिवाक् अपील न्यायालय में किया जाता है तो अपील न्यायालय को उपलब्ध प्रक्रिया के सार का संक्षेप में निम्नलिखित प्रकार से उल्लेख किया जा सकता है :–

(i) जब कभी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अननुपालन का कोई अभिवाक् किया जाता है, तो अपील न्यायालय को यह शक्ति है कि वह इसकी परीक्षा करे और इसके अतिरिक्त दोषसिद्ध व्यक्ति या अभियुक्त की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेल की परीक्षा करे और उक्त उत्तरों को मामले का विनिश्चय करने के लिए विचार में लिया जाएगा । यदि अभियुक्त अपील न्यायालय को उक्त परिस्थिति का कोई युक्तियुक्त स्पष्टीकरण देने में असमर्थ रहता है, तो न्यायालय यह मान सकता है कि अभियुक्त के पास कोई स्वीकार्य स्पष्टीकरण नहीं है ।

(ii) मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यदि अपील न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अभियुक्त पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है या न्याय की हानि नहीं हुई है, तो अपील न्यायालय गुणागुण के आधार पर मामले की सुनवाई और विनिश्चय करेगा ।

(iii) यदि अपील न्यायालय की यह राय है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के उपबंधों के अननुपालन से अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है या प्रतिकूल प्रभाव पड़ना संभाव्य है, तो अपील न्यायालय अभियुक्त के कथन अभिलिखित किए जाने के प्रक्रम से उस बिंदु से जहां अनियमितता कारित हुई, अर्थात् दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त से प्रश्न करने के प्रक्रम से, पुनः विचारण करने का निदेश दे सकता है और विचारण न्यायाधीश को अभियुक्त और प्रतिरक्षा साक्षियों, यदि कोई हो, की नए सिरे से परीक्षा करने और नए सिरे से मामले का निपटारा करने का निदेश दे सकता है ।

(iv) अपील न्यायालय मामले के विचारण में पहले ही व्यतीत हो

चुकी लंबी अवधि और दोषसिद्ध व्यक्ति द्वारा पहले ही भोगी जा चुकी लंबी अवधि के कारण मामले को विचारण न्यायालय को प्रतिप्रेषित करने से इनकार कर सकता है और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अभियुक्त पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव को ध्यान में रखते हुए अपील का इसके गुणागुण के आधार पर विनिश्चय कर सकता है ।

31. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के आज्ञापक उपबंधों के अननुपालन के आधार पर विचारण न्यायालय को मामला वापस प्रतिप्रेषित करने के प्रश्न पर यह दलील दी कि वर्तमान मामले में का अभियुक्त आठ वर्ष से भी अधिक समय से अभिरक्षा में है और अभियुक्त व्यक्ति को अनिश्चित समय तक विचारणाधीन नहीं रखा जा सकता है और अभियुक्त को शीघ्र विचारण किए जाने का अधिकार है । विद्वान् काउंसेल ने **अब्दुल रहमान अंतुले और अन्य** बनाम **आर. एस. नायक और एक अन्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया । उक्त निर्णय के पैरा 63 और 64 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

"63. मछेन्द्र सिंह **बनाम** हैदराबाद राज्य [1955] 2 एस. सी. आर. 524 वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि न्यायालय के लिए यह देखना लाजिमी है कि कोई दोषी बच न पाए, तो भी इससे बढ़कर उसका कर्तव्य यह देखना है कि न्याय करने में विलंब न हो और अभियुक्त व्यक्ति अनिश्चित समय तक प्रताड़ित न हों । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि अभियोजन और अभियुक्त के बीच में भी मापदंडों को अभिनिर्धारित किया जाना आवश्यक है । उस मामले के तथ्यों में, न्यायालय ने पहले ही व्यतीत हो चुकी अवधि और मामले की अन्य सुसंगत परिस्थितियों के कारण पुनः विचारण करने का आदेश करने से इनकार कर दिया ।

64. वीरबद्रन चेट्टियार **बनाम** रामास्वामी नायकेर [1959] एस. सी. आर. 1211 वाले मामले में इस न्यायालय ने कार्यवाहियों को वापस भेजने से इस आधार पर इनकार कर दिया कि पहले ही पांच वर्ष की अवधि व्यतीत हो चुकी है और इतना समय व्यतीत हो जाने के पश्चात् मामले की परिस्थितियों में कार्यवाहियों को जारी रखना न्यायसंगत और उचित नहीं होगा । इसी प्रकार, छज्जू राम **बनाम** राधे

---

[1] (1992) 1 एस. सी. सी. 225.

श्याम (1971) 1 एस. सी. सी. 774 वाले मामले में इस न्यायालय ने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए दस वर्ष की अवधि के पश्चात् मामले को पुनः विचारण के लिए निदेश देने से इनकार कर दिया । उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** कपिल देव शुक्ला (1972) 3 एस. सी. सी. 504 वाले मामले में न्यायालय ने यद्यपि अभियुक्त की दोषमुक्ति को असंधार्य पाया, किंतु न्यायालय ने बीस वर्ष बीत जाने के पश्चात् मामले को प्रतिप्रेषित करने का आदेश करने से इनकार कर दिया ।"

32. यद्यपि हमारा यह मत है कि मामला विचारण न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन प्रश्न करने के प्रक्रम से नए सिरे से कार्यवाही करने के लिए प्रतिप्रेषित किया जाना चाहिए, तो भी हम अभियुक्त के शीघ्र विचारण के अधिकार से अनभिज्ञ नहीं हैं और न्यायालयों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अपराध के अभियुक्त को शीघ्र न्याय प्राप्त हो । यद्यपि इस न्यायालय के लिए इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि अपराध के अभियुक्त व्यक्तियों का अवश्य ही ऋजु विचारण हो और शीघ्र न्याय प्राप्त हो, तो भी हमारे मत में, प्रत्येक युक्तियुक्त छूट उनको दी जानी चाहिए जिन्हें न्याय प्रशासन का कार्य सौंपा गया है । प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में न्यायालय को इस बात का विवेचन करना चाहिए कि क्या विचारण न्यायालय को मामला वापस भेजने से यह अभियुक्त को अनिश्चित समय तक प्रताड़ित करने की कोटि में तो नहीं आएगा । जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त की परीक्षा के दौरान उसके समक्ष तात्विक साक्ष्य प्रस्तुत करने में लोप किया जाता है, तो अभियोजन पक्ष ऐसे साक्ष्य को प्रस्तुत करने या छिपाने का दोषी नहीं है, यह असफलता केवल विद्वान् विचारण न्यायालय की है । अपराध का शिकार व्यक्ति या अभियुक्त न्यायालय की असावधानी या लोप के कारण न भुगतने पाए । दांडिक न्याय एक-पक्षीय नहीं है । इसके बहुत सारे आयाम हैं और हमें परस्पर विरोधी अधिकारों और कर्तव्यों के बीच संतुलन बनाए रखना चाहिए ।

33. इस मामले के तथ्यों पर आते हैं । विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय दोनों के द्वारा न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट (प्रदर्श पी-12) का अवलंब लिया गया है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन त्रुटिपूर्ण कथन के बारे में आक्षेप विचारण न्यायालय या उच्च न्यायालय में नहीं किया गया था और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन प्रश्न करने में किए गए लोप और अभियुक्त पर पड़ने वाले प्रतिकूल

प्रभाव को पहली बार इस न्यायालय के समक्ष उठाया गया है । हमारे ध्यान में यह बात लाई गई है कि अपीलार्थी आठ वर्षों से अभिरक्षा में है । यद्यपि शीघ्र विचारण का अभियुक्त अधिकार एक मूल्यवान अधिकार है, तो भी इस न्यायालय को अपराध के शिकार व्यक्ति के परिवार और संपूर्ण समाज के अधिकार को ध्यान में रखते हुए न्याय के हित का पक्षधर होना चाहिए ।

34. हमारे मत में, अभियुक्त दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के आज्ञापक उपबंधों के अननुपालन के आधार पर दोषमुक्ति का हकदार नहीं है । हम कुछ सीमा तक इस बात से सहमत हैं कि अभियुक्त को प्राक्षेपिकी विज्ञानी की राय (प्रदर्श पी-12), जिसका विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा अवलंब लिया गया है, के बारे में प्रश्न पूछने में किए गए लोप के कारण उस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है । विचारण न्यायालय को प्रश्नों को विरचित करने में और यह सुनिश्चित करने में अधिक सावधान रहना चाहिए कि सभी तात्विक साक्ष्य और अपराध में आलिप्त करने वाली परिस्थितियां अभियुक्त के समक्ष प्रस्तुत की जाएं । तथापि, न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त से प्रश्न पूछने में किए गए लोप का फायदा अभियुक्त को नहीं मिल सकता है ।

35. विचारण न्यायालय द्वारा 2005 के सेशन मामला सं. 40 में अपीलार्थी की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 और आयुध अधिनियम की धारा 25(1ख) के अधीन दोषसिद्धि और उस पर अधिरोपित दंडादेश, जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा अभिपुष्टि की गई है, को अपास्त किया जाता है । विचारण न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्त के कथन अभिलिखित करने के प्रक्रम से नए सिरे से मामले में कार्यवाही करने के लिए मामला वापस प्रतिप्रेषित किया जाता है । विचारण न्यायालय उपरोक्त मताभिव्यक्तियों को ध्यान में रखते हुए और विधि के अनुसार नए सिरे से अभियुक्त की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन परीक्षा करेगा । विचारण न्यायाधीश को निदेशित किया जाता है कि अभिलेख के साक्ष्य का क्रमबंधन करे और अभियुक्त से अपराध में आलिप्त करने वाले साक्ष्य और परिस्थिति की बाबत विनिर्दिष्ट और अलग-से प्रश्न पूछे और अभियुक्त को प्रतिरक्षा साक्षियों, यदि कोई हो, की परीक्षा करने का भी अवसर देगा और मामले में आगे कार्यवाही करेगा । चूंकि घटना वर्ष 2005 की है, हम विचारण न्यायालय को निदेश देते हैं कि मामले में तत्परता बरते और अधिमानतः इस निर्णय की प्राप्ति की तारीख से छह माह की अवधि के भीतर विधि के अनुसार मामले का निपटारा करे । चूंकि हम अपीलार्थी-अभियुक्त पर अधिरोपित की गई दोषसिद्धि को अपास्त कर रहे

हैं, इसलिए अपीलार्थी-अभियुक्त जमानत के लिए आवेदन करने के लिए, यदि उसे इस प्रकार परामर्श दिया जाता है, स्वतंत्र है । अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा जमानत के लिए ऐसा आवेदन प्रस्तुत करने पर विचारण न्यायालय उस पर विधि के अनुसार विचार करेगा । हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमने मामले के गुणागुण पर कोई राय व्यक्त नहीं की है ।

36. इस अपील का उपरोक्त अनुसार निपटारा किया जाता है ।

अपील का निपटारा किया गया ।

जस.

[2015] 1 उम. नि. प. 154

एस. दिनेश कुमार

बनाम

निरीक्षक और एक अन्य की मार्फत राज्य

12 दिसम्बर, 2014

न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा, रोहिंटन फाली नरिमन और न्यायमूर्ति उदय उमेश ललित

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) – धारा 7, 13(1)(घ) और 13(2) – विक्रय कर के बकाया के कारण शिकायतकर्ता की मशीनरी को मुहरबंद किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा बकाया कर के 50 प्रतिशत का संदाय करने पर मशीनरी को मुहर-रहित करने का निदेश दिया जाना – अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा शिकायतकर्ता से 1,000/- रुपए के अवैध परितोषण की मांग करना – रंगे हाथों पकड़े जाना – 1,000/- रुपए की रकम कर के बकाया के रूप में दिए जाने के आधार पर विशेष न्यायाधीश द्वारा अभियुक्त को दोषमुक्त किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति के निर्णय को उलटते हुए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया जाना – बकाया कर के 50 प्रतिशत के रूप में केवल 1,000/- रुपए की रकम का संदाय और उसे स्वीकार करने की बात कल्पना से परे है और अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा रिश्वत की मांग करने

और उसे स्वीकार करने की बात पूर्ण रूप से सिद्ध होने पर उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के निर्णय को उलटकर न्यायोचित किया है ।

शिकायतकर्ता पर 30,302/- रुपए के विक्रय कर के बकाया के कारण उसके कारखाने में मशीनरी को मुहरबंद कर दिया गया था । उसने उच्च न्यायालय में रिट याचिका फाइल की जिसमें उच्च न्यायालय ने प्राधिकारियों को निदेश दिया कि उसके अभ्यावेदन पर विचार किया जाए और प्रश्नगत रकम के 50 प्रतिशत का संदाय करने पर कुर्की न की जाए और उसके पक्ष में मशीनरी को निर्मुक्त कर दिया जाए । इस संबंध में वह अपीलार्थी के पास गया जो उस समय वाणिज्यिक कर निरीक्षक (वसूली) के रूप में कार्यरत था और उसने उसे कहा कि मुहर को हटाने के लिए परितोषण के मद्धे 1,000/- रुपए संदत्त करने होंगे । इसके पश्चात् शिकायतकर्ता लोकायुक्त पुलिस के पास गया और अपनी शिकायत दर्ज की । अपेक्षित उपाय करने के पश्चात् जाल बिछाया गया । अपीलार्थी अपने ड्राइवर (अभियुक्त-2) और चपरासी के साथ शिकायतकर्ता के कार्यालय में आया और 1,000/- रुपए की मांग की । अपीलार्थी द्वारा दिए गए निदेशानुसार शिकायतकर्ता ने ड्राइवर (अभियुक्त-2) को रकम दी और उसने रकम अपने पास रख ली । संकेत दिए जाने पर लोकायुक्त पुलिस आई और अपीलार्थी तथा ड्राइवर (अभियुक्त-2) को पकड़ लिया और उसके पास से 1,000/- रुपए की रकम बरामद की गई । अन्वेषण पूर्ण होने के पश्चात् आरोप पत्र फाइल किया गया । विशेष न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त करते हुए अपीलार्थी और ड्राइवर (अभियुक्त-2) को दोषमुक्त कर दिया कि 1,000/- रुपए की रकम रिश्वत के निमित्त नहीं दी गई थी अपितु कर के बकाया के निमित्त दी गई थी और शिकायतकर्ता के पक्ष में मशीनरी निर्मुक्त होने के पश्चात् वास्तव में कोई कार्य लंबित नहीं था । राज्य द्वारा फाइल की गई अपील में यह दलील दी गई कि बकाया कर का 50 प्रतिशत लगभग 15,000/- रुपए बनता था और यह बात कल्पना से परे है कि शिकायतकर्ता कर के बकाया के निमित्त केवल 1,000/- रुपए का संदाय करता । उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्य का विश्लेषण करने के पश्चात् यह पाया कि अपीलार्थी द्वारा जाल में फंसने के तुरंत पश्चात् दिए गए स्पष्टीकरण से ऐसा कोई सुझाव नहीं मिलता है कि प्रश्नगत रकम कर के बकाया के निमित्त प्राप्त की गई थी । दूसरी ओर, जो स्पष्टीकरण दिया गया वह यह था कि शिकायतकर्ता ने रकम जबरदस्ती डाल दी थी । मामले पर समग्र रूप से विचार करने के पश्चात् उच्च न्यायालय ने

पाया कि विशेष न्यायाधीश द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण अनुचित है और दोषमुक्ति के परिणामस्वरूप न्याय की हानि हुई है । इसलिए उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अधीन दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया । तथापि, ड्राइवर (अभियुक्त-2) को दोषमुक्त कर दिया गया । अपीलार्थी-वाणिज्यिक कर निरीक्षक ने इससे व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विद्वान् काउंसेलों को सुनने के पश्चात् और अभिलेख पर की संपूर्ण सामग्री का परिशीलन करने पर यह न्यायालय उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण की अभिपुष्टि करता है । इस न्यायालय को इस तथ्य का भान है कि दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में यदि दो मत संभव हों और निचले न्यायालय ने अभियुक्त को दोषमुक्त किया है, तो अपील न्यायालय के लिए दोषमुक्ति को केवल इस कारण अपास्त करना न्यायोचित नहीं होगा कि अन्य मत भी संभव हैं । वर्तमान मामले में, अभियुक्त के पास से या उसके कब्जे से रिश्वत की रकम की बरामदगी दृढ़तापूर्वक सिद्ध होने पर अपीलार्थी द्वारा तुरंत पश्चात् दिया गया स्पष्टीकरण पूर्ण रूप से निर्णायक है । द्वितीयतः, यह बात कल्पना से परे है कि कर के बकाया के 50 प्रतिशत के विरुद्ध, जो शिकायतकर्ता को जमा करना था, केवल 1,000/- रुपए संदत्त किए जाते और स्वीकार किए जाते । मांग और स्वीकृति के पहलू सिद्ध होने पर, इस न्यायालय के अवधारण के अनुसार, इस मामले में दो मत संभव नहीं हैं और विशेष न्यायाधीश द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण अनुचित है और उच्च न्यायालय द्वारा किया गया हस्तक्षेप न्यायोचित है । (पैरा 7)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2012 की दांडिक अपील सं. 162.

2005 की दांडिक अपील सं. 1057 में बैंगलोर स्थित कर्नाटक उच्च न्यायालय के तारीख 27 जुलाई, 2011 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री पी. विश्वनाथ शेट्टी, ज्येष्ठ अधिवक्ता और उनके साथ शैलेश मढियाल
प्रत्यर्थियों की ओर से	श्रीमती विजयंती गिरिश, सर्वश्री वी. एन. रघुपति और परिक्षित पी. अंगाड़ी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति उदय उमेश ललित ने दिया ।

न्या. ललित – यह अपील 2005 की दांडिक अपील सं. 1057 में बैंगलोर स्थित कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा 1995 के विशेष मामला सं. 95 में विशेष न्यायाधीश, मैसूर द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के निर्णय को अपास्त करते हुए और इस अपील में अपीलार्थी को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (संक्षेप में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम) की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7 और 13(1)(घ) के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध करते हुए तारीख 27 जुलाई, 2011 को पारित किए गए निर्णय और आदेश से उद्‌भूत हुई है ।

2. अभियोजन पक्ष के अनुसार, शिकायतकर्ता जयरामू मुरुगन फर्नीचर एंड वुडवर्क्स का स्वत्वधारी था और 30,302/- रुपए के विक्रय कर के बकाया के कारण उसके कारखाने में मशीनरी को मुहरबंद कर दिया गया । इसलिए उसने रिट याचिका फाइल की थी जिसमें उच्च न्यायालय ने प्राधिकारियों को निदेश दिया कि उसके अभ्यावेदन पर विचार किया जाए और प्रश्नगत रकम के 50 प्रतिशत का संदाय करने पर कुर्की न की जाए और उसके पक्ष में मशीनरी को निर्मुक्त कर दिया जाए । इस संबंध में वह अपीलार्थी के पास गया जो उस समय वाणिज्यिक कर निरीक्षक (वसूली) के रूप में कार्यरत था और उसने उसे कहा कि मुहर को हटाने के लिए अपीलार्थी को परितोषण के मद्धे 1,000/- रुपए संदत्त करने होंगे । इसके पश्चात् शिकायतकर्ता तारीख 9 जुलाई, 1993 को लोकायुक्त पुलिस के पास गया और अपनी शिकायत, प्रदर्श पी-1 दर्ज की । अपेक्षित उपाय करने के पश्चात् जाल बिछाया गया ।

3. तारीख 9 जुलाई, 1993 को अपीलार्थी अपने ड्राइवर (अभियुक्त-2) और चपरासी के साथ शिकायतकर्ता के कार्यालय में आया और 1,000/- रुपए की मांग की । अपीलार्थी द्वारा दिए गए निदेशानुसार शिकायतकर्ता ने ड्राइवर (अभियुक्त-2) को रकम दी और उसने रकम अपने पास रख ली । संकेत दिए जाने पर लोकायुक्त पुलिस आई और अपीलार्थी तथा ड्राइवर (अभियुक्त-2) को पकड़ लिया और उसके पास से 1,000/- रुपए की रकम बरामद की गई । अन्वेषण पूर्ण होने और प्रदर्श पी-2 द्वारा मंजूरी मिलने के पश्चात् आरोप पत्र फाइल किया गया ।

4. विशेष न्यायाधीश ने अपीलार्थी और ड्राइवर (अभियुक्त-2) को मुख्यतः दो आधारों पर दोषमुक्त कर दिया । यह मत व्यक्त किया गया कि 1,000/- रुपए की रकम रिश्वत के निमित्त नहीं दी गई थी अपितु कर के बकाया के निमित्त दी गई थी और शिकायतकर्ता के पक्ष में मशीनरी

निर्मुक्त होने के पश्चात् वास्तव में कोई कार्य लंबित नहीं था । राज्य द्वारा फाइल की गई अपील में यह दलील दी गई कि बकाया कर का 50 प्रतिशत लगभग 15,000/- रुपए बनता है और यह बात कल्पना से परे है कि शिकायतकर्ता कर के बकाया के निमित्त केवल 1,000/- रुपए का संदाय करता । यह भी दलील दी गई कि अभिलेख पर तथ्यों से यह दर्शित होता है कि शिकायतकर्ता, अभि. सा. 1 और छाया साक्षी उमेश, अभि. सा. 3 ने दृढ़तापूर्वक अपीलार्थी के बारे में यह अभिसाक्ष्य दिया कि वह रिश्वत के रूप में 1,000/- रुपए की मांग कर रहा था और उसके निदेशानुसार अभियुक्त सं. 2 को यह रकम संदत्त की गई थी ।

5. उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्य का विश्लेषण करने के पश्चात् यह पाया कि अपीलार्थी द्वारा जाल में फंसने के तुरंत पश्चात् दिए गए स्पष्टीकरण (प्रदर्श पी-9) से ऐसा कोई सुझाव नहीं मिलता है कि प्रश्नगत रकम कर के बकाया के निमित्त प्राप्त की गई थी । दूसरी ओर, जो स्पष्टीकरण दिया गया वह यह था कि शिकायतकर्ता द्वारा रकम जबरदस्ती डाल दी गई थी । मामले पर समग्र रूप से विचार करने के पश्चात् उच्च न्यायालय ने पाया कि विशेष न्यायाधीश द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण अनुचित है और दोषमुक्ति के परिणामस्वरूप न्याय की हानि हुई है । इसलिए उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी को (क) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 के अधीन दोषसिद्ध किया और छह मास का साधारण कारावास भोगने और 5,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर एक मास का और साधारण कारावास भोगने का दंडादेश दिया, (ख) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 13(1)(घ) के अधीन दोषसिद्ध करते हुए एक वर्ष का कारावास भोगने और 15,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने तथा जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर तीन मास का और साधारण कारावास भोगने का दंडादेश दिया । अभियुक्त सं. 2 की दोषमुक्ति की अभिपुष्टि की गई ।

6. इस अपील में अपील के लिए विशेष इजाजत मंजूर करने के पश्चात् अपीलार्थी को जमानत पर छोड़े जाने का निदेश दिया गया । अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले ज्येष्ठ विद्वान् काउंसेल श्री पी. विश्वनाथ शेट्टी ने यह दलील दी कि उसने कर की वसूली के संबंध में शिकायतकर्ता के परिसर का दौरा किया था और यह बात इस तथ्य से स्पष्ट है कि रसीद बही यान में पड़ी हुई थी । इसके अतिरिक्त, मशीनरी

को मुहर-रहित के पश्चात् शिकायतकर्ता के लिए वास्तव में रिश्वत की रकम देने का कोई अवसर नहीं था । राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् अधिवक्ता श्री वी. एन. रघुपति ने यह दलील दी कि यद्यपि मशीनरी की मुहर हटा ली गई थी, तो भी ताला अभी भी हटाया जाना था और उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण पूर्ण रूप से सही था ।

7. विद्वान् काउंसेलों को सुनने के पश्चात् और अभिलेख पर की संपूर्ण सामग्री का परिशीलन करने पर हम उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण की अभिपुष्टि करते हैं । हमें इस तथ्य का भान है कि दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में यदि दो मत संभव हों और निचले न्यायालय ने अभियुक्त को दोषमुक्त किया है, तो अपील न्यायालय के लिए दोषमुक्ति को केवल इस कारण अपास्त करना न्यायोचित नहीं होगा कि अन्य मत भी संभव हैं । वर्तमान मामले में, अभियुक्त के पास से या उसके कब्जे से रिश्वत की रकम की बरामदगी दृढ़तापूर्वक सिद्ध होने पर अपीलार्थी द्वारा तुरंत पश्चात् दिया गया स्पष्टीकरण (अर्थात् प्रदर्श पी-9) पूर्ण रूप से निर्णायक है । द्वितीयतः, यह बात कल्पना से परे है कि कर के बकाया के 50 प्रतिशत के विरुद्ध, जो शिकायतकर्ता को जमा करना था, केवल 1,000/- रुपए संदत्त किए जाते और स्वीकार किए जाते । मांग और स्वीकृति के पहलू सिद्ध होने पर, हमारे अवधारण के अनुसार, इस मामले में दो मत संभव नहीं हैं और विशेष न्यायाधीश द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण अनुचित है और उच्च न्यायालय द्वारा किया गया हस्तक्षेप न्यायोचित है ।

8. इसलिए हम इस अपील को खारिज करते हैं । जमानत बंधपत्र रद्द किए जाते हैं और अपीलार्थी को शेष दंडादेश भोगने के लिए आज से तीन सप्ताह के भीतर अभ्यर्पण करने का निदेश दिया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

जस.

फरवरी-मार्च, 2015 [संयुक्तांक]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

महत्वपूर्ण निर्णय

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 – हत्या – अभियुक्तों का बड़ी संख्या में होना और उनका प्रभावशाली होना – दोनों पक्षों का सह-ग्रामवासी होना – अभियुक्तों के प्रभावशाली होने पर कुछ साक्षियों का अभियोजन पक्षकथन का समर्थन न करना स्वाभाविक है, ऐसी स्थिति में शेष प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के अभिसाक्ष्य का महत्व कम नहीं हो सकता और प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य की संपुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य से होने पर अभियुक्तों की दोषसिद्धि कायम रखी जा सकती है ।

इन्दर सिंह और अन्य बनाम **राजस्थान राज्य और आदि** 223

संसद् के अधिनियम

लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (14) क्रमशः

पृष्ठ संख्या 161 – 316 **[2015] 1 उम. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

डा. संजय सिंह,
सचिव, विधायी विभाग

श्री के. बिस्वाल, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार,
विधि मंत्रालय

प्रो. डा. वैभव गोयल,
सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ
विधि विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, वि.सा.प्र.

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री, महमूद अली ख़ान
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
संपादक

श्री विनोद कुमार आर्य,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री कमला कान्त, अविनाश शुक्ला, असलम खान, और राकेश उपाध्याय

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 38

वार्षिक : ₹ 225

© 2015 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटोरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – फरवरी-मार्च, 2015 [संयुक्तांक] [पृष्ठ संख्या 161 – 316]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

फरवरी-मार्च, 2015

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अहमद शाह और एक अन्य **बनाम** राजस्थान राज्य	241
इन्दर सिंह और अन्य **बनाम** राजस्थान राज्य और आदि	223
कुलदीप कौर **बनाम** उत्तराखंड राज्य	187
के. सर्वानन करुप्पासामी और एक अन्य **बनाम** तमिलनाडु राज्य और अन्य	161
मणिक तनेजा और एक अन्य **बनाम** कर्नाटक राज्य और एक अन्य	306
राजस्थान राज्य **बनाम** इकबाल और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 241)	
राजस्थान राज्य **बनाम** मोहम्मद मुस्लिम तगला	179
राजस्थान राज्य **बनाम** रसूल शाह और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 241)	
राजस्थान राज्य **बनाम** श्रीमती हलीमा और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 241)	
राजिन्द्र कुमार **बनाम** हरियाणा राज्य	294
विजय पाल सिंह और अन्य **बनाम** उत्तराखंड राज्य	195
सहायक आयुक्त, एर्नाकुलम **बनाम** हिन्दुस्तान अर्बन इंफ्रास्ट्रक्चर लि. और अन्य	258

संसद् के अधिनियम

लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	(1) – (14)

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

केरल साधारण विक्रय कर अधिनियम, 1963 (केरल जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1963)

– धारा 2(viii) [सपठित कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 448ए, 456ए, 457 और 643] – न्यायालय द्वारा नियुक्त शासकीय समापक द्वारा समापनाधीन कंपनी की आस्तियों का नीलाम विक्रय – विक्रय कर का संदाय करने का दायित्व – क्या शासकीय समापक अधिनियम, 1963 के अधीन एक व्यौहारी है – अधिनियम में दी गई व्यौहारी की विस्तृत परिभाषा और विधान-मंडल के आशय के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कोई व्यक्ति या सत्ता जो माल के विक्रय संबंधी कोई कार्यकलाप करता है उसे व्यौहारी के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है, अतः समापनाधीन कंपनी जिसकी आस्तियां नीलामी द्वारा विक्रय की जाती हैं वह व्यौहारी होगी ।

सहायक आयुक्त, एर्नाकुलम बनाम **हिन्दुस्तान अर्बन इंफ्रास्ट्रक्चर लि. और अन्य** 258

– धारा 5 [सपठित केरल साधारण विक्रय कर नियम, 1963 का नियम 54] – न्यायालय द्वारा नियुक्त शासकीय समापक द्वारा समापनाधीन कंपनी की आस्तियों का नीलाम विक्रय – विक्रय कर का संदाय करने का दायित्व – चूंकि शासकीय समापक समापनाधीन कंपनी के निदेशक के स्थान पर न्यायालय के निदेशानुसार अपने कानूनी कृत्यों का निर्वहन करता है और वह नियम 54 के अनुसार समापनाधीन कंपनी की आस्तियों के रिसीवर या प्रबंधक के रूप में होता है, इसलिए वह किसी अन्य व्यौहारी की भांति विक्रय के प्रथम

पृष्ठ संख्या

स्थल पर विक्रय कर का संदाय करने के लिए दायी है ।

सहायक आयुक्त, एर्नाकुलम बनाम **हिन्दुस्तान अर्बन इंफ्रास्ट्रक्चर लि. और अन्य** 258

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 482 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 353 और 503] – उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति – पुलिस निरीक्षक द्वारा अपीलार्थियों के साथ किए गए बर्ताव के संबंध में उनके द्वारा यातायात पुलिस द्वारा फेसबुक पर सृजित पृष्ठ पर टीका-टिप्पणी किया जाना – पुलिस द्वारा दांडिक कार्यवाहियां आरंभ करने के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज किया जाना – अपीलार्थियों द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अभिखंडित किए जाने के लिए उच्च न्यायालय में दांडिक याचिका – उच्च न्यायालय द्वारा दांडिक याचिका खारिज किया जाना – किसी अभियोजन को आरंभिक प्रक्रम पर अभिखंडित किए जाने की ईप्सा किए जाने पर न्यायालय द्वारा लागू की जाने वाली कसौटी यह है कि क्या अविवादग्रस्त अभिकथनों के आधार पर प्रथमदृष्ट्या अपराध स्थापित होता है या नहीं और अभियोजन जारी रखा जाना समीचीन और न्याय के हित में है या नहीं और यदि न्यायालय की यह राय हो कि अंततोगत्वा दोषसिद्धि की गुंजाइश कम है और दांडिक अभियोजन जारी रखने से किसी उपयोगी प्रयोजन की पूर्ति होने की संभावना नहीं है, तो न्यायालय कार्यवाहियों को अभिखंडित कर सकता है, भले ही ऐसी कार्यवाहियां आरंभिक प्रक्रम पर ही हों ।

मणिक तनेजा और एक अन्य बनाम **कर्नाटक राज्य और एक अन्य** 306

पृष्ठ संख्या

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302 – हत्या – अभियुक्तों का बड़ी संख्या में होना और उनका प्रभावशाली होना – दोनों पक्षों का सह-ग्रामवासी होना – अभियुक्तों के प्रभावशाली होने पर कुछ साक्षियों का अभियोजन पक्षकथन का समर्थन न करना स्वाभाविक है, ऐसी स्थिति में शेष प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के अभिसाक्ष्य का महत्व कम नहीं हो सकता और प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य की संपुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य से होने पर अभियुक्तों की दोषसिद्धि कायम रखी जा सकती है ।

इन्दर सिंह और अन्य बनाम **राजस्थान राज्य और आदि** 223

– धारा 302 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – हत्या – अन्य साक्षी द्वारा साक्ष्य की संपुष्टि न किया जाना – पांच अभियुक्तों को इत्तिलाकर्ता द्वारा नामित किया गया किन्तु अन्य किसी भी साक्षी द्वारा उसके साक्ष्य का समर्थन न किए जाने पर इन सभी अभियुक्तों को संदेह का लाभ दिया जाएगा, अतः उनकी दोषसिद्धि न्यायोचित नहीं होगी ।

इन्दर सिंह और अन्य बनाम **राजस्थान राज्य और और आदि** 223

– धारा 302 और 300 का अपवाद 4 – हत्या और हत्या की कोटि में न आने वाला मानव वध – अचानक झगड़ा होने पर अपीलार्थियों और शिकायतकर्ता पक्ष के बीच लड़ाई – पूर्व-चिंतन का अभाव – बंदूक छीनने और हाथापाई के दौरान क्षतियां कारित होना और दो व्यक्तियों की मृत्यु हो जाना – अपीलार्थियों ने पूर्व-चिंतन के बिना अचानक लड़ाई में असम्यक् लाभ लिए बिना मृत्यु कारित की है, ऐसी स्थिति में अपराधी धारा 302 के अधीन नहीं अपितु धारा

पृष्ठ संख्या

300 के अपवाद 4 के अधीन अपराध के दोषी होंगे

अहमद शाह और एक अन्य बनाम **राजस्थान राज्य** 241

– धारा 302 और 304ख [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख] – स्त्री की उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर दहेज मृत्यु – चिकित्सा साक्ष्य के अनुसार मृत्यु गला घोंटने के कारण श्वासावरोध होने के परिणामस्वरूप होना – यदि दहेज मृत्यु के किसी मामले में मानव वध होने का प्रत्यक्ष या पारिस्थितिक साक्ष्य है, तो अभियोजन पक्ष और न्यायालय आपराधिक मानव वध के प्रश्न पर आंख नहीं मूंद सकता है और अपराधी को दंडित करने से प्रविरत नहीं रह सकता है चूंकि धारा 304ख और धारा 302 का अनुकल्प नहीं है ।

विजय पाल सिंह और अन्य बनाम **उत्तराखंड राज्य** 195

– 304ख [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख] – दहेज मृत्यु – मृतका से दहेज की मांग न करने का अभिवाक् – दहेज की कोई मांग जिससे कि यह धारा 304ख और धारा 498क की परिधि के अधीन आ सके, केवल विवाहित स्त्री से किया जाना आवश्यक नहीं है और ऐसी मांग विवाहित स्त्री के पिता, माता, भाई आदि से भी की जा सकती है तथा उनसे की गई कोई मांग विवाहित स्त्री से की गई किसी मांग जितनी ही महत्वपूर्ण है ।

विजय पाल सिंह और अन्य बनाम **उत्तराखंड राज्य** 195

– धारा 304ख [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – दहेज मृत्यु – नातेदार साक्षी का

पृष्ठ संख्या

साक्ष्य – मृतका-महिला के परिवार के सदस्यों के कथन को तब तक इस आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता कि वे नातेदार हैं या हितबद्ध साक्षी हैं जब तक कि उनके अभिसाक्ष्यों या प्रतिपरीक्षा में कोई विरोधाभास होने की बात दर्शित न की जाए ।

राजिन्द्र कुमार बनाम **हरियाणा राज्य** 294

– धारा 304ख [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख] – दहेज मृत्यु – उपधारणा – अभियुक्त द्वारा दहेज की मांग के संबंध में मृतका को तंग किए जाने के बारे में साक्षियों के विनिर्दिष्ट कथन होने, अभिलेख पर के साक्ष्य से यह स्पष्ट होना कि मृतका के साथ क्रूरता उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व की गई थी और अभियोजन पक्ष द्वारा धारा 304ख के संघटकों को साबित करने में सफल रहने पर विचारण न्यायालय द्वारा विपदग्रस्त की दहेज मृत्यु कारित किए जाने की उपधारणा करते हुए अभियुक्त को ठीक ही दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया तथा उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखकर ठीक किया ।

राजिन्द्र कुमार बनाम **हरियाणा राज्य** 294

– धारा 304ख और 498क [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख] – दहेज मृत्यु – स्त्री के साथ क्रूरता और तंग करना – क्रूरता या तंग करने की बात को सदैव शारीरिक हिंसा के रूप में दर्शित किया जाना आवश्यक नहीं है और ये तथ्य कि विवाहित स्त्री अपनी ससुराल गई थी और ससुराल वालों ने उसे वापस लाने के लिए पूर्व-शर्त के रूप में दहेज की मांग की थी और विवाद्यक को सुलझाने के लिए एक पंचायत भी बुलाई गई थी, शारीरिक न सही किंतु मानसिक क्रूरता करने और तंग करने के पर्याप्त सूचक

पृष्ठ संख्या

हैं तथा धारा 304ख और 498क के सभी संघटक सिद्ध होने पर दोषसिद्धि उचित है ।

विजय पाल सिंह और अन्य बनाम **उत्तराखंड राज्य** 195

– धारा 304ख और 498क [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख] – दहेज मृत्यु – उपधारणा – मृतका के पति के छोटे भाई और जीजा को अपराध में अंतर्ग्रस्त किया जाना – मृतका के पिता के सिवाय प्रमुख साक्षियों द्वारा उनकी शनाख्त करने में असमर्थ रहना – यद्यपि धारा 304ख के अधीन उपधारणा उन सभी नातेदारों के विरुद्ध की जानी चाहिए जिन्होंने मृतका को दहेज की मांग के संबंध में तंग किया हो, तो भी ऐसा साक्ष्य होना आवश्यक है जिसका पति या प्रत्येक नातेदार को इस बाबत संयोजित करने के लिए खंडन नहीं किया गया हो, इसलिए दोनों अभियुक्तों को दोषसिद्ध करना सुरक्षित नहीं होगा ।

विजय पाल सिंह और अन्य बनाम **उत्तराखंड राज्य** 195

– धारा 306 – आत्महत्या का दुष्प्रेरण – डायरी के अस्पष्ट लेख के अतिरिक्त कोई अन्य साक्ष्य न होना – मृतका के पिता द्वारा दहेज की मांग और क्रूरता का तथ्य स्वीकार न किया जाना – मृतका का स्वयमेव अवसादग्रस्त रहना – मृतका के पिता ने यह साक्ष्य दिया कि मृतका के ससुराल वालों द्वारा दहेज की मांग किए जाने के कारण खिन्न रहती थी तथा पिता ने यह स्वीकार नहीं किया कि अभियुक्तों ने उसकी पुत्री को आत्महत्या करने के लिए दुष्प्रेरित किया था या उसे तंग किया था, ऐसी स्थिति में अपीलार्थी की दोषसिद्धि न्यायोचित नहीं होगी ।

कुलदीप कौर बनाम **उत्तराखंड राज्य** 187

पृष्ठ संख्या

– धारा 353 और 503 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482] – पुलिस निरीक्षक द्वारा अपीलार्थियों के साथ किए गए बर्ताव के संबंध में उनके द्वारा यातायात पुलिस द्वारा फेसबुक पर सृजित पृष्ठ पर टीका-टिप्पणी किया जाना – पुलिस द्वारा दांडिक कार्यवाहियां आंरभ करने के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज किया जाना – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अभिखंडित किए जाने के लिए उच्च न्यायालय में दांडिक याचिका – उच्च न्यायालय द्वारा दांडिक याचिका खारिज किया जाना – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अविवादग्रस्त अभिकथनों पर विचार करने के पश्चात् अभिकथित अपराधों के संघटक पूरे नहीं होते हैं और अपीलार्थियों के विरुद्ध दांडिक कार्यवाहियां जारी रखना न्यायसंगत नहीं होगा, इसलिए उच्च न्यायालय का आदेश अपास्त किए जाने योग्य है ।

मणिक तनेजा और एक अन्य बनाम **कर्नाटक राज्य और एक अन्य** 306

– धारा 363, 366क और 376 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 433] – अपहरण और बलात्संग – दोषसिद्धि किए जाने पर दंडादेश लघूकरण – उच्च न्यायालय और समुचित सरकार की शक्ति – न्यायालय समुचित सरकार को दंडादेश का लघूकरण करने का नहीं अपितु लघूकरण किए जाने के मामले पर विचार करने का निदेश दे सकता है, अतः उच्च न्यायालय द्वारा सरकार के दंड का लघूकरण करने का निदेश दिया जाना विधिविरुद्ध होगा ।

राजस्थान राज्य बनाम **मोहम्मद मुस्लिम तगला** 179

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 32 – परमादेश रिट – पुलिस और राज्य

पृष्ठ संख्या

द्वारा लापरवाही बरती जाना – आपराधिक मामलों का अन्वेषण सी. बी. आई./एस. आई. टी. द्वारा कराए जाने की मांग – अभियुक्तों के विरुद्ध आपराधिक मामले दर्ज किए जाने, आरोप पत्र फाइल किए जाने और पुलिस कार्मिकों के विरुद्ध विभागीय कार्रवाई संस्थित किए जाने तथा उन्हें दंडित किए जाने के पश्चात्, मामलों का अन्वेषण सी. बी. आई./एस. आई. टी. को सौंपना उचित नहीं होगा किन्तु विचारण न्यायालय को यह निदेश देना पर्याप्त होगा कि विचारण समीचीनता के साथ किया जाए ।

के. सर्वानन करुप्पासामी और एक अन्य बनाम **तमिलनाडु राज्य और अन्य** 161

– अनुच्छेद 32 [सपठित मानवाधिकार संरक्षा अधिनियम, 1993 की धारा 21(2)(क)] – राज्य मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष का पद न भरा जाना – आयोग द्वारा याचियों के मामले की सुनवाई न किया जाना – मानवाधिकार संरक्षा अधिनियम के अधीन मानव अधिकारों के किसी भी अतिक्रमण को रोकने के लिए उपचार दिए गए हैं, साथ ही राष्ट्रीय/राज्य मानवाधिकार आयोग को न केवल मानव अधिकारों का अतिक्रमण किए जाने या उसका दुष्प्रेरण किए जाने अपितु ऐसे अतिक्रमण रोकने में किसी लोक सेवक द्वारा लापरवाही किए जाने पर भी स्वप्रेरणा से यह रिट याचिका फाइल किए जाने पर जांच करने की शक्ति प्रदान की गई है, अतः आयोग के अध्यक्ष का पद अधिक समय तक रिक्त नहीं रखा जा सकता ।

के. सर्वानन करुप्पासामी और एक अन्य बनाम **तमिलनाडु राज्य और अन्य** 161

– अनुच्छेद 32 – याचियों के विरुद्ध फाइल किए गए आपराधिक मामलों के अभिखंडित किए जाने की मांग – याचियों द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष पहले ही

पृष्ठ संख्या

अभिखंडन याचिका फाइल किया जाना – याचियों द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन आपराधिक मामलों को अभिखंडित करने के लिए फाइल की गई रिट याचिकाएं लंबित रहने तथा रोक आदेश प्राप्त हो जाने की स्थिति में उच्चतम न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जाना उचित नहीं होगा ।

के. सर्वानन करुप्पासामी और एक अन्य बनाम **तमिलनाडु राज्य और अन्य** 161

तुलनात्मक सारणी

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2015] 1 उम. नि. प.

जनवरी-मार्च, 2015

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.		ए. आई. आर. (एस. सी.)		एस. सी. सी.	
1	2	3		4		5	
1.	सांगिली **बनाम** तमिलनाडु राज्य (10 सितंबर, 2014)	[2015] 1	1	2014	3756	(2014)10	264
2.	राजेन्द्र कुमार अग्रवाल **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (23 सितम्बर, 2014)		12		–	(2015) 1	642
3.	मोफिल खां और अन्य **बनाम** झारखंड राज्य (9 अक्तूबर, 2014)		40		–	1	67
4.	आनंद पुजारी **बनाम** कर्नाटक राज्य (14 अक्तूबर, 2014)		72		–	1	235
5.	ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन आफ इंडिया लिमिटेड (मैसर्स) **बनाम** गणेश प्लोएटैक्स लिमिटेड (मैसर्स) (5 नवम्बर, 2014)		95	2015	826	3	571

1	2	3		4		5	
6.	नर सिंह **बनाम** हरियाणा राज्य (11 नवम्बर, 2014)	[2015] 1	126	2015	310	(2015) 1	496
7.	एस. दिनेश कुमार **बनाम** निरीक्षक और एक अन्य की मार्फत राज्य (12 दिसम्बर, 2014)		154		–	2	359
8.	के. सर्वानन करुप्पासामी और एक अन्य **बनाम** तमिलनाडु राज्य और अन्य (16 सितम्बर, 2014)		161		214	(2014) 10	406
9.	राजस्थान राज्य **बनाम** मोहम्मद मुस्लिम तगला (13 अक्तूबर, 2014)		179		–	10	658
10.	कुलदीप कौर **बनाम** उत्तराखंड राज्य (17 अक्तूबर, 2014)		187		–	10	584
11.	विजय पाल सिंह और अन्य **बनाम** उत्तराखंड राज्य (16 दिसम्बर, 2014)		195		684	–	–
12.	इन्दर सिंह और अन्य **बनाम** राजस्थान राज्य और आदि (6 जनवरी, 2015)		223		–	(2015) 2	734
13.	अहमद शाह और एक अन्य **बनाम** राजस्थान राज्य (9 जनवरी, 2015)		241		–	3	93

1	2	3		4		5	
14.	सहायक आयुक्त, एर्नाकुलम **बनाम** हिन्दुस्तान अर्बन इंफ्रास्ट्रक्चर लि. और अन्य (13 जनवरी, 2015)	[2015] 1	258	2015	-	(2015) 3	745
15.	राजिन्द्र कुमार **बनाम** हरियाणा राज्य (14 जनवरी, 2015)		294		-	4	215
16.	मणिक तनेजा और एक अन्य **बनाम** कर्नाटक राज्य और एक अन्य (20 जनवरी, 2015)		306		-	-	-

(xi) (xii) (xiii)

[2015] 1 उम. नि. प. 161

के. सर्वानन करुप्पासामी और एक अन्य

बनाम

तमिलनाडु राज्य और अन्य

16 सितंबर, 2014

न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर और न्यायमूर्ति (श्रीमती) आर. बानुमति

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32 – परमादेश रिट – पुलिस और राज्य द्वारा लापरवाही बरती जाना – आपराधिक मामलों का अन्वेषण सी. बी. आई./एस. आई. टी. द्वारा कराए जाने की मांग – अभियुक्तों के विरुद्ध आपराधिक मामले दर्ज किए जाने, आरोप पत्र फाइल किए जाने और पुलिस कार्मिकों के विरुद्ध विभागीय कार्रवाई संस्थित किए जाने तथा उन्हें दंडित किए जाने के पश्चात्, मामलों का अन्वेषण सी. बी. आई./एस. आई. टी. को सौंपना उचित नहीं होगा किन्तु विचारण न्यायालय को यह निदेश देना पर्याप्त होगा कि विचारण समीचीनता के साथ किया जाए ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32 [सपठित मानवाधिकार संरक्षा अधिनियम, 1993 की धारा 21(2) (क)] – राज्य मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष का पद न भरा जाना – आयोग द्वारा याचियों के मामले की सुनवाई न किया जाना – मानवाधिकार संरक्षा अधिनियम के अधीन मानव अधिकारों के किसी भी अतिक्रमण को रोकने के लिए उपचार दिए गए हैं, साथ ही राष्ट्रीय/राज्य मानवाधिकार आयोग को न केवल मानव अधिकारों का अतिक्रमण किए जाने या उसका दुष्प्रेरण किए जाने अपितु ऐसे अतिक्रमण रोकने में किसी लोक सेवक द्वारा लापरवाही किए जाने पर भी स्वप्रेरणा से यह रिट याचिका फाइल किए जाने पर जांच करने की शक्ति प्रदान की गई है, अतः आयोग के अध्यक्ष का पद अधिक समय तक रिक्त नहीं रखा जा सकता ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32 – याचियों के विरुद्ध फाइल किए गए आपराधिक मामलों के अभिखंडित किए जाने की मांग – याचियों द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष पहले ही अभिखंडन याचिका फाइल किया जाना – याचियों द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन आपराधिक मामलों को अभिखंडित करने के लिए फाइल की गई रिट याचिकाएं लंबित रहने तथा रोक आदेश प्राप्त हो जाने की स्थिति में उच्चतम न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जाना उचित नहीं होगा ।

इस मामले में डा. अम्बेडकर गवर्नमेंट ला कालेज के दलित और तेवर समुदायों के छात्रों के बीच कालेज परिसर में पोस्टर और चौपन्ने जिन पर "डा. अम्बेडकर गवर्नमेंट ला कालेज" के स्थान पर "गवर्नमेंट ला कालेज" छपा हुआ था, चिपकाए जाने पर झगड़ा हो गया । इस झगड़े को पुलिस मूकदर्शक के रूप में देखती रही और उसे रोकने की कोई भी कार्यवाही नहीं की । याचियों ने पुलिस की इस लापरवाही के विरुद्ध राज्य मानवाधिकार आयोग के समक्ष शिकायत फाइल की किन्तु उस पर कोई भी सुनवाई न किए जाने पर याचियों ने इस मामले की शिकायत राष्ट्रीय मानव आयोग के समक्ष की । याचियों द्वारा ऐसा किए जाने पर पुलिस ने, अभिकथित रूप से, याचियों के विरुद्ध मिथ्या मामले रजिस्ट्रीकृत कर लिए और उन्हें तंग करना आरंभ कर दिया । याचियों ने अपने विरुद्ध संस्थित मामलों को अभिखंडित करने के लिए मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन रिट याचिका फाइल की जो लंबित है । इसके पश्चात् अभिकथित रूप से पुलिस की निरंतर बढ़ती अनुचित कार्रवाई से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष परमादेश रिट याचिका फाइल की । जिसमें ला कालेज की घटना के मामले का अन्वेषण सी. बी. आई./एस. आई. टी. को सौंपे जाने, राज्य मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष का पद भरे जाने और उनके विरुद्ध दर्ज किए गए आपराधिक मामलों को अभिखंडित कराने की मांग की । उच्चतम न्यायालय ने याचियों की तीनों प्रार्थनाओं पर विचार करते हुए याचिका का निपटारा किया । रिट याचिका का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – विधिक शिक्षा का सीधा संबंध विधि व्यवसाय की मर्यादा के साथ है । यह चिंता का विषय है कि ला कालेज, चेन्नई के परिसर में एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटित हुई है जिससे बहुत से जाने-माने वकीलों और

विधि से संबंधित विद्वानों ने शिक्षा प्राप्त की है । न्यायालय यह महसूस करता है कि इस मामले पर पुलिस और राज्य द्वारा कड़ी सावधानी और सतर्कता के साथ विचार किया जाना चाहिए था । यद्यपि मामले में इस प्रकार कार्रवाई नहीं की गई है जिस प्रकार की जानी चाहिए थी, फिर भी हमारा यह मत है कि ऐसे समय पर इस मामले को सी. बी. आई. या एस. आई. टी. को अन्वेषण के लिए सुपुर्द करना आवश्यक नहीं है । इसका कारण यह है कि आपराधिक मामले रजिस्ट्रीकृत कर दिए गए हैं और आरोप पत्र भी फाइल कर दिए गए हैं तथा पुलिस कार्मिकों के विरुद्ध विभागीय कार्रवाई भी संस्थित कर दी गई है और उन पुलिस कार्मिकों पर दंड भी, भले ही नाममात्र हो, अधिरोपित कर दिया गया है । चूंकि तीनों मामलों में सातवें मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, जॉर्ज टाउन, चेन्नई के समक्ष आरोप पत्र पहले ही फाइल कर दिए गए हैं इसलिए हमारे मतानुसार सातवें मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, जॉर्ज टाउन, चेन्नई को यह निदेश देना पर्याप्त होगा कि वे इस मामले में समीचीनता के साथ कार्यवाही करें । (पैरा 16)

मानव अधिकार संरक्षा अधिनियम, 1993 को राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राज्य मानव अधिकार आयोग तथा मानव अधिकार न्यायालयों को गठित करके मानव अधिकारों की बेहतर संरक्षा उपलब्ध कराने के लिए प्रवृत्त किया गया है । इस अधिनियम की धारा 2(1)(घ) के अधीन "मानव अधिकार" इस प्रकार परिभाषित किया गया है – "मानव अधिकार" से प्राण, स्वतंत्रता, समानता और व्यक्ति की गरिमा से संबंधित ऐसे अधिकार अभिप्रेरित हैं जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत किए गए हैं या अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सन्निविष्ट और भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं । उपरोक्त अधिकार मूल अधिकारों को गारंटीकृत करने वाले भारत के संविधान के भाग III में विशेषकर अनुच्छेद 14, 19, 20, 21 और 22 में उल्लिखित हैं । अधिनियम के अध्याय V की धारा 21 से 29, राज्य मानव अधिकार आयोग और उसके कार्यों के बारे में है । राज्य आयोग में एक अध्यक्ष होता है जो उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति होता है और (उसके अतिरिक्त) 4 सदस्य होते हैं । इस अधिनियम के अधीन मानव अधिकारों के किसी भी अतिक्रमण को रोकने के लिए अनेक उपचार दिए गए हैं और राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग/राज्य मानव अधिकार आयोग को न केवल मानव अधिकारों का अतिक्रमण किए जाने या उसका दुष्प्रेरण

किए जाने पर अपितु ऐसे अतिक्रमण को रोकने में किसी लोक सेवक द्वारा लापरवाही किए जाने पर भी स्वप्रेरणा से या रिट याचिका फाइल किए जाने पर जांच करने की शक्ति प्रदत्त की गई है । कानून के अधीन राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग/राज्य मानव अधिकार आयोग को व्यापक शक्ति प्रदत्त की गई हैं । अतः, ऐसे व्यक्तियों के साथ आयोग गठित किए जाने की अपेक्षा की गई है जो पहले से अत्यंत उच्च सांविधानिक पद पर रहे हों ताकि वे सभी उचित और न्याय-निर्णयन संबंधी प्रक्रियाओं पर विचार कर सकें । अधिनियम के उपकारी उद्देश्य और मानव अधिकारों के अतिक्रम के विरुद्ध नागरिकों की शिकायतों के प्रतितोष के लिए प्रभावी तंत्र पर विचार करने पर, राज्य मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष का पद लंबे समय तक रिक्त नहीं रखा जा सकता । तमिलनाडु राज्य ने मानव अधिकार अतिक्रमण के विरुद्ध सदैव कड़े कदम उठाए हैं और मानव अधिकारों की संरक्षा के लिए अपने कर्तव्य का निर्वहन करने का स्पष्ट संदेश दिया है । हमें इस बात का कोई कारण दिखाई नहीं देता है कि राज्य मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष का पद जोकि किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति होता है, तीन वर्ष से अधिक समय तक क्यों रिक्त पड़ा रहा । हमारे मतानुसार, इस अधिनियम की धारा 21(2)(क) में संशोधन किए जाने के संबंध में राज्य सरकार की प्रार्थना जोकि एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है को लंबित रखते हुए यह उचित होगा कि तमिलनाडु राज्य निकट भविष्य में कोई तारीख नियत करके एक शोध समिति का गठन करते हुए धारा 21(2)(क) के निबंधनों में राज्य मानव अधिकार आयोग, तमिलनाडु के अध्यक्ष का पद भरने के लिए कदम उठाए । (पैरा 21)

जहां तक याचियों के विरुद्ध मिथ्या मामला रजिस्ट्रीकृत किए जाने के संबंध में उनकी शिकायत का प्रश्न है, यह कथन किया गया है कि कोयम्बटूर के सर्किट हाउस के स्वागत अधिकारी द्वारा दर्ज कराई गई शिकायत के आधार पर बी-4 रेस-कोर्स, पुलिस थाने में दंड संहिता की धारा 420 के अधीन अपराध के लिए प्रथम याची के विरुद्ध मामला सं. 191/2009 रजिस्ट्रीकृत किया गया था । संगठित अपराध एकक (ओ.सी.यू.) सी. बी., सी. आई. डी. ने अभिकथित कूटरचना के अपराध के लिए कृष्ण कुमार नाम के व्यक्ति की शिकायत पर याचियों के विरुद्ध अपराध मामला सं. 1/2009 रजिस्ट्रीकृत किया है । दोनों मामलों में मुख्य न्यायिक

मजिस्ट्रेट, कोयम्बटूर के न्यायालय में आरोप पत्र फाइल किए गए हैं जिन्हें अपराध मामला सं. 84/2010 और 83/2010 के रूप में अभिलेख पर लिया गया है । दोनों याचियों ने दांडिक मूल रिट याचिका सं. 14609/2011 और 14610/2011 तथा 14611/2011 और 14612/2011 में उनके विरुद्ध आरोप अभिखंडित करने के लिए मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन आपराधिक मामलों को अभिखंडित करने के लिए फाइल की हैं और उन्होंने अंतरिम रोक आदेश प्राप्त कर लिया है और यह कथन किया है कि अभिखंडन याचिकाएं लंबित हैं । चूंकि याचियों ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन पहले ही याचिकाएं फाइल कर दी हैं, इसलिए याची उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल की गईं उन याचिकाओं में सभी प्रतिवाद करने के लिए स्वतंत्र हैं । इस रिट याचिका का निपटारा सातवें मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, जॉर्ज टाउन, चेन्नई को यह निदेश देते हुए किया जाता है कि वे ला कालेज से संबंधित घटना के मामलों को तत्काल अभिलेख पर लें और शीघ्रता से विचार करें और एक वर्ष के भीतर विधि के अनुसरण में मामलों का निपटारा समीचीन रूप से करें । सातवें मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट एक मास में दो बार उच्च न्यायालय के समक्ष इन मामलों की प्रास्थिति रिपोर्ट फाइल करेंगे और हम उच्च न्यायालय से ये निवेदन करते हैं कि वह इन मामलों की प्रगति पर नजर रखें । पैरा 21 में की गई चर्चा को दृष्टिगत करते हुए यह बहुत अच्छा होगा कि तमिलनाडु राज्य, राज्य मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष का पद भरने के लिए समीचीन रूप से कदम उठाएं । (पैरा 22 और 23)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2010]	(2010) 3 एस. सी. सी. 571 : **पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य** बनाम **कमेटी फॉर प्रोटेक्शन ऑफ डेमोक्रेटिक** **राइट्स, पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य** ।	15

रिट (सिविल) अधिकारिता : 2010 की रिट याचिका सं. 400.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 32 के अधीन अपील ।

याची की ओर से सर्वश्री प्रशांत भूषण, सुमीत शर्मा और श्याम सिंह चौहान

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री के. सुब्रह्मण्यम (ज्येष्ठ अधिवक्ता) सुब्रह्मण्यम प्रसाद, अपर महाधिवक्ता, एस. आनन्द, आर. राकेश शर्मा, बी. बालाजी, ई. सी. अग्रवाल, आर. बालासुब्रह्मण्यम और एस. गोथामन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (श्रीमती) आर. बानुमति ने दिया ।

न्या. (श्रीमती) बानुमति – यह रिट याचिका परमादेश की रिट जारी करने के लिए याचियों द्वारा फाइल की गई है कि डा. अम्बेडकर गवर्नमेंट ला कालेज, चेन्नई के छात्रों की कुछ हमलावरों द्वारा अभिकथित रूप से पिटाई किए जाने के मामले में अधिमान्य रूप से केंद्रीय जांच ब्यूरो या विशेष जांच दल द्वारा स्वतंत्र अन्वेषण कराया जाए ताकि उक्त घटना के लिए दोषी पुलिस कार्मिकों तथा अन्य जिम्मेदार व्यक्तियों के विरुद्ध दांडिक कार्यवाही आरंभ की जा सके ।

2. यह रिट याचिका जिन तथ्यों के आधार पर फाइल की गई है वे संक्षेप में इस प्रकार हैं :– डा. अम्बेडकर ला कालेज, चेन्नई के छात्रों के एक समूह ने जो तेवर समुदाय का था, पसुम्पन मुथुरामालिंगम तेवर के जन्म-दिवस के आयोजन के संबंध में कालेज परिसर में पोस्टर और चौपन्ने चिपकाए जिनमें "डा. अम्बेडकर गवर्नमेंट ला कालेज" के स्थान पर "गवर्नमेंट ला कालेज" छपा हुआ था । आंदोलनकारी दलित छात्रों ने अदलित छात्रों के इस कार्य पर आपत्ति की जिसके परिणामस्वरूप दोनों समूहों में कहा-सुनी हो गई और इस कहासुनी ने अशिष्ट घटना का रूप ले लिया जो डा. अम्बेडकर गवर्नमेंट ला कालेज, चेन्नई के परिसर में तारीख 12 नवंबर, 2008 को लगभग 2.20 बजे अपराह्न में घटित हुई । छात्रों के दोनों समूहों ने एक दूसरे पर हमला किया और यह अभिकथन किया गया है कि अदलित छात्रों (तेवर छात्रों) को दलित छात्रों द्वारा बुरी तरह पीटा गया । इस घटना के संबंध में आपराधिक मामले दोनों समूहों के विरुद्ध रजिस्ट्रीकृत किए गए । कुछ पुलिस कार्मिकों को उसी दिन निलंबित कर दिया गया और उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश की अध्यक्षता में एक जांच आयोग नियुक्त किया गया और आयोग ने अपनी रिपोर्ट फाइल

की जिसे राज्य सरकार द्वारा स्वीकार किया गया और उसके आधार पर कार्रवाई की गई ।

3. याचियों ने यह दावा किया है कि वे विश्व मानव अधिकार आयोग और निस्तार केंद्र के अध्यक्ष और सचिव हैं और उनके संगठन का मुख्य उद्देश्य जनता को मानव अधिकारों के प्रति जागरूक करना है और ऐसे मामलों में कार्यवाही करना है जिनमें मानव अधिकारों का घोर अतिक्रमण होता है । याचियों की यह शिकायत है कि यद्यपि यह घटना ला कालेज के सामने दिन-दहाड़े घटित हुई थी और बहुत से पुलिस कार्मिक वहां पर मौजूद थे, फिर भी उन्होंने झगड़े को रोकने के लिए हस्तक्षेप नहीं किया और पुलिस मूकदर्शक बनकर खड़ी रही । याचियों के अनुसार, अपचारी पुलिस कार्मिकों ने केवल अपने राजनीतिक उच्चाधिकारियों को प्रसन्न करने के लिए जानबूझकर हस्तक्षेप नहीं किया और केवल औपचारिकता पूरी की और इस प्रकार पुलिस कार्मिकों ने इस घटना को रोकने में लापरवाही से काम लिया, याचियों ने राज्य मानव अधिकार आयोग में शिकायत दर्ज करने का प्रयास किया किंतु राज्य मानव अधिकार आयोग ने इस शिकायत पर विचार करने से इनकार कर दिया और याची सं. 2 के पास राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के समक्ष शिकायत फाइल करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं बचा और इस आयोग में मामला सं. 1492/22/13/08-09/यू.सी. रजिस्ट्रीकृत किया गया । याचियों का पक्षकथन यह है कि चूंकि याचियों ने ला कालेज से संबंधित घटना को लेकर राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के समक्ष शिकायत फाइल कर दी है और उस शिकायत को वापस लेने से इनकार कर दिया है । इसलिए याचियों को तमिलनाडु पुलिस द्वारा अत्यधिक तंग किया जा रहा है और उनके तथा उनकी संस्था के विरुद्ध मिथ्या मामले रजिस्ट्रीकृत किए जा रहे हैं । इस संस्था के सभी खाते और संपत्तियां अपराध शाखा (क्राइम ब्रांच), अपराध अन्वेषण विभाग द्वारा मनमाने रूप में बिना किसी समुचित प्रक्रिया के अभिगृहीत कर लिए गए हैं । अतः याचियों ने यह अभिकथन किया है कि ला कालेज की घटना से संबंधित अन्वेषण गंभीरता से नहीं किया गया है और याचियों ने डा. अम्बेडकर गवर्नमेंट ला कालेज के छात्रों की बर्बरतापूर्ण की गई पिटाई की घटना, जो तारीख 12 नवंबर, 2008 को घटित हुई थी, के संबंध में केंद्रीय जांच ब्यूरो या विशेष जांच दल जैसे

स्वतंत्र अभिक्रम द्वारा अन्वेषण किए जाने की ईप्सा की है ।

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया ।)

4. नोटिस जारी किए जाने पर तमिलनाडु राज्य और राज्य मानव अधिकार आयोग ने अपनी प्रास्थिति रिपोर्ट फाइल की है ।

5. याचियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री प्रशांत भूषण ने यह दलील दी है कि चूंकि याचियों ने अपचारी पुलिस पदधारियों के विरुद्ध राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के समक्ष शिकायत फाइल की है और फाइल की गई शिकायत को वापस लेने से इनकार किया है, इसलिए याचियों को राज्य पुलिस अर्थात् संगठित अपराध एकक (ऑर्गनाइज्ड क्राइम यूनिट) और अपराध शाखा, अपराध अन्वेषण विभाग (सी.बी., सी.आई.डी.) द्वारा निरंतर तंग किया जा रहा है और याचियों के विरुद्ध मिथ्या मामले रजिस्ट्रीकृत किए जा रहे हैं । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि संगठित अपराध एकक और सी.बी.,सी.आई.डी. ने थर्ड डिग्री वाले सभी तरीके अपनाए और प्रथम याची को न केवल पुलिस अपितु झगड़ालू व्यक्तियों द्वारा भी बुरी तरह पीटा गया और याची तथा उसके परिवार के सदस्यों को अत्यंत मानसिक पीड़ा दी गई और उसे तंग किया गया । राज्य द्वारा फाइल की गई प्रास्थिति रिपोर्ट की ओर हमारा ध्यान दिलाते हुए विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि विभागीय कार्यवाहियों में अपचारी पुलिस पदधारियों को या तो केवल निन्दा करके छोड़ दिया है या उन्हें नाममात्र दंड दिया है और इस मामले में गंभीरता के साथ कार्यवाही नहीं की गई है और यह दलील दी है कि तारीख 12 नवंबर, 2008 को घटित ला कालेज की घटना से संबंधित अन्वेषण सी.बी.आई. या एस.आई.टी को सौंपा जाए ।

6. तमिलनाडु राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् अपर महाधिवक्ता श्री सुब्रह्मण्यम प्रसाद ने हमारा ध्यान राज्य द्वारा फाइल की गई प्रास्थिति रिपोर्ट की ओर दिलाया है और यह दलील दी है कि छात्रों के दोनों समूहों के विरुद्ध आपराधिक मामले रजिस्ट्रीकृत किए गए हैं और एकल व्यक्ति द्वारा संचालित आयोग की रिपोर्ट स्वीकार करके राज्य सरकार ने पुलिस कार्मिकों के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही संस्थित की है और उन पर दंड भी अधिरोपित किए गए हैं । यह दलील दी गई है कि

याचियों के विरुद्ध आपराधिक मामले रजिस्ट्रीकृत किए गए हैं और उन्हें कूट रचना तथा अन्य अपराधों के लिए आरोपपत्रित किया गया है और याचियों द्वारा किया गया यह अभिकथन निराधार है कि उनके विरुद्ध पुलिस ने आपराधिक मामले ला कालेज की घटना के कारण रजिस्ट्रीकृत किए हैं ।

7. हमने अंतराक्षेपी/अभियोगी प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री के. सुब्रह्मण्यम और राज्य मानव अधिकार आयोग की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री आर. बालासुब्रह्मण्यम को सुना है ।

8. याचियों ने दो शिकायतें की हैं :– (i) तारीख 12 नवंबर, 2008 को घटित ला कालेज की घटना के संबंध में राज्य और पुलिस तथा राज्य मानव अधिकार आयोग द्वारा बरती गई निष्क्रियता या नाममात्र की यह कार्रवाई और सी.बी.आई. जैसे किसी स्वतंत्र अभिक्रम द्वारा अन्वेषण किए जाने की मांग का अभिकथन (ii) पुलिस द्वारा याचियों को तंग किए जाने और उनके विरुद्ध मिथ्या मामले रजिस्ट्रीकृत किए जाने का अभिकथन ।

9. राज्य द्वारा फाइल की गई रिपोर्ट के अनुसार आहत हुए छात्रों में एक छात्र श्री अय्यादुराई (तेवर समुदाय से संबंधित) की शिकायत के आधार पर श्री चितिरायसेल्वन और 40 अन्य छात्रों के विरुद्ध बी.2 एस्प्लेनेड पुलिस थाने में भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 147, 148, 341, 324, 307 और 506 (ii) के अधीन आपराधिक मामला सं. 1371/2008 रजिस्ट्रीकृत किया गया । यह कथन किया गया है कि 23 अभियुक्त छात्र गिरफ्तार किए गए और उन्हें न्यायिक अभिरक्षा में भेज दिया गया और कुछ अभियुक्तों ने न्यायालय में अभ्यर्पण किया और उन्हें जमानत पर छोड़ दिया गया और शेष अभियुक्तों को मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा अग्रिम जमानत मंजूर कर दी गई । इसी प्रकार दलित छात्र चितिरायसेल्वन की शिकायत पर बी.2 एस्प्लेनेड पुलिस थाने में दंड संहिता की धारा 341, 324 और 506 (ii) के अधीन अपराध के लिए दो अभियुक्तों के विरुद्ध अपराध मामला सं. 1372/2008 रजिस्ट्रीकृत किया गया और तत्पश्चात् इस मामले को दंड संहिता की धारा 341, 344, 307 और 506 (ii) में परिवर्तित कर दिया गया । जो दो छात्र अभियुक्त थे उन्हें गिरफ्तार किया गया और तारीख 12

जनवरी, 2009 को उच्च न्यायालय के निदेशानुसार जमानत पर छोड़ दिया गया । तारीख 13 नवंबर, 2008 को प्रधानाचार्य के कमरे के फर्नीचर और अन्य संपत्ति को अभिकथित रूप से नष्ट करने के लिए बी.2 एस्प्लेनेड पुलिस थाने में दंड संहिता की धारा 147, 148 तथा तमिलनाडु संपत्ति (नुकसान और हानि का निवारण) अधिनियम, 1992 की धारा 3(1) के अधीन अपराध के लिए एक अन्य मामला सं. 1374/2008 रजिस्ट्रीकृत किया गया और 14 अभियुक्त गिरफ्तार किए गए जिन्हें तत्पश्चात् तारीख 23 दिसंबर, 2008 को उच्च न्यायालय के आदेशानुसार जमानत पर छोड़ दिया गया ।

10. तारीख 8 सितंबर, 2014 को इस न्यायालय द्वारा फाइल की गई प्रास्थिति रिपोर्ट के अनुसार मामला सं. 1371/2008 में सातवें मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, जॉर्ज टाउन, चेन्नई के समक्ष तारीख 10 मार्च, 2011 को आरोप पत्र फाइल किया गया और इस आरोप पत्र को कतिपय त्रुटियां सुधारने के लिए वापस कर दिया गया और शुद्धियां लगाए जाने के पश्चात् तारीख 19 मई, 2011 को आरोप पत्र पुनः प्रस्तुत किया गया जो अभी अभिलेख पर लिया जाना है । अपराध सं. 1372/2008 में आरोप पत्र फाइल किया गया और उसे मामला सं. 29/2011 के अभिलेख पर ले लिया गया है और उसमें अगली तारीख 9 सितंबर, 2014 नियत की गई है । अपराध सं. 1374/2008 में कुछ अभियुक्तों को अभी गिरफ्तार किया जाना है और इस मामले में तारीख 22 मार्च, 2011 को सातवें मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, जॉर्ज टाउन, चेन्नई के समक्ष आरोप पत्र प्रस्तुत कर दिया गया है जिसे अभी अभिलेख पर लिया जाना है ।

11. प्रास्थिति रिपोर्ट में यह कथन किया गया है कि तारीख 12 नवंबर, 2008 को अर्थात् घटना के दिन तीन पदधारी (i) ला कालेज के प्रधानाचार्य श्री के. के. श्रीदेव और (ii) उस क्षेत्र की अधिकारिता रखने वाले सहायक पुलिस आयुक्त श्री के. नारायणमूर्ति और (iii) बी. 2 एस्प्लेनेड पुलिस थाने के पुलिस निरीक्षक श्री एम. सेकर बाबू को निलंबित कर दिया गया और उस क्षेत्र में कार्यरत चार पुलिस उप निरीक्षकों का अन्य जिलों में स्थानांतरण कर दिया गया । तमिलनाडु सरकार ने इस घटना और सरकार से संबंधित मुद्दों की जांच करने के लिए मद्रास उच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश न्यायमूर्ति पी. शाणमुगम की अध्यक्षता में एक जांच

आयोग नियुक्त किया । आयोग ने तारीख 8 जून, 2009 को सरकार के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और आयोग की सिफारिशों को स्वीकार करते हुए तीन पुलिस कार्मिकों अर्थात् (i) सहायक पुलिस आयुक्त, श्री के. नारायणमूर्ति (ii) पुलिस निरीक्षक श्री एम. सेकर बाबू और (iii) पुलिस उप निरीक्षक श्री ई. पेरुमल के विरुद्ध विभागीय कार्रवाई संस्थिति की गई । संबद्ध पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध जांच पूरी करने के पश्चात् सरकार को रिपोर्ट प्रस्तुत की गई और मामला अंतिम विनिश्चय किए जाने के लिए थोड़े समय के लिए गृह विभाग के समक्ष लंबित रहा । तारीख 29 अप्रैल, 2011 के आदेश द्वारा इस न्यायालय ने प्रत्यर्थियों को यह सुनिश्चित करने का निदेश दिया कि अगली तारीख के पूर्व अंतिम आदेश पारित कर दिए गए हैं और राज्य को संपूर्ण स्थिति से संबंधित प्रास्थिति रिपोर्ट फाइल करने का निदेश दिया । राज्य ने इस न्यायालय के निदेश को अग्रसर करने में एक और प्रास्थिति रिपोर्ट फाइल की जिसमें यह कथन किया कि सरकार ने जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को स्वीकार कर लिया है और तारीख 18 जून, 2013 के गृह (पुलिस-2) विभाग के सरकारी आदेश (2डी.) सं. 217 के अनुसार सहायक पुलिस आयुक्त, श्री नारायणमूर्ति की दंड के रूप में निन्दा की है । जहां तक पुलिस उप निरीक्षक श्री ई. पेरुमल का संबंध है सरकार ने तमिलनाडु पुलिस नियम के नियम 9 के अधीन दो वर्ष तक प्रतिमास 200/- रुपए उनकी पेंशन राशि में से काटे जाने का दंड अधिरोपित किए जाने का प्रस्ताव रखा और उक्त पुलिस अधिकारी को प्रस्तावित दंड का कारण बताने के लिए भी कहा गया है ।

12. याचियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री प्रशांत भूषण ने यह दलील दी है कि पुलिस कार्मिकों द्वारा कर्तव्य का निर्वहन करने में घोर लापरवाही बरती गई है, अपरिणामिक विभागीय कार्रवाई की गई है और दो पुलिस अधिकारियों पर नाममात्र निन्दा का दंड अधिरोपित किया है और एक अन्य पुलिस अधिकारी श्री ई. पेरुमल (पुलिस उप निरीक्षक) के मामले में सरकार ने उनकी पेंशन राशि में से दो वर्ष तक प्रतिमाह 200/- रुपए की कटौती किए जाने का तुच्छ दंड अधिरोपित किया है जो कुल मिलाकर 4,800/- रुपए हुआ और इस प्रकार वास्तव में पुलिस कार्मिक पर कोई भी ऐसा दंड अधिरोपित नहीं किया गया है जो उसके

द्वारा कर्तव्य का निर्वहन करने में की गई घोर लापरवाही के अनुपाती हो, इससे यह दर्शित होता है कि राज्य ने इस मामले पर गंभीरता से विचार किए जाने में सुस्ती से काम लिया है । जहां तक इस घटना से संबंधित आपराधिक मामलों के रजिस्ट्रीकृत किए जाने का संबंध है, विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि दो मामलों में आरोप पत्र फाइल किया जाना शेष है और यह दलील दी है कि निष्पक्ष अन्वेषण किए जाने के लिए यह मामला सी. बी. आई./एस. आई. टी. को पुनः सौंपा जाए । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि राज्य की ओर से लापरवाही बरते जाने पर, याचियों ने राज्य मानव अधिकार आयोग के समक्ष आवेदन करने का निश्चय किया और चूंकि राज्य मानव अधिकार आयोग ने तत्काल संज्ञान नहीं लिया है इसलिए याचियों ने राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के समक्ष आवेदन किया और ऐसा किए जाने पर याचियों को तंग किया गया है और उनके विरुद्ध मिथ्या मामले रजिस्ट्रीकृत किए गए हैं ।

13. राज्य मानव अधिकार आयोग की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री आर. बालासुब्रह्मण्यम ने यह दलील दी है कि उस समय राज्य मानव अधिकार आयोग की अध्यक्षता उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश द्वारा की जा रही थी और याचियों ने राज्य मानव अधिकार आयोग के विरुद्ध यह निराधार अभिकथन करके न्यायोचित नहीं किया है कि राज्य मानव अधिकार आयोग ने तत्काल कार्रवाई नहीं की । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि चूंकि राज्य सरकार ने उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश की अध्यक्षता में जांच आयोग नियुक्त किया था, इसलिए राज्य मानव अधिकार आयोग ने इस मामले में गंभीरता से विचार नहीं किया क्योंकि यदि ऐसा किया जाता तो वह राज्य मानव अधिकार आयोग द्वारा समानांतर जांच कराए जाने की कोटि में आता ।

14. हमने हमारे समक्ष प्रस्तुत की गई कतिपय वीडियो क्लिपिंगों और जांच आयोग की रिपोर्ट का परिशीलन किया है । किंतु हम इसमें उल्लिखित ब्यौरों पर इसलिए विचार नहीं कर रहे हैं कि कहीं अन्य पक्षकार के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़ जाए । प्रास्थिति रिपोर्ट और अन्य सामग्री का परिशीलन करने पर, हम यह महसूस करते हैं कि इस मामले में जिस गंभीरता से कार्यवाही की जानी चाहिए थी, वैसी नहीं की गई है । उदाहरणार्थ, अपराध सं. 1371/2008 में के मुख्य अभियुक्त के. आर्मस्ट्रौंग

को लंबे समय तक गिरफ्तार नहीं किया गया और अंतिम रिपोर्ट में उसे फरार दर्शाया गया है, यद्यपि उसे एक व्यवसायी अधिवक्ता और चुनाव में प्रतियोगी उम्मीदवार बताया गया है । तारीख 8 फरवरी, 2011 को यह मामला इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया और इस न्यायालय द्वारा केवल आदेश पारित किए जाने के पश्चात् ही अभियुक्त के. आर्मस्ट्रौंग को तारीख 1 मई, 2011 को गिरफ्तार किया गया जिसे तत्पश्चात् तारीख 4 मई, 2011 को जमानत पर छोड़ दिया गया । इसी प्रकार दो आपराधिक मामलों में आरोप पत्र फाइल किए जाने हैं और कुछ अभियुक्तों को गिरफ्तार किया जाना है और उनका विचारण किया जाना है ।

15. जहां तक इस मामले का अन्वेषण सी. बी. आई./एस. आई. टी. से कराए जाने से संबंधित श्री भूषण की दलील का प्रश्न है, इस न्यायालय द्वारा कई बार यह दोहराया गया है कि सामान्य अनुक्रम में सी. बी. आई. से अन्वेषण कराए जाने का आदेश मात्र इस कारण से पारित नहीं किया जा सकता कि पक्षकार ने स्थानीय पुलिस के विरुद्ध अभिकथन किए हैं । सी. बी. आई. से अन्वेषण कराए जाने की असाधारण शक्ति का प्रयोग कड़ी सावधानी से और आपवादिक परिस्थितियों में ही किया जाना चाहिए । **पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य** बनाम **कमेटी फॉर प्रोटेक्शन ऑफ डेमोक्रेटिक राइट्स, पश्चिमी बंगाल और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है :–

> "70. इस मामले का निपटारा करने से पूर्व हम इस पर विचार करना आवश्यक समझते हैं कि संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के अधीन प्रदत्त व्यापक शक्तियों के बावजूद न्यायालयों को आदेश पारित करते समय इन सांविधानिक शक्तियों का प्रयोग किए जाने के लिए कतिपय स्वयं-अधिरोपित परिसीमाओं को ध्यान में रखना चाहिए । उक्त अनुच्छेद के अधीन इस शक्ति के आयाम के अंतर्गत कड़ी सावधानी बरतनी चाहिए । जहां तक किसी मामले में अन्वेषण करने के लिए सी. बी. आई. को निदेश जारी किए जाने के प्रश्न का संबंध है, कोई भी दृढ़ सिद्धांत इस संबंध में अधिकथित नहीं किए गए हैं कि ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए या नहीं किंतु फिर

---

[1] (2010) 3 एस. सी. सी. 571.

भी कई बार यह दोहराया गया है कि ऐसा आदेश सामान्य अनुक्रम में पारित नहीं किया जाना चाहिए और न ही इस आधार पर पारित किया जाना चाहिए कि एक पक्षकार ने स्थानीय पुलिस पर कुछ अभिकथन किए हैं । ऐसी असाधारण शक्ति का प्रयोग किफायत से, सतर्कता से और आपवादिक परिस्थितियों में ही किया जाना चाहिए अर्थात् जहां अन्वेषण में विश्वसनीयता और स्थिरता बनाना आवश्यक हो जाए या ऐसी स्थिति में इस शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए जहां घटना का संबंध राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मामले से हो या ऐसी स्थिति हो जिसमें पूर्ण न्याय किया जाना और मूल अधिकारों का प्रवृत्त किया जाना आवश्यक हो । यदि ऐसा नहीं किया गया तो सी. बी. आई. के पास अत्यधिक मामले अन्वेषण के लिए लंबित हो जाएंगे और सीमित साधनों के साथ महत्वपूर्ण मामलों में भी समुचित अन्वेषण किया जाना कठिन हो सकता है और ऐसी परिपाटी के परिणामस्वरूप असमाधानप्रद अन्वेषण किए जाने से सी. बी. आई. की विश्वसनीयता और उद्देश्य प्रभावित हो सकते हैं ।"

16. विधिक शिक्षा का सीधा संबंध विधि व्यवसाय की मर्यादा के साथ है । यह चिंता का विषय है कि ऐसे ला कालेज, चेन्नई के परिसर में एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटित हुई है जिससे बहुत से जाने-माने वकीलों और विधि से संबंधित विद्वानों ने शिक्षा प्राप्त की है । हम यह महसूस करते हैं कि इस मामले पर पुलिस और राज्य द्वारा कड़ी सावधानी और सतर्कता के साथ विचार किया जाना चाहिए था । यद्यपि मामले में इस प्रकार कार्रवाई नहीं की गई है जिस प्रकार की जानी चाहिए थी, फिर भी हमारा यह मत है कि ऐसे समय पर इस मामले को सी. बी. आई. या एस. आई. टी. को अन्वेषण के लिए सुपुर्द करना आवश्यक नहीं है । इसका कारण यह है कि आपराधिक मामले रजिस्ट्रीकृत कर दिए गए हैं और आरोप पत्र भी फाइल कर दिए गए हैं तथा पुलिस कार्मिकों के विरुद्ध विभागीय कार्रवाई भी संस्थित कर दी गई है और उन पुलिस कार्मिकों पर दंड भी, भले ही नाममात्र हो, अधिरोपित कर दिया गया है । चूंकि तीनों मामलों में सातवें मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, जॉर्ज टाउन, चेन्नई के समक्ष आरोप पत्र पहले ही फाइल कर दिए गए हैं इसलिए हमारे मतानुसार सातवें मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, जॉर्ज टाउन, चेन्नई को यह निदेश देना पर्याप्त होगा कि वे इस मामले में समीचीनता के साथ कार्यवाही करें ।

17. श्री प्रशांत भूषण ने याचियों की ओर से राज्य मानव अधिकार आयोग का खंडन करते हुए यह दलील दी है कि राज्य मानव अधिकार आयोग ने इस घटना तथा याचियों के साथ किए गए उत्पीड़न की ओर ध्यान नहीं दिया है और इस आयोग ने ला कालेज की घटना के संबंध में तत्काल कोई कदम नहीं उठाया है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि तमिलनाडु राज्य के मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष का पद तीन वर्ष से अधिक समय से रिक्त चल रहा है ।

18. जहां तक राज्य मानव अधिकार आयोग द्वारा कार्रवाई न किए जाने के संबंध में याचियों की शिकायत का प्रश्न है, राज्य मानव अधिकार आयोग के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि राज्य मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष का पद अगस्त, 2011 से रिक्त पड़ा हुआ है और राज्य मानव अधिकार आयोग के लिए इस संबंध में कार्रवाई करना कठिन है । उक्त दलील पर विचार करने पर, हमने तमिलनाडु राज्य से राज्य मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष का पद न भरे जाने के संबंध में अपना उत्तर फाइल करने को कहा है और राज्य ने तारीख 8 सितंबर, 2014 को राज्य मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष की नियुक्ति के संबंध में अपनी रिपोर्ट फाइल कर दी है ।

19. प्रास्थिति रिपोर्ट में यह कथन किया गया है कि तमिलनाडु राज्य मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष का पद उचित अभ्यर्थी उपलब्ध न होने के कारण तारीख 27 अगस्त, 2011 से रिक्त चल रहा है । यह भी कथन किया गया है कि राज्य सरकार के निवेदन पर मद्रास उच्च न्यायालय ने सेवानिवृत्त उन मुख्य न्यायाधीशों के नामों की सूची उनकी जन्म तिथि और वर्तमान पते के साथ भेजी है जो मद्रास उच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश रहे हैं । राज्य के अनुसार, मद्रास उच्च न्यायालय के महारजिस्ट्रार द्वारा भेजी गई सूची में अधिकांश अभ्यर्थी या तो पहले से तमिलनाडु राज्य के बाहर विभिन्न अपील ट्रायब्यूनलों या समकक्षी पदों पर कार्यरत हैं या जो 70 वर्ष की आयुसीमा पार कर चुके हैं या जिन्हें तमिलनाडु राज्य की भाषा और संस्कृति की जानकारी नहीं है और राज्य मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष के पद के लिए समुचित अभ्यर्थी का मिलना लगभग असंभव हो गया था । यह कथन किया गया है कि मानव अधिकार संरक्षा अधिनियम, 1993 की धारा 25(1) के निबंधनों में राज्य

मानव अधिकार आयोग, तमिलनाडु के अध्यक्ष के रूप में इस आयोग के नए अध्यक्ष की नियुक्ति हो जाने तक अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए तारीख 4 दिसंबर, 2013 का आदेश सेवानिवृत्त सुश्री जयंती, भारतीय प्रशासनिक सेवा को जारी किया गया । यह भी कथन किया गया है कि इस संबंध में तमिलनाडु सरकार ने भारत सरकार के समक्ष यह प्रस्ताव रखा है कि मानव अधिकार संरक्षा अधिनियम, 1993 (जिसे संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 21(2)(क) में समुचित संशोधन किया जाए ताकि राज्य मानव अधिकार आयोग, तमिलनाडु के अध्यक्ष के पद के लिए उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में 7 वर्ष के अल्पतम अनुभव के साथ पात्र हो सके और यह प्रस्ताव भारत सरकार के समक्ष विचाराधीन है । राज्य द्वारा फाइल की गई प्रास्थिति रिपोर्ट में इस संबंध में भारत संघ के साथ राज्य द्वारा किए गए अनेक पत्राचार निर्दिष्ट किए गए हैं ।

20. हम तमिलनाडु राज्य की ओर से रखे गए उस प्रस्ताव के ब्यौरों पर विचार करने में इच्छुक नहीं हैं जिसमें तमिलनाडु राज्य ने अधिनियम की धारा 21(2)(क) में संशोधन किए जाने की प्रार्थना की है । हम केवल राज्य मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष के पद के संबंध में ही विचार करेंगे जो काफी लंबे समय से रिक्त चला आ रहा है ।

21. मानव अधिकार संरक्षा अधिनियम, 1993 को राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राज्य मानव अधिकार आयोग तथा मानव अधिकार न्यायालयों को गठित करके मानव अधिकारों की बेहतर संरक्षा उपलब्ध कराने के लिए प्रवृत्त किया गया है । इस अधिनियम की धारा 2(1)(घ) के अधीन "मानव अधिकार" इस प्रकार परिभाषित किया गया है – "मानव अधिकार" से प्राण, स्वतंत्रता, समानता और व्यक्ति की गरिमा से संबंधित ऐसे अधिकार अभिप्रेरित हैं जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत किए गए हैं या अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सन्निविष्ट और भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हैं । उपरोक्त अधिकार मूल अधिकारों को गारंटीकृत करने वाले भारत के संविधान के भाग III में विशेषकर अनुच्छेद 14, 19, 20, 21 और 22 में उल्लिखित हैं । अधिनियम के अध्याय V की धारा 21 से 29, राज्य मानव अधिकार आयोग और उसके कार्यों के बारे में है । राज्य आयोग में एक अध्यक्ष होता है जो उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति होता है और

(उसके अतिरिक्त) 4 सदस्य होते हैं । इस अधिनियम के अधीन मानव अधिकारों के किसी भी अतिक्रमण को रोकने के लिए अनेक उपचार दिए गए हैं और राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग/राज्य मानव अधिकार आयोग को न केवल मानव अधिकारों का अतिक्रमण किए जाने या उसका दुष्प्रेरण किए जाने पर अपितु ऐसे अतिक्रमण को रोकने में किसी लोक सेवक द्वारा लापरवाही किए जाने पर भी स्वप्रेरणा से या रिट याचिका फाइल किए जाने पर जांच करने की शक्ति प्रदत्त की गई है । कानून के अधीन राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग/राज्य मानव अधिकार आयोग को व्यापक शक्ति प्रदत्त की गई हैं । अतः, ऐसे व्यक्तियों के साथ आयोग गठित किए जाने की अपेक्षा की गई है जो पहले से अत्यंत उच्च सांविधानिक पद पर रहे हों ताकि वे सभी उचित और न्याय-निर्णयन संबंधी प्रक्रियाओं पर विचार कर सकें । अधिनियम के उपकारी उद्देश्य और मानव अधिकारों के अतिक्रमण के विरुद्ध नागरिकों की शिकायतों के प्रतितोष के लिए प्रभावी तंत्र पर विचार करने पर, राज्य मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष का पद लंबे समय तक रिक्त नहीं रखा जा सकता । तमिलनाडु राज्य ने मानव अधिकार अतिक्रमण के विरुद्ध सदैव कड़े कदम उठाए हैं और मानव अधिकारों की संरक्षा के लिए अपने कर्तव्य का निर्वहन करने का स्पष्ट संदेश दिया है । हमें इस बात का कोई कारण दिखाई नहीं देता है कि राज्य मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष का पद जोकि किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति होता है, तीन वर्ष से अधिक समय तक क्यों रिक्त पड़ा रहा । हमारे मतानुसार, इस अधिनियम की धारा 21(2)(क) में संशोधन किए जाने के संबंध में राज्य सरकार की प्रार्थना जोकि एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है को लंबित रखते हुए यह उचित होगा कि तमिलनाडु राज्य निकट भविष्य में कोई तारीख नियत करके एक शोध समिति का गठन करते हुए धारा 21(2)(क) के निबंधनों में राज्य मानव अधिकार आयोग, तमिलनाडु के अध्यक्ष का पद भरने के लिए कदम उठाए ।

22. जहां तक याचियों के विरुद्ध मिथ्या मामला रजिस्ट्रीकृत किए जाने के संबंध में उनकी शिकायत का प्रश्न है, यह कथन किया गया है कि कोयम्बटूर के सर्किट हाउस के स्वागत अधिकारी द्वारा दर्ज कराई गई शिकायत के आधार पर बी-4 रेस-कोर्स, पुलिस थाने में दंड संहिता की धारा 420 के अधीन अपराध के लिए प्रथम याची के विरुद्ध मामला सं. 191/2009 रजिस्ट्रीकृत किया गया था । संगठित अपराध एकक

(ओ.सी.यू.) सी. बी., सी. आई. डी. ने अभिकथित कूटरचना के अपराध के लिए कृष्ण कुमार नाम के व्यक्ति की शिकायत पर याचियों के विरुद्ध अपराध मामला सं. 1/2009 रजिस्ट्रीकृत किया है । दोनों मामलों में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कोयम्बटूर के न्यायालय में आरोप पत्र फाइल किए गए हैं जिन्हें अपराध मामला सं. 84/2010 और 83/2010 के रूप में अभिलेख पर लिया गया है । दोनों याचियों ने दांडिक मूल रिट याचिका सं. 14609/2011 और 14610/2011 तथा 14611/2011 और 14612/2011 में उनके विरुद्ध आरोप अभिखंडित करने के लिए मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अधीन आपराधिक मामलों को अभिखंडित करने के लिए फाइल की हैं और उन्होंने अंतरिम रोक आदेश प्राप्त कर लिया है और यह कथन किया है कि अभिखंडन याचिकाएं लंबित हैं । चूंकि याचियों ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन पहले ही याचिकाएं फाइल कर दी हैं, इसलिए याची उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल की गई उन याचिकाओं में सभी प्रतिवाद करने के लिए स्वतंत्र हैं ।

23. इस रिट याचिका का निपटारा सातवें मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, जॉर्ज टाउन, चेन्नई को यह निदेश देते हुए किया जाता है कि वे ला कालेज से संबंधित घटना के मामलों को तत्काल अभिलेख पर लें और शीघ्रता से विचार करें और एक वर्ष के भीतर विधि के अनुसरण में मामलों का निपटारा समीचीन रूप से करें । सातवें मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट एक मास में दो बार उच्च न्यायालय के समक्ष इन मामलों की प्रास्थिति रिपोर्ट फाइल करेंगे और हम उच्च न्यायालय से ये निवेदन करते हैं कि वह इन मामलों की प्रगति पर नजर रखें । पैरा 21 में की गई चर्चा को दृष्टिगत करते हुए यह बहुत अच्छा होगा कि तमिलनाडु राज्य, राज्य मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष का पद भरने के लिए समीचीन रूप से कदम उठाएं ।

रिट याचिका का निपटारा किया गया ।

अस./अनू.

राजस्थान राज्य

बनाम

मोहम्मद मुस्लिम तगला

13 अक्तूबर, 2014

न्यायमूर्ति रंजना प्रकाश देसाई और न्यायमूर्ति एन. वी. रमन

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 363, 366क और 376 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 433] – अपहरण और बलात्संग – दोषसिद्धि किए जाने पर दंडादेश लघूकरण – उच्च न्यायालय और समुचित सरकार की शक्ति – न्यायालय समुचित सरकार को दंडादेश का लघूकरण करने का नहीं अपितु लघूकरण किए जाने के मामले पर विचार करने का निदेश दे सकता है, अतः उच्च न्यायालय द्वारा सरकार के दंड का लघूकरण करने का निदेश दिया जाना विधिविरुद्ध होगा ।

इस मामले में अभियुक्त मोहम्मद मुस्लिम तगला का विचारण अन्य दो अभियुक्तों अर्थात् सबीना और मोहम्मद दाऊद के साथ किया गया । विचारण न्यायालय ने सबीना और मोहम्मद दाऊद को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया और अभियुक्त मोहम्मद मुस्लिम तगला को धारा 363 और 376 आदि के अधीन दोषसिद्ध कर दिया । अभियुक्त मोहम्मद मुस्लिम तगला ने राजस्थान उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय में अभियुक्त के काउंसेल ने लघूकरण किए जाने की दलील दी । इस पर लोक अभियोजक ने कोई आपत्ति नहीं की । उच्च न्यायालय लघूकरण का आदेश पारित कर दिया । राजस्थान राज्य ने इस आदेश से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । अपील के लंबित रहने के दौरान ही अभियुक्त सात वर्ष का कारावास भोग चुका था, इसलिए लघूकरण का कोई औचित्य नहीं रह पाया, किन्तु उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय पर खेद व्यक्त करते हुए अपील का निपटारा किया । अपील निपटाते हुए,

अभिनिर्धारित – जब समुचित सरकार दंडादेश का लघूकरण करती है, तब वह अपनी प्रभुत्व शक्तियों का प्रयोग करती है । न्यायालय समुचित सरकार

को उसकी प्रभुत्व शक्तियों का प्रयोग किए जाने का निदेश नहीं दे सकता । न्यायालय समुचित सरकार को इससे अधिक कोई निदेश नहीं दे सकता है कि वह मामले पर दंडादेश का लघूकरण किए जाने के लिए मामले पर विचार करे । यह विधिक स्थिति अब अनिर्णीत विषय नहीं है । इस चर्चा का मुख्य सार यह है कि उच्च न्यायालय ने राज्य सरकार को प्रत्यर्थी के पक्ष में दंडादेश लघूकरण करने का निदेश देने में त्रुटि की है । न्यायालय केवल राज्य सरकार को यह निदेश दे सकता था कि वह प्रत्यर्थी के मामले पर दंडादेश का लघूकरण किए जाने के संबंध में विचार करे । किसी भी स्थिति में, यदि यह मान लिया जाए कि उच्च न्यायालय ऐसा निदेश दे सकता था, चूंकि वह दंड संहिता की धारा 376 के अधीन की गई दोषसिद्धि के मामले पर विचार कर रहा था, तब उसे ऐसा करने के लिए उन असाधारण परिस्थितियों यदि कोई थीं, का उल्लेख करना चाहिए था जिनके आधार पर उसे ऐसा निदेश देना पड़ा । दुर्भाग्यवश, उच्च न्यायालय ने केवल प्रत्यर्थियों के काउंसेल द्वारा किए गए निवेदन और राज्य के काउंसेल द्वारा की गई रियायत पर विचार किया है । यदि उच्च न्यायालय ने यह महसूस किया है कि अभियोजन पक्षकथन अत्यंत दुर्बल है और प्रत्यर्थी दोषमुक्त किए जाने योग्य है, तब ऐसी स्थिति में उच्च न्यायालय को साक्ष्य पर विचार करके ही प्रत्यर्थी को दोषमुक्त करना चाहिए था । किंतु, उच्च न्यायालय ने ऐसा तरीका नहीं अपनाया । निर्णय का निपटारा करने के पूर्व, न्यायालय उच्च न्यायालय में लोक अभियोजक द्वारा बरती गई रियायत पर खेद है । प्रथमतः अपराध गंभीर है और ऐसे गंभीर अपराध किए जाने की स्थिति में, लोक अभियोजक को ऐसी रियायत नहीं बरतनी चाहिए थी कि न्यायालय को सरकार को दंडादेश का लघूकरण करने का निदेश देना पड़े । इसके अतिरिक्त, लोक अभियोजक ने विधिक स्थिति पर विचार किए बिना रियायत बरती है । किसी दांडिक मामले में लोक अभियोजक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । यह अत्यंत खेदपूर्ण है कि ऐसे गंभीर मामले में लोक अभियोजक ने इस प्रकार का औपचारिक दृष्टिकोण अपनाया है । चूंकि यह अपील निष्फल हो गई है, इसलिए न्यायालय ने इस मामले पर और अधिक विचार नहीं किया । न्यायालय को केवल यह आशा है कि न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मतों पर सभी संबंधित प्राधिकारी विचार करेंगे । (पैरा 9, 12 और 13)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2003]	(2003) 7 एस. सी. सी. 121 : **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार)** बनाम **प्रेम राज ;**	11
[2002]	(2002) 7 एस. सी. सी. 222 : **दिल्ली प्रशासन (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली)** बनाम **मनोहर लाल ;**	10
[1996]	(1996) 5 एस. सी. सी. 495 : **पंजाब राज्य** बनाम **केसर सिंह ।**	10

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2014 की दांडिक अपील सं. 2184.

2008 की दांडिक अपील सं. 639 में राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर की एकल न्यायपीठ के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री मिलिन्द कुमार

प्रत्यर्थी की ओर से श्री जॉन मैथ्यू

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति रंजना प्रकाश देसाई ने दिया ।

न्या. देसाई – इजाजत प्रदान की जाती है ।

2. 2007 के सेशन मामला सं. 24 में प्रत्यर्थी का विचारण अन्य दो अभियुक्तों अर्थात् सबीना और मोहम्मद दाऊद के साथ भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में 'दंड संहिता' कहा गया है) की धारा 109 के साथ पठित धारा 363, 366, 376, 307 के अधीन अपर जिला और सेशन न्यायाधीश (त्वरित न्यायालय), सीकर, राजस्थान द्वारा किया गया । विद्वान् सेशन न्यायाधीश, सीकर ने तारीख 11 जून, 2008 के निर्णय और आदेश के अनुसार सबीना और मोहम्मद दाऊद को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया । प्रत्यर्थी मोहम्मद मुस्लिम तगला को दंड संहिता की धारा 363 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया और तीन वर्ष का कठोर कारावास भोगने तथा 1000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने

जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर छह मास का साधारण कारावास भोगने का दंडादेश दिया । प्रत्यर्थी को दंड संहिता की धारा 366क के अधीन भी दोषसिद्ध किया गया और पांच वर्ष का कठोर कारावास भोगने तथा 2000/- रुपए जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर छह मास का साधारण कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया । उसे दंड संहिता की धारा 376 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए भी दोषसिद्ध किया गया और सात वर्ष का कठोर कारावास भोगने तथा 5000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर छह मास का साधारण कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया । सारभूत दंडादेशों के साथ-साथ चलाए जाने का आदेश दिया गया ।

3. उक्त निर्णय और आदेश से व्यथित होकर प्रत्यर्थी ने राजस्थान उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । आक्षेपित निर्णय से यह पता चलता है कि प्रत्यर्थी के काउंसेल ने उच्च न्यायालय में गुणता के आधार पर मामले में दलील नहीं दी । काउंसेल ने केवल न्यायालय से यह निवेदन किया कि संबद्ध प्राधिकारियों को यह निदेश दिया जाए कि वे प्रत्यर्थी को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे संक्षेप में 'संहिता' कहा गया है) की धारा 433 का लाभ दें । राजस्थान राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् लोक अभियोजक ने उक्त प्रार्थना का विरोध नहीं किया और उच्च न्यायालय ने इस तथ्य को आक्षेपित आदेश में अभिलिखित किया । इसके पश्चात् उच्च न्यायालय ने संबद्ध प्राधिकारियों को यह निदेश दिया कि वे अपीलार्थी को संहिता की धारा 433 का लाभ देते हुए अपील का निपटारा करें । इस आदेश का सुसंगत भाग निम्न प्रकार है :–

> "पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों को सुनने और आक्षेपित निर्णय के साथ अभिलेख पर उपलब्ध सुसंगत सामग्री का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने के पश्चात् संबद्ध प्राधिकारियों को यह निदेश दिया जाता है कि वे अभियुक्त अपीलार्थी को विधि के अनुसरण में संहिता की धारा 433 का लाभ दें ।"

4. इस आदेश से व्यथित होकर, राजस्थान राज्य ने वर्तमान अपील फाइल की है ।

5. तारीख 8 मई, 2014 को इस न्यायालय ने राजस्थान राज्य के

विद्वान् काउंसेल से यह मालूम किया कि क्या लोक अभियोजक ने प्रत्यर्थी के काउंसेल द्वारा किए गए इस निवेदन का वास्तव में विरोध नहीं किया था कि संबद्ध प्राधिकारियों को यह निदेश दिया जाए कि वे प्रत्यर्थी को संहिता की धारा 433 का लाभ दें । काउंसेल ने यह दलील दी कि लोक अभियोजक ने उच्च न्यायालय में ऐसा कथन नहीं किया था । अतः हमने यह निदेश दिया कि इस संबंध में शपथ-पत्र फाइल किया जाए । तथापि, संबद्ध लोक अभियोजक ने कोई भी शपथ-पत्र फाइल नहीं किया है ।

6. जैसा कि इस न्यायालय द्वारा निदेश दिया गया है, प्रत्यर्थी को सहायक उप निरीक्षक प्रेम सिंह, पुलिस थाना कोतवाली, सीकर, राजस्थान के माध्यम से नोटिस तामील कराया गया है । सहायक उप निरीक्षक प्रेम सिंह ने इस संबंध में शपथ-पत्र फाइल किया है । नोटिस तामील कराए जाने का सबूत उक्त शपथ-पत्र के साथ संलग्न किया गया है । नोटिस तामील कराए जाने के बावजूद, प्रत्यर्थी न तो स्वयं और न ही प्लीडर के माध्यम से न्यायालय में उपस्थित हुआ । इसलिए, तारीख 17 सितंबर, 2014 को इस न्यायालय ने अपने रजिस्ट्री विभाग को निदेश दिया कि प्रत्यर्थी के लिए कोई अधिवक्ता नियुक्त किया जाए । तद्नुसार, श्री जॉन मैथ्यू, अधिवक्ता को इस न्यायालय की रजिस्ट्री द्वारा नियुक्त किया गया है और उन्होंने आज हमारी ठीक प्रकार सहायता की है ।

7. अपीलार्थी राज्य ने इस आधार पर आक्षेपित आदेश को चुनौती दी है कि प्रत्यर्थी द्वारा कारित किया गया अपराध गंभीर है, अतः उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी को संहिता की धारा 433 का लाभ दिए जाने के संबंध में प्राधिकारियों को निदेश देकर गलत किया है । तथापि, अपील ज्ञापन में यह कथन नहीं किया गया है कि लोक अभियोजक ने उच्च न्यायालय में अपीलार्थी के काउंसेल की दलील के साथ सहमति व्यक्त नहीं की थी । यह कथन केवल इस न्यायालय में किया गया है । यह भी विचार किया जाना चाहिए कि प्रारंभ में प्रत्यर्थी सात वर्ष का कारावास भोग चुका है और उसे अभिरक्षा से मुक्त किया गया है । यह कथन अपीलार्थी राज्य के काउंसेल द्वारा किया गया है और उन्होंने अपनी दलील के समर्थन में इस न्यायालय के समक्ष वह पत्र प्रस्तुत किया है जो पुलिस अधीक्षक, बीकानेर केंद्रीय कारागार द्वारा अपर पुलिस अधीक्षक, सीकर, राजस्थान को लिखा गया था । काउंसेल ने यह दलील दी है कि यद्यपि उच्च न्यायालय ने

संबद्ध प्राधिकारियों को यह निदेश दिया था कि वे प्रत्यर्थी को संहिता की धारा 433 के अधीन दंडादेश का लघूकरण किए जाने का लाभ देंगे, फिर भी उक्त लाभ नहीं दिया गया । चूंकि प्रत्यर्थी को उस पर अधिरोपित दंडादेश भोगे जाने के पश्चात् जेल से छोड़ा गया है और उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निदेश के अनुसरण में संहिता की धारा 433 के अधीन प्रत्यर्थी को लाभ दिए जाने का संबद्ध प्राधिकारियों द्वारा कोई भी कदम नहीं उठाया गया है, इसलिए वर्तमान अपील वास्तव में निष्फल हो जाती है । तथापि, इस अपील को निष्फल घोषित करने के पूर्व, कतिपय संप्रेक्षण किए जाने आवश्यक हैं ।

8. संहिता की धारा 433 दंडादिष्ट व्यक्ति की सम्मति के बिना दंडादेश का लघूकरण करने की समुचित सरकार की शक्ति से संबंधित है । यह धारा इस प्रकार है :–

"**433. दंडादेश के लघूकरण की शक्ति** – समुचित सरकार दंडादिष्ट व्यक्ति की सम्मति के बिना –

(क) मृत्यु दंडादेश का भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) द्वारा उपबन्धित किसी अन्य दंड के रूप में लघूकरण कर सकती है ;

(ख) आजीवन कारावास के दंडादेश का, चौदह वर्ष से अनधिक अवधि के कारावास में या जुर्माने के रूप में लघूकरण कर सकती है ;

(ग) कठिन कारावास के दंडादेश का किसी ऐसी अवधि के सादा कारावास में जिसके लिए वह व्यक्ति दंडादिष्ट किया जा सकता है, या जुर्माने के रूप में लघूकरण कर सकती है ;

(घ) सादा कारावास के दंडादेश का जुर्माने के रूप में लघूकरण कर सकती है ।"

9. जब समुचित सरकार दंडादेश का लघूकरण करती है, तब वह अपनी प्रभुत्व शक्तियों का प्रयोग करती है । न्यायालय समुचित सरकार को उसकी प्रभुत्व शक्तियों का प्रयोग किए जाने का निदेश नहीं दे सकता । न्यायालय समुचित सरकार को इससे अधिक कोई निदेश नहीं दे सकता है कि वह मामले पर दंडादेश का लघूकरण किए जाने के लिए मामले पर विचार करे । यह विधिक स्थिति अब अनिर्णीत विषय नहीं है ।

10. **दिल्ली प्रशासन (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली)** बनाम

मनोहर लाल[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह कथन किया है कि संहिता की धारा 433 के अधीन शक्ति का प्रयोग एक कार्यकारी विवेकाधिकार है । **पंजाब राज्य** बनाम **केसर सिंह**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने इस स्थिति को निम्न प्रकार स्पष्ट किया है :–

> "दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 433 के अधीन किसी समुचित मामले में सरकार को किसी दोषसिद्ध व्यक्ति के दंडादेश का लघूकरण करने और न्यायालयों द्वारा अधिरोपित दंडादेश की अवधि की समाप्ति के पूर्व छोड़ने का आदेश करने के लिए समर्थ बनाया गया है । .... उसके अतिरिक्त यदि उच्च न्यायालय ऐसा कोई निदेश देता है तो वह निदेश केवल समयपूर्व छोड़े जाने के मामले पर सरकार द्वारा विचार किए जाने के लिए होता है न कि प्रत्यर्थी को समयपूर्व छोड़ने के लिए । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 433 के अधीन शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार सरकार को है और इस अधिकार का प्रयोग नियमों और सुस्थापित सिद्धांतों के अनुसरण में किया जाना चाहिए । अतः, उच्च न्यायालय का आक्षेपित आदेश कायम नहीं रखा जा सकता है और एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है ।"

11. **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार)** बनाम **प्रेम राज**[3] वाले मामले में इस न्यायालय ने विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट के सुसंगत भाग को निर्दिष्ट किया है और यह मत व्यक्त किया है कि लघूकरण करने की शक्ति एकमात्र रूप से समुचित सरकार में निहित है । साथ ही इन शक्तियों का प्रयोग समुचित सरकार द्वारा विधि के प्रयोजनार्थ युक्तियुक्त रूप से आनुषंगिक और सुसंगत कारणों, उपशमनकारी परिस्थितियों और/या लघूकरण के लिए आवश्यक अनुकंपाशील तथ्यों और समाज तथा लोक हित संबंधी संघटकों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए ।

12. इस चर्चा का मुख्य सार यह है कि उच्च न्यायालय ने राज्य सरकार को प्रत्यर्थी के पक्ष में दंडादेश का लघूकरण करने का निदेश देने में त्रुटि की है । न्यायालय केवल राज्य सरकार को यह निदेश दे सकता था

---

[1] (2002) 7 एस. सी. सी. 222.
[2] (1996) 5 एस. सी. सी. 495.
[3] (2003) 7 एस. सी. सी. 121.

कि वह प्रत्यर्थी के मामले पर दंडादेश का लघूकरण किए जाने के संबंध में विचार करे । किसी भी स्थिति में, यदि यह मान लिया जाए कि उच्च न्यायालय ऐसा निदेश दे सकता था, चूंकि वह दंड संहिता की धारा 376 के अधीन की गई दोषसिद्धि के मामले पर विचार कर रहा था, तब उसे ऐसा करने के लिए उन असाधारण परिस्थितियों का उल्लेख करना चाहिए था जिनके आधार पर ऐसा निदेश देना पड़ा । दुर्भाग्यवश, उच्च न्यायालय ने केवल प्रत्यर्थियों के काउंसेल द्वारा किए गए निवेदन और राज्य के काउंसेल द्वारा की गई रियायत पर विचार किया है । यदि उच्च न्यायालय ने यह महसूस किया है कि अभियोजन पक्षकथन अत्यंत दुर्बल है और प्रत्यर्थी दोषमुक्त किए जाने योग्य है, तब ऐसी स्थिति में उच्च न्यायालय को साक्ष्य पर विचार करके ही प्रत्यर्थी को दोषमुक्त करना चाहिए था । किंतु, उच्च न्यायालय ने ऐसा तरीका नहीं अपनाया ।

13. निर्णय का निपटारा करने के पूर्व, हमें उच्च न्यायालय में लोक अभियोजक द्वारा बरती गई रियायत पर खेद है । प्रथमतः अपराध गंभीर है और ऐसे गंभीर अपराध किए जाने की स्थिति में, लोक अभियोजक को ऐसी रियायत नहीं बरतनी चाहिए थी कि न्यायालय को सरकार को दंडादेश का लघूकरण करने का निदेश देना पड़े । इसके अतिरिक्त, लोक अभियोजक ने विधिक स्थिति पर विचार किए बिना रियायत बरती है । किसी दांडिक मामले में लोक अभियोजक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । यह अत्यंत खेदपूर्ण है कि ऐसे गंभीर मामले में लोक अभियोजक ने इस प्रकार का औपचारिक दृष्टिकोण अपनाया है । चूंकि यह अपील निष्फल हो गई है, इसलिए हम इस मामले पर और अधिक विचार नहीं करेंगे । हमें केवल यह आशा है कि हमारे द्वारा व्यक्त किए गए मतों पर सभी संबंधित प्राधिकारी विचार करेंगे । अपील निष्फल होने के कारण निपटाई जाती है ।

अपील का निपटारा किया गया ।

अस.

[2015] 1 उम. नि. प. 187

कुलदीप कौर

बनाम

उत्तराखंड राज्य

17 अक्तूबर, 2014

न्यायमूर्ति एम. वाई. इकबाल और न्यायमूर्ति पिनाकी चंद्र घोष

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 306 – आत्महत्या का दुष्प्रेरण – डायरी के अस्पष्ट लेख के अतिरिक्त कोई अन्य साक्ष्य न होना – मृतका के पिता द्वारा दहेज की मांग और क्रूरता का तथ्य स्वीकार न किया जाना – मृतका का स्वयमेव अवसादग्रस्त रहना – मृतका के पिता ने यह साक्ष्य दिया कि मृतका के ससुराल वालों द्वारा दहेज की मांग किए जाने के कारण खिन्न रहती थी तथा पिता ने यह स्वीकार नहीं किया कि अभियुक्तों ने उसकी पुत्री को आत्महत्या करने के लिए दुष्प्रेरित किया था या उसे तंग किया था, ऐसी स्थिति में अपीलार्थी की दोषसिद्धि न्यायोचित नहीं होगी ।

इस मामले में मृतका जगप्रीत कौर का विवाह अभियुक्त उपकार सिंह के साथ हुआ था । विवाह के बाद मृतका को दहेज की मांग को लेकर उसके ससुराल वालों ने उसे तंग करना आरंभ कर दिया और उसके पति, देवरों और सास के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 498क/304ख तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन अपराध के लिए विचार किया गया और विचारण न्यायालय ने सभी अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 498क/304ख तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अधीन अपराध से दोषमुक्त कर दिया किन्तु अपीलार्थी कुलदीप कौर दंड संहिता की धारा 306 के अधीन दोषी पाया । राज्य ने शेष अभियुक्तों की दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध उत्तराखंड उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । दूसरी ओर, अपीलार्थी कुलदीप कौर ने विचारण न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उपरोक्त उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय को उचित ठहराते हुए अपीलार्थी कुलदीप कौर को दोषी पाया और उसकी अपील खारिज कर दी किन्तु शेष अभियुक्तों की दोषमुक्ति के विरुद्ध राज्य द्वारा फाइल की गई अपील भी खारिज कर दी । राज्य ने दोषमुक्ति के इस आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील नहीं की किन्तु कुलदीप कौर ने उच्च न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय ने अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय का परिशीलन किया है । हमने उन निर्णयों का भी

परिशीलन किया है जिसके द्वारा पति, श्वसुर, देवर और ननदों को विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किया गया था और ऐसे निर्णय की पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है । जहां तक इस अपीलार्थी का संबंध है, उसे भी दहेज प्रपीड़न के आरोपों से दोषमुक्त किया गया है किंतु अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 306 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है । मृतका के पति से संबंधित विचारण न्यायालय के निर्णय का परिशीलन करने पर यह दर्शित होता है कि मृतका के पिता अर्थात् अभि. सा. 1 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि अभियुक्तों द्वारा सगाई के दिन से लेकर विवाह होने तक दहेज की कोई भी मांग नहीं की गई थी । जो कुछ स्त्रीधन के रूप में दिया गया था वह रीति-रिवाज और उसकी इच्छानुसार उपहार के रूप में उसकी पुत्री को दिया गया था । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि उसकी पुत्री ने उसे यह नहीं बताया था कि वह उपकार सिंह की अनुपस्थिति में अपने वैवाहिक गृह में अपनी सास, श्वसुर, ननद और पति तथा ज्येष्ठ द्वारा दहेज की मांग किए जाने पर खिन्न रहती थी । इस साक्षी ने स्वयं यह कथन किया है कि ईश्वर ही यह जानता है कि उसकी पुत्री ने बिना किसी कारण के आत्महत्या क्यों की । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि यह कहना सत्य है कि न तो अभियुक्तों ने उसकी पुत्री को आत्महत्या करने के लिए दुष्प्रेरित किया है और न ही उन्होंने उसे तंग किया । न्यायालय ने इस मामले में सूक्ष्मता से विचार किया है और अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य का विश्लेषण किया है । हमारी सुविचारित राय में अपीलार्थी के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया साक्ष्य से दंड संहिता की धारा 306 के अधीन मामला सिद्ध नहीं होता है । अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य के आधार पर अपीलार्थी की दोषसिद्धि कायम नहीं रखी जा सकती है । मामले के तथ्यों और अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य पर विचार करने पर विचारण न्यायालय ने वर्तमान अपीलार्थी को छोड़कर सभी अभियुक्तों को दोषमुक्त किया था और उच्च न्यायालय द्वारा उक्त निर्णय की पुष्टि भी की गई । हमें अपीलार्थी के विरुद्ध विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषसिद्धि के उस निर्णय से जिसकी पुष्टि अन्य न्यायालय द्वारा की गई है, सहमत होने के लिए कोई भी ठोस कारण दिखाई नहीं देता है । (पैरा 15, 16 और 17)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2014 की दांडिक अपील सं. 2267.

2006 के दांडिक अपील सं. 2013 में उत्तराखंड उच्च न्यायालय, नैनीताल द्वारा पारित तारीख 3 जनवरी, 2013 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री हुजैफा अहमदी (ज्येष्ठ अधिवक्ता), राजीव सिन्हा, रनबीर सिंह कुंडू, रोहन शर्मा और विश्व पाल सिंह

प्रत्यर्थी की ओर से श्री पंकज के. सिंह और राहुल वर्मा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. वाई. इकबाल ने दिया ।

न्या. इकबाल – इजाजत प्रदान की जाती है ।

2. यह अपील 2006 की दांडिक अपील सं. 213 में उत्तराखंड उच्च न्यायालय के तारीख 3 जनवरी, 2013 के उस निर्णय और आदेश से उद्‌भूत होकर विशेष इजाजत द्वारा फाइल की गई है जिसके अनुसार उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील खारिज की है और विचारण न्यायालय के उस निर्णय की पुष्टि की है जिसके द्वारा विचारण न्यायालय ने कुलदीप कौर को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में 'दंड संहिता' कहा गया है) की धारा 306 के अधीन दोषसिद्ध करते हुए 5,000/- रुपए के जुर्माने के साथ तीन वर्ष का कठोर कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया था । उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध राज्य द्वारा फाइल की गई अपील भी खारिज कर दी ।

3. संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि तारीख 6 जून, 2001 को इस मामले में के शिकायतकर्ता अर्थात् कप्तान जगतार सिंह (अभि. सा. 1) ने पुलिस थाना सितारगंज में रिपोर्ट (प्रदर्श-ए1) दर्ज कराई जिसमें यह कथन किया गया था कि उसकी पुत्री जगप्रीत कौर का विवाह तारीख 1 मार्च, 2001 को हरपाल सिंह के पुत्र उपकार सिंह के साथ हुआ था । शिकायतकर्ता ने अपनी क्षमता के अनुसार विवाह में विवाह संबंधी सामान दिया था किंतु उसकी पुत्री के ससुराल वालों ने कार आदि मांगने लगे । यह भी शिकायत की गई है कि जगप्रीत कौर ने इत्तिलाकर्ता को यह भी बताया था कि उसके ससुराल वाले दहेज की मांग पूरी न किए जाने के कारण उसे तंग करते हैं और 5/6 जून, 2001 की मध्य रात्रि में उसे आत्महत्या करने के लिए विवश कर दिया गया । इस शिकायत के आधार पर, अभियुक्तों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन मामला रजिस्ट्रीकृत किया गया और पुलिस ने एक छोटी बोतल कब्जे में ली जिसका ढक्कन थोड़ा फटा हुआ था और उस पर "साइपरमेथ्रिन हाई इमलसिफेबल कंसंट्रेट (वैट) एलिटोमिन 100 ई.सी." लिखा हुआ था । एक डायरी (प्रदर्श-ए2) भी अभिगृहीत की गई जो मृतका द्वारा लिखी गई थी । शव को शवपरीक्षण के लिए भेज दिया गया और मृतका की गर्दन पर फांसी के चिह्न के अतिरिक्त कोई भी स्पष्ट क्षति दिखाई नहीं दे रही थी । संबद्ध चिकित्सक के अनुसार मृतका की मृत्यु का कारण श्वासावरोध पाया गया जो मृत्युपूर्व फांसी पर लटकाने के परिणामस्वरूप हुआ था ।

4. अन्वेषण किए जाने पर, दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोप पत्र मजिस्ट्रेट के न्यायालय में प्रस्तुत किया गया जिसने मामले को विचारण के लिए सेशन न्यायालय के सुपुर्द कर दिया । विचारण न्यायालय ने अभियुक्तों अर्थात् सास श्रीमती कुलदीप कौर और देवर गुरलाल सिंह और राकेश ग्रोवर को दंड संहिता की धारा 498क/304ख तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3/4 के अधीन आरोपित किया जिस पर अभियुक्तों ने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण की मांग की ।

5. यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि अभियुक्त हरपाल (श्वसुर) की मृत्यु हो चुकी है, इसलिए उसके प्रति मामला उपशमित किया जाता है, और चूंकि मृतका के पति उपकार सिंह और ननद रूपेन्द्र कौर और सतेन्द्र कौर आरोप पत्र फाइल किए जाने के समय मौजूद नहीं थे, इसलिए उनके अभिलेख अलग कर दिए गए और बाद के प्रक्रम पर उनके विरुद्ध अलग से आरोप पत्र फाइल किया गया । उस मामले में विचारण न्यायालय ने इन अभियुक्तों को उन पर लगाए गए अभिकथनों के संबंध में संदेह का लाभ देते हुए दोषमुक्त कर दिया ।

6. अभियोजन पक्ष ने श्रीमती कुलदीप कौर और गुरलाल सिंह तथा राकेश ग्रोवर के विरुद्ध अपना पक्षकथन साबित करने के लिए आठ साक्षियों अर्थात् मृतका का पिता कप्तान जगतार सिंह (अभि. सा. 1), मृतका की चचेरी बहिन श्रीमती गुरमीत कौर (अभि. सा. 2), मृतका का नातेदार प्यारा सिंह (अभि. सा. 3), शवपरीक्षण करने वाले चिकित्सक डा. आर. ए. केडिया (अभि. सा. 4), तहसीलदार हरक सिंह रावत (अभि. सा. 5), बलवंत सिंह (अभि. सा. 6), पुलिस उप-निरीक्षक सोहन पाल सिंह (अभि. सा. 7) और अन्वेषक अधिकारी दलीप सिंह (अभि. सा. 8) की परीक्षा की है । प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा तीन साक्षियों की परीक्षा कराई गई है । दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अभियुक्तों के समक्ष अपराध में फंसाने वाला साक्ष्य रखा गया जिस पर अभियुक्तों ने यह निवेदन किया कि इस मामले में उन्हें मिथ्या फंसाया गया है ।

7. अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य और सामग्री का मूल्यांकन करने पर विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि मृतका ने दहेज की मांग को लेकर उसके साथ की गई क्रूरता के कारण आत्महत्या नहीं की और अपीलार्थी तथा अन्य सह-अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 498क/304ख और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के अधीन दंडनीय अपराधों से दोषमुक्त कर दिया । तथापि, अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 306 के अधीन दोषी अभिनिर्धारित किया और उसे तीन वर्ष का कारावास भोगने और

5,000/- रुपए जुर्माने का संदाय करने के लिए दंडादिष्ट किया ।

8. प्रत्यर्थी राज्य ने विचारण न्यायालय के इस विनिश्चय से व्यथित होकर उसके द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । अभियुक्त-अपीलार्थी ने दंड संहिता की धारा 306 के अधीन अपनी दोषसिद्धि को चुनौती देते हुए भी अपील फाइल की । पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों को सुनने और अपने समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य और दस्तावेजों का मूल्यांकन करने के पश्चात् उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने विचारण न्यायालय के निर्णय की पुष्टि करते हुए अपीलें खारिज कर दीं ।

9. इसलिए मृतका की सास द्वारा यह अपील फाइल की गई है ।

10. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री हुजैफा अहमदी ने प्रारंभ में ही यह दलील दी है कि विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को छोड़कर सभी अभियुक्तों को दोषमुक्त किया है और अपीलार्थी पहले ही विचारण के दौरान अभिरक्षा में लगभग छह मास का कारावास भोग चुकी है और वह लगभग 86 वर्ष की एक वृद्ध महिला है । यह भी दलील दी गई है कि अपीलार्थी की हृदय-शल्य चिकित्सा हो चुकी है और वह वृद्ध अवस्था से संबंधित कई बीमारियों से पीड़ित है और वह व्यावहारिक रूप से शैयाग्रस्त है ।

11. अपीलार्थी की ओर से यह दलील दी गई है कि मृतका के पिता (अभि. सा. 1) ने परिवार के सभी सदस्यों के विरुद्ध दहेज की मांग के संबंध में केवल सामान्य अभिकथन किए हैं और वर्तमान अपीलार्थी के विरुद्ध कोई भी विशिष्ट अभिकथन नहीं किए गए हैं । विचारण न्यायालय ने अपीलार्थियों को दोषसिद्ध करने में मृतका द्वारा लिखी गई डायरी की अंतर्वस्तु का अवलंब लिया है । तथापि, विचारण न्यायालय ने अभियुक्तों द्वारा की गई दहेज की मांग के संबंध में अभि. सा. 1, अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 के कथनों में विरोधाभास पाया है और मृतका ने अपनी डायरी में इन अभियुक्तों द्वारा की गई दहेज की मांग के संबंध में कुछ भी नहीं लिखा है, अतः साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख के अधीन दहेज-मृत्यु के बाबत कोई भी उपधारणा नहीं की जा सकती है ।

12. ज्येष्ठ विद्वान् काउंसेल ने हमारा ध्यान मृतका के पति के पृथक् रूप से किए गए विचारण में विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों और मताभिव्यक्तियों की ओर दिलाया है जो इस प्रकार है :–

> .... डायरी का परिशीलन करने से यह प्रतीत होता है कि मृतका अभियुक्तों और परिवार के सदस्यों द्वारा उसके साथ किए जा रहे

व्यवहार से प्रसन्न नहीं थी और वह अवसादग्रस्त हो गई थी । वस्तुओं की ओर मृतका की संवेदना अधिक प्रतीत होती है । अभि. सा. 1 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में मृतका की मानसिक दशा और उसके स्वभाव के बारे में कथन किया है कि उसकी पुत्री (मृतका) अशिक्षित थी और नगरों में घूमना पसंद करती थी । मृतका की प्रवृत्ति उसके बचपने से ही ऐसी थी कि वह किसी भी बात पर व्याकुल हो जाती थी, जबकि उसके वैवाहिक गृह में कोई भी कमी नहीं थी और न ही उसके मायके में किसी प्रकार की कोई समस्या थी । मृतका का स्वभाव ऐसा था कि वह अवसादग्रस्त हो जाया करती थी ; वह अवसाद के रोग से ग्रसित थी । इस रोग के लिए उसका पहले भी उपचार किया गया था किंतु उसके सोच-विचार में कोई बदलाव नहीं आया । मृतका के भाई अर्थात् अभि. सा. 6 ने अपने अभिसाक्ष्य में यह अभिकथन किया है कि उसकी बहिन प्रीति अवसादग्रस्त थी । अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 7) ने अपनी मुख्य परीक्षा में यह कथन किया है कि घटनास्थल से एक सील लगी हुई बोतल बरामद हुई थी जिसका ढक्कन फटा हुआ था । अन्वेषक अधिकारी द्वारा इस संबंध में रिपोर्ट तैयार की गई है ....। इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि घटनास्थल से बरामद की गई बोतल पर एक्टोमिन 100 ई/सी लिखा हुआ था । अन्वेषक अधिकारी ने बोतल में पाए गए रसायन के संबंध में कोई भी रसायनिक परीक्षण नहीं कराया है । उसने इस संबंध में कोई अन्वेषण नहीं किया है कि बोतल में पाई गई औषधि किस काम में आती है । इस औषधि का प्रयोग अवसाद की बीमारी के लिए भी किया जा सकता है । इस प्रकार अभिलेख पर उपलब्ध डायरी में लिखे गए कथनों से, जो अभिकथित रूप से अभि. सा. 1, अभि. सा. 6 और अभि. सा. 7 द्वारा दिए गए साक्ष्यों के संबंध में मृतका द्वारा लिखे गए हैं, यह स्पष्ट हो जाता है कि मृतका अत्यंत संवेदनशील थी और वह सामान्य परिस्थितियों में अवसाद का शिकार हो सकती थी । ऐसी स्थिति में, मृतका की विशेष देखभाल और उसके साथ सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार किया जाना आवश्यक था किंतु उसके पति और परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा उसकी मानसिक दशा को समझने में अक्षम होना मृतका के पति और उसके परिवार के सदस्यों की एक बड़ी गलती है किंतु वे इसके लिए किसी भी अपराध के दोषी अभिनिर्धारित नहीं किए जा सकते हैं ।

*　　　*　　　*　　　*

वर्तमान मामले में, अभियोजन साक्ष्य के आधार पर निकाले गए निष्कर्षों से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि मृतका को अंदर से बंद

किए गए कमरे में फांसी पर लटके हुए पाया गया है, जहां से उसे शीशा तोड़कर और दरवाजा खोलकर बाहर निकाला गया है ।

13. श्री अहमदी ने यह दलील दी है कि विचारण न्यायालय द्वारा निकाला गया वह निष्कर्ष जिसमें याची को दंड संहिता की धारा 306 के अधीन दोषी अभिनिर्धारित किया गया है, अटकलों और अनुमानों पर आधारित है । अपीलार्थी से संबंधित निर्णय में विचारण न्यायालय ने मृतका की डायरी में लिखी हुई पंक्ति को उद्धृत किया है जो इस प्रकार है, "वह मुझसे यह चाहती है कि मैं देर तक काम करूं ।" यह दलील दी गई है कि विचारण न्यायालय ने यह अवधारित करने में गलती की है कि जब मृतका ने अपनी डायरी में उपरोक्त पंक्ति लिखी थी तब उसका संकेत अपीलार्थी की ओर था । यह भी दलील दी गई है कि अपीलार्थी की दोषसिद्धि अपास्त किए जाने योग्य है चूंकि निचले दोनों न्यायालय यह मूल्यांकन करने में असफल रहे हैं कि अभियोजन पक्ष ने अभिलेख पर ऐसा कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है जिससे यह दर्शित होता हो कि आत्महत्या और अभिकथित क्रूरता के बीच कोई सीधा संबंध था । चूंकि निचले दोनों न्यायालयों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि दहेज की कोई मांग नहीं की गई थी और न ही दहेज की मांग के संबंध में मृतका के साथ क्रूरता की गई थी और अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 304ख, 498क और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के अधीन आरोप से दोषमुक्त कर दिया, इसलिए निचले न्यायालय ऐसा कोई प्रतिवादात्मक मत व्यक्त कर ही नहीं सकते थे कि मृतका ने अपीलार्थी द्वारा कारित की गई क्रूरता के कारण आत्महत्या की है । यहां तक कि मृतका ने डायरी में भी अपीलार्थी के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं लिखा है । डायरी के ही परिशीलन से यह दर्शित हो जाता है, जैसा कि विचारण न्यायालय द्वारा मृतका के पति सहित अन्य अभियुक्तों के विचारण में दिए गए विनिश्चय में व्यक्त किया गया है कि मृतका अवसादग्रस्त थी और वह जीना नहीं चाहती थी ।

14. राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने इस पर विवाद नहीं किया है कि पति, श्वसुर, देवर और दो ननदों को दोषमुक्त करने के संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के विरुद्ध राज्य ने अपील की थी किंतु उच्च न्यायालय द्वारा वह अपील खारिज की गई । तथापि, इस न्यायालय के समक्ष राज्य द्वारा कोई भी अपील फाइल नहीं की गई है । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि दंड संहिता की धारा 306 के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि पूर्णतया न्यायोचित है ।

15. हमने विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय का परिशीलन किया है । हमने उन निर्णयों का भी परिशीलन किया है जिसके द्वारा पति, श्वसुर, देवर और ननदों को विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किया गया था और ऐसे निर्णय की पुष्टि उच्च न्यायालय

द्वारा की गई है । जहां तक इस अपीलार्थी का संबंध है, उसे भी दहेज प्रपीड़न के आरोपों से दोषमुक्त किया गया है किंतु अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 306 के अधीन दोषसिद्ध किया गया है ।

16. मृतका के पति से संबंधित विचारण न्यायालय के निर्णय का परिशीलन करने पर यह दर्शित होता है कि मृतका के पिता अर्थात् अभि. सा. 1 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कथन किया है कि अभियुक्तों द्वारा सगाई के दिन से लेकर विवाह होने तक दहेज की कोई भी मांग नहीं की गई थी । जो कुछ स्त्रीधन के रूप में दिया गया था वह रीति-रिवाज और उसकी इच्छानुसार उपहार के रूप में उसकी पुत्री को दिया गया था । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि उसकी पुत्री ने उसे यह नहीं बताया था कि वह उपकार सिंह की अनुपस्थिति में अपने वैवाहिक गृह में अपनी सास, श्वसुर, ननद और पति तथा ज्येष्ठ द्वारा दहेज की मांग किए जाने पर खिन्न रहती थी । इस साक्षी ने स्वयं यह कथन किया है कि ईश्वर ही यह जानता है कि उसकी पुत्री ने बिना किसी कारण के आत्महत्या क्यों की । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि यह कहना सत्य है कि न तो अभियुक्तों ने उसकी पुत्री को आत्महत्या करने के लिए दुष्प्रेरित किया और न ही उन्होंने उसे तंग किया है ।

17. हमने इस मामले में सूक्ष्मता से विचार किया है और अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य का विश्लेषण किया है । हमारी सुविचारित राय में अपीलार्थी के विरुद्ध प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से दंड संहिता की धारा 306 के अधीन मामला सिद्ध नहीं होता है । अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य के आधार पर अपीलार्थी की दोषसिद्धि कायम नहीं रखी जा सकती । मामले के तथ्यों और अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य पर विचार करने पर, विचारण न्यायालय ने वर्तमान अपीलार्थी को छोड़कर सभी अभियुक्तों को दोषमुक्त किया था और उच्च न्यायालय द्वारा उक्त निर्णय की पुष्टि भी की गई । हमें अपीलार्थी के विरुद्ध विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषसिद्धि के उस निर्णय से जिसकी पुष्टि अन्य न्यायालय द्वारा की गई है, सहमत होने के लिए कोई भी ठोस कारण दिखाई नहीं देता है ।

18. उपर्युक्त कारणों के आधार पर यह अपील मंजूर की जाती है और दंड संहिता की धारा 306 के अधीन अपीलार्थी की दोषसिद्धि का निर्णय अपास्त किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

अस.

[2015] 1 उम. नि. प. 195

विजय पाल सिंह और अन्य

बनाम

उत्तराखंड राज्य

16 दिसम्बर, 2014

न्यायमूर्ति कुरियन जोसफ और न्यायमूर्ति अभय मनोहर सपरे

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और 304ख [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख] – स्त्री की उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर दहेज मृत्यु – चिकित्सा साक्ष्य के अनुसार मृत्यु गला घोंटने के कारण श्वासावरोध होने के परिणामस्वरूप होना – यदि दहेज मृत्यु के किसी मामले में मानव वध होने का प्रत्यक्ष या पारिस्थितिक साक्ष्य है, तो अभियोजन पक्ष और न्यायालय आपराधिक मानव वध के प्रश्न पर आंख नहीं मूंद सकता है और अपराधी को दंडित करने से प्रविरत नहीं रह सकता है चूंकि धारा 304ख और धारा 302 का अनुकल्प नहीं है ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 304ख [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख] – दहेज मृत्यु – मृतका से दहेज की मांग न करने का अभिवाक् – दहेज की कोई मांग जिससे कि यह धारा 304ख और धारा 498क की परिधि के अधीन आ सके, केवल विवाहित स्त्री से किया जाना आवश्यक नहीं है और ऐसी मांग विवाहित स्त्री के पिता, माता, भाई आदि से भी की जा सकती है तथा उनसे की गई कोई मांग विवाहित स्त्री से की गई किसी मांग जितनी ही महत्वपूर्ण है ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 304ख और 498क [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख] – दहेज मृत्यु – स्त्री के साथ क्रूरता और तंग करना – क्रूरता या तंग करने की बात को सदैव शारीरिक हिंसा के रूप में दर्शित किया जाना आवश्यक नहीं है और ये तथ्य कि विवाहित स्त्री अपनी ससुराल गई थी और ससुराल वालों ने उसे वापस लाने के लिए पूर्व-शर्त के रूप में दहेज की मांग की थी और विवाद्यक को सुलझाने के लिए एक पंचायत भी बुलाई गई थी, शारीरिक न सही किंतु मानसिक क्रूरता करने और तंग करने के पर्याप्त सूचक हैं तथा धारा 304ख और 498क के सभी संघटक सिद्ध होने पर दोषसिद्धि उचित है ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 304ख और 498क [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख] – दहेज मृत्यु – उपधारणा – मृतका के पति के छोटे भाई और जीजा को अपराध में अंतर्ग्रस्त किया जाना – मृतका के पिता के सिवाय प्रमुख साक्षियों द्वारा उनकी शनाख्त करने में असमर्थ रहना – यद्यपि धारा 304ख के अधीन उपधारणा उन सभी नातेदारों के विरुद्ध की जानी चाहिए जिन्होंने मृतका को दहेज की मांग के संबंध में तंग किया हो, तो भी ऐसा साक्ष्य होना आवश्यक है जिसका पति या प्रत्येक नातेदार को इस बाबत संयोजित करने के लिए खंडन नहीं किया गया हो, इसलिए दोनों अभियुक्तों को दोषसिद्ध करना सुरक्षित नहीं होगा ।

नरेन्द्र सिंह (द्वितीय अपीलार्थी) पुत्र विजय पाल सिंह (प्रथम अपीलार्थी) का विवाह मृतका सरोज पुत्री रमेश सिंह (अभि. सा. 1) के साथ तारीख 10 फरवरी, 1991 को हुआ था । तारीख 25 मई, 1991 को प्रथम अपीलार्थी-विजय पाल सिंह द्वारा अपने पुत्र राकेश सिंह के माध्यम से अभि. सा. 1 को यह सूचित किया गया कि सरोज तारीख 23/24 मई, 1991 की मध्यवर्ती रात्रि से गुम है । अभि. सा. 1 ने उसके पश्चात् पुलिस थाने में एक शिकायत दी । उसी दिन ग्राम प्रधान (अभि. सा. 2) ने पुलिस थाने में यह कथन करते हुए एक रिपोर्ट दी कि सूखे नामक व्यक्ति ने उसे यह सूचित किया है कि उसने जंगल के क्षेत्र में सड़क के पास जली हुई हालत में एक अज्ञात स्त्री का शव देखा है । उसके पश्चात् भारतीय दंड संहिता की धारा 201 के साथ पठित धारा 302 के अधीन मामला दर्ज किया गया । मृतका के पिता को पुलिस से सूचना मिली कि उन्हें गांव साहसपुरी के जंगल से एक अज्ञात महिला का अध-जला शव बरामद हुआ है और उसे मरणोत्तर परीक्षा के लिए मुरादाबाद भेजा गया है । यह सूचना प्राप्त होने पर वह मरणोत्तर परीक्षा के स्थल पर गया और शव तथा शव पर के अध-जले कपड़ों, झुमके, अंगूठी, छल्ला और चूड़ियों को देखकर उसने शव की पहचान अपनी पुत्री सरोज के रूप में की । मृतका के पिता-रमेश सिंह ने पुलिस थाने में यह अभिकथन करते हुए एक अन्य अर्जी दी कि उसकी पुत्री सरोज विवाह के पश्चात् अपने पति नरेन्द्र सिंह के साथ दो बार अपनी ससुराल गई थी और तीसरी बार तारीख 19 मई, 1991 को गई थी । यह अभिकथन किया गया कि अपीलार्थी लगातार टेलीविजन, फ्रिज़ और कूलर के दहेज की मांग कर रहे थे और उसने इस मांग को पूरा करने का आश्वासन दिया था । किंतु अपनी कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण वह उन मांगों को तुरंत पूरा नहीं कर सका । जब सरोज का

पति दूसरी बार उसकी पुत्री सरोज को उसकी ससुराल ले जाने के लिए उसके घर आया, तो उसके साथ उसका पिता, उसका छोटा भाई और उसका जीजा आया था और उन्होंने उसे दहेज की मांग पूरी न करने पर गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी थी । दहेज की मांग पूरी नहीं होने पर उन्होंने सरोज को भी नुकसान पहुंचाने की धमकी दी थी । अभियुक्त-अपीलार्थियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 304ख, 302, 498क और 201 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप विरचित किए गए । अपर सेशन न्यायाधीश ने सभी अभियुक्तों को मुख्यतः इन दो आधारों पर सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया कि शव शनाख्त करने योग्य हालत में नहीं था और दहेज के लिए क्रूरता करने या तंग करने का कोई साक्ष्य नहीं है । राज्य ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि अभियुक्तों ने मृतका की हत्या की है और उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 304ख, 498क और 201 के अधीन दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया । अभियुक्तों ने उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – साधारणतया यह देखने में आता है कि ऐसे मामलों में जहां किसी विवाहित स्त्री की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है, तो यह देखने के लिए प्रायिक तौर पर कोई जांच नहीं की जाती है कि क्या कोई ऐसा प्रत्यक्ष या पारिस्थितिक साक्ष्य है जिससे कि अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आता हो । कभी-कभी भारतीय दंड संहिता की धारा 302 एक आनुकल्पिक आरोप के रूप में लगाई जाती है । ऐसे मामलों में जहां यह दर्शित करने के लिए प्रत्यक्ष या पारिस्थितिक साक्ष्य है कि अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत आता है, वहां विचारण न्यायालय को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप विरचित करना चाहिए, भले ही पुलिस द्वारा रिपोर्ट में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(2) के अधीन इस बाबत कोई राय व्यक्त न की गई हो । यदि विचारण न्यायालय महसूस करे तो भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख आनुकल्पिक आरोप के रूप में लगाई जा सकती है । विचारण के अनुक्रम में, यदि न्यायालय यह पाता है कि यह सिद्ध करने के लिए कोई साक्ष्य, प्रत्यक्ष या पारिस्थितिक, नहीं है कि मृत्यु मानव वध नहीं है और युक्तियुक्त संदेह के परे सबूत उपलब्ध नहीं

है, तो ऐसी स्थिति में यदि भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन संघटक उपलब्ध हैं, तो विचारण न्यायालय को उक्त उपबंध के अधीन कार्यवाही करनी चाहिए । यद्यपि वर्तमान मामले में सेशन न्यायालय द्वारा अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोपित किया गया था, फिर भी विचारण न्यायालय ने इस बाबत जांच करने का कोई गंभीर प्रयत्न नहीं किया । यदि दहेज मृत्यु के किसी मामले में मानव वध होने का साक्ष्य उपलब्ध है, तो अन्वेषक अधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन मामले का अन्वेषण करे और अभियोजन पक्ष इस बाबत कार्यवाही करे और न्यायालय इस परिप्रेक्ष्य में दृष्टिकोण अपनाए । केवल इस कारण कि विपदग्रस्त एक विवाहित स्त्री है जिसकी उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर अस्वाभाविक मृत्यु हुई है और यह साक्ष्य है कि दहेज की मांग के लिए उसके साथ क्रूरता की गई थी या उसे तंग किया गया था, अभियोजन पक्ष और न्यायालय आपराधिक मानव वध के प्रश्न पर, यदि इस बाबत प्रत्यक्ष या पारिस्थितिक साक्ष्य है, आंख नहीं मूंद सकता है और अपराधी को दंडित करने से प्रविरत नहीं रह सकता है । प्रस्तुत मामले में, अभियोजन पक्ष ने मृत्यु-पूर्व की क्षतियों को स्पष्ट करने का कोई प्रयत्न नहीं किया, जिनसे निश्चायक रूप से इंगित होता है कि मृत्यु गला घोंटने से हुए श्वासावरोध के कारण हुई थी । फिर भी, यह हैरान करने वाली बात है, हत्या के अपराधी (अपराधियों) को इससे संयोजित करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया गया । (पैरा 19, 21 और 22)

इस मामले में चिकित्सा साक्ष्य के अतिरिक्त मुख्य साक्ष्य विपदग्रस्त के पिता अभि. सा. 1-रमेश सिंह, अभि. सा. 5 और 6-जो गांव के निवासी हैं और अभि. सा. 7-मृतका की बड़ी बहिन के पति का है । अभि. सा. 1 के अनुसार, वह अपनी पुत्री को उसकी ससुराल से लेकर आया था । उसने उसे अपने ससुराल वालों की दहेज की मांग के बारे में बताया था । मृतका केवल दो बार ससुराल गई थी और तीसरी बार जब इस साक्षी का दामाद उसकी पुत्री को लेने आया था, तब उसका पिता विजय पाल सिंह, छोटा भाई राकेश सिंह और जीजा ज्ञान चन्द्र उसके साथ आए थे और टेलीविजन, फ्रिज़ और कूलर की उनकी मांग पूरी न करने की दशा में गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी थी । अभि. सा. 5 और 6 इसके साक्षी हैं । अभि. सा. 5-डा. मुशाहिद हुसैन गांव में दो दशक से भी अधिक समय से सेवारत एक पंजीकृत चिकित्सा व्यवसायी है । उसके अनुसार, मृतका सरोज के पति के नातेदार और उसका ससुर तथा अन्य नातेदार

और अधिक दहेज की मांग कर रहे थे । उसने एक बार विवाद को सुलझाने के लिए अपनी हैसियत का उपयोग किया था । इस साक्षी के साक्ष्य में यह बात भी आई है कि इस विवाद्यक को लेकर एक बार पंचायत बुलाई गई थी और यहां तक कि पंचायत में भी स्वयं उसकी (अभि. सा. 5) की मौजूदगी में पति और उसके पिता तथा अन्य नातेदारों ने दहेज की मांग की थी । अभि. सा. 6 ग्राम सभा, आलमपुर का ग्राम प्रधान है । उसने भी इस आशय का साक्ष्य दिया है कि मृतका सरोज के ससुराल वालों की ओर से और अधिक दहेज की मांग की जा रही थी । इस साक्षी ने भी मामले को सुलझाने के लिए पंचायत बुलाने के संबंध में साक्ष्य दिया है और इस साक्षी की मौजूदगी में भी मृतका सरोज के ससुराल वाले और अधिक दहेज देने का आग्रह कर रहे थे । अन्य साक्ष्य मृतका की बड़ी बहिन के पति-अभि. सा. 7 का है । केवल अभि. सा. 1 और अभि. सा. 7 ने, जो क्रमशः मृतका का पिता और मृतका की बड़ी बहिन का पति हैं, इस आशय का साक्ष्य दिया है कि सभी अपीलार्थियों ने और अधिक दहेज देने की मांग की थी और मांग पूरी न होने पर परिणाम भुगतने की धमकी दी थी । मृत्यु विवाह के चार माह के भीतर हुई थी । यह दर्शित करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य है कि दहेज के लिए मांग की जा रही थी । इसके पश्चात्, एकमात्र संघटक जो सिद्ध किया जाना है, यह है कि क्या मृतका सरोज की मृत्यु से कुछ पूर्व दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में उसके साथ क्रूरता की गई थी या उसे तंग किया गया था या नहीं । श्री डे ने यह दलील दी यदि यह मान भी लिया जाए कि दहेज की मांग करने का साक्ष्य है, तो भी यह दर्शित करने के लिए कतई कोई साक्ष्य नहीं है कि मृतका सरोज से कोई मांग की गई थी । यह दलील स्वीकार करने योग्य नहीं है । दहेज की मांग, जिससे कि यह धारा 304ख या धारा 498क की परिधि के अधीन आ सके, विवाहित स्त्री से किया जाना आवश्यक नहीं है । मांग विवाहित स्त्री के पिता, माता, भाई, आदि से भी की जा सकती है । उनसे की गई कोई मांग विवाहित स्त्री से की गई किसी मांग जितनी ही महत्वपूर्ण है, चूंकि यदि मांग पूरी नहीं होती हैं तो सहन तो उसे ही करना होता है, जैसा कि प्रस्तुत मामले में घटित हुआ है । (पैरा 27, 28, 29 और 30)

यह आवश्यक नहीं है कि क्रूरता या तंग करने की बात को सदैव शारीरिक हिंसा के रूप में प्रदर्शित किया जाए । ये तथ्य कि विवाहित स्त्री अपनी ससुराल गई थी और ससुराल वालों ने उसे वापस लाने के लिए पूर्व-शर्त के रूप में दहेज की मांग की थी और विवाद्यक को सुलझाने के लिए स्थानीय स्तर पर एक पंचायत भी बुलाई गई थी, शारीरिक न सही

किंतु मानसिक क्रूरता करने और तंग करने के पर्याप्त सूचक हैं । इस प्रकार, प्रस्तुत मामले में भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के सभी संघटक सिद्ध किए गए हैं । (पैरा 31)

यद्यपि, भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन उन नातेदारों के विरुद्ध उपधारणा की जानी चाहिए जिन्होंने मृतका को दहेज की मांग के संबंध में तंग किया है, तो भी ऐसा साक्ष्य होना आवश्यक है जिसका पति या प्रत्येक नातेदार को इस बाबत संयोजित करने के लिए खंडन नहीं किया गया हो । खंडन प्रत्यक्ष साक्ष्य के बिना भी किया जा सकता है । यद्यपि मृतका के पिता-अभि. सा. 1 और मृतका की बड़ी बहिन के पति-अभि. सा. 7 ने यह कथन किया है कि राकेश सिंह और ज्ञान चन्द्र भी तब विजय पाल सिंह और नरेन्द्र सिंह-मृतका के पति के साथ थे जब वे उसके घर आए थे और दहेज की मांग की थी तथा धमकी दी थी, किंतु अभि. सा. 5 और अभि. सा. 6 के साक्ष्य में यह बात आई है कि मृतका सरोज के ससुराल के परिवार में ससुर-विजय पाल सिंह और पति-नरेन्द्र सिंह के सिवाय उन्हें किसी अन्य व्यक्ति की पहचान नहीं है । स्वयं अभि. सा. 1 के साक्ष्य में न केवल यह बात आई है कि छोटा भाई-राकेश सिंह कहीं और पढ़ रहा था और जीजा-ज्ञान चन्द्र किसी अलग गांव में रहता था । चूंकि स्वतंत्र साक्षी अभि. सा. 5 और 6 केवल मृतका के ससुर और पति को पहचानते थे, इसलिए इस न्यायालय का यह मत है कि यह निष्कर्ष निकालना सुरक्षित नहीं होगा कि राकेश सिंह और ज्ञान चंद्र के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख, 498क या धारा 201 के अधीन अपराध साबित होता है । इसलिए तृतीय अभियुक्त/अपीलार्थी-राकेश सिंह और चतुर्थ अभियुक्त/अपीलार्थी-ज्ञान चन्द्र की दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त किए जाते हैं । (पैरा 35 और 37)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2014]	(2014) 13 स्केल 96 : **बलजिन्द्र कौर** बनाम **पंजाब राज्य** ;	26
[2014]	(2014) 5 एस. सी. सी. 154 : **बसप्पा** बनाम **कर्नाटक राज्य** ;	33
[2013]	(2013) 7 एस. सी. सी. 256 : **जसविंद्र सैनी और अन्य** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार)** ;	20

[2010]	(2010) 12 एस. सी. सी. 59 : **गणपत** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य** ;	33
[2008]	(2008) 1 एस. सी. सी. 258 : **के. प्रकाशन्** बनाम **पी. के. सुरेन्द्रन्** ;	33
[2007]	(2007) 4 एस. सी. सी. 415 : **चन्द्रप्पा और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य** ;	33
[2006]	(2006) 10 एस. सी. सी. 313 : **कल्लू** उर्फ **मसीह और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	33
[2006]	(2006) 1 एस. सी. सी. 401 **टी. सुब्रह्मण्यन** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	33
[2005]	(2005) 9 एस. सी. सी. 113 : **मुथु कुट्टी और एक अन्य** बनाम **पुलिस निरीक्षक की** मार्फत **तमिलनाडु राज्य** ;	19
[2003]	(2003) 11 एस. सी. सी. 271 : **पंजाब राज्य** बनाम **करनैल सिंह** ;	33
[2002]	(2002) 10 एस. सी. सी. 461 : **भीम सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	33
[2002]	(2002) 10 एस. सी. सी. 277 : **आलमगिर सानी** बनाम **असम राज्य** ;	36
[2001]	(2001) 1 एस. सी. सी. 691 : **एम. नरसिंह राव** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	35
[1996]	(1996) 9 एस. सी. सी. 225 : **रमेश बाबूलाल दोशी** बनाम **गुजरात राज्य** ;	33
[1991]	(1991) 3 एस. सी. सी. 1 : **पंजाब राज्य** बनाम **इकबाल सिंह और अन्य** ;	24
[1991]	(1991) 1 एस. सी. सी. 371 : **श्रीमती शांति और एक अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	25
[1961]	ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 1316 : **कुंदन लाल रल्लाराम** बनाम **अभिरक्षक, बम्बई निष्क्रांत संपत्ति** ।	35

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2011 की दांडिक अपील सं. 37.

2001 की शासकीय अपील सं. 303 में नैनीताल स्थित उत्तराखंड उच्च न्यायालय के तारीख 10 जून, 2010 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री पी. के. डे, आर. के. राठोर, अभिजीत सिंह, अंदलीब नक़वी, सुदर्शन सिंह रावत और विजय पाल सिंह

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री तन्मय अग्रवाल और जतिन्द्र कुमार भाटिया

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति कुरियन जोसफ ने दिया ।

न्या. जोसफ – अपीलार्थियों ने 1991 के सेशन विचारण सं. 281 में तृतीय अपर सेशन न्यायाधीश, नैनीताल, कैम्प हल्द्वानी के समक्ष भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) (जिसे इसमें इसके पश्चात् भारतीय "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 34 के साथ पठित धारा 302, भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 304ख, भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और धारा 201 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए विचारण का सामना किया था । सेशन न्यायालय द्वारा सभी को दोषमुक्त कर दिया गया, किंतु राज्य द्वारा की गई अपील में उच्च न्यायालय ने उनको भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 304ख, भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और धारा 201 के अधीन दोषसिद्ध किया और उन्हें इन धाराओं के अधीन क्रमशः सात वर्ष के कठोर कारावास, 2,000/- रुपए के जुर्माने सहित दो वर्ष के कठोर कारावास और एक वर्ष के कठोर कारावास का दंडादेश दिया । इसलिए यह अपील फाइल की गई है ।

2. अभियोजन का पक्षकथन यह है कि द्वितीय अपीलार्थी-नरेन्द्र सिंह पुत्र विजय पाल सिंह-प्रथम अपीलार्थी का विवाह मृतका सरोज पुत्री रमेश सिंह के साथ तारीख 10 फरवरी, 1991 को हुआ था । तारीख 25 मई, 1991 को प्रथम अपीलार्थी-विजय पाल सिंह द्वारा अपने पुत्र राकेश सिंह के माध्यम से अभि. सा. 1 को यह सूचित किया गया कि सरोज तारीख 23/24 मई, 1991 की मध्यवर्ती रात्रि से गुम है । अभि. सा. 1 को यह सूचना तारीख 25 मई, 1991 को पूर्वाह्न में 8.00 बजे के आस-पास प्राप्त हुई और उसके पश्चात् उसने पुलिस थाना जसपुर में एक शिकायत दी ।

उसी दिन अभि. सा. 2-समर पाल सिंह, ग्राम प्रधान ने पुलिस थाना, दिलारी में एक रिपोर्ट उसमें यह कथन करते हुए दी कि सूखे नामक व्यक्ति ने उसे यह सूचित किया है कि उसने जंगल के क्षेत्र में सड़क के पास जली हुई हालत में एक अज्ञात स्त्री का शव देखा है । उसके पश्चात् भारतीय दंड संहिता की धारा 201 के साथ पठित धारा 302 के अधीन मामला दर्ज किया गया । अभि. सा. 8-अशोक कुमार को अन्वेषण का कार्य सौंपा गया । मृत्यु-समीक्षा की प्रायिक औपचारिकताएं पूरी की गईं और शव मरणोत्तर परीक्षा के लिए भेजा गया । अभि. सा. 10-डा. एस. के. अरोड़ा ने तारीख 26 मई, 1991 को अपराह्न में 4.40 बजे मरणोत्तर परीक्षा की ।

3. मृतका के पिता-रमेश सिंह ने तारीख 26 मई, 1991 को पुलिस थाना, दिलारी में यह अभिकथन करते हुए एक अन्य अर्जी दी कि उसकी पुत्री सरोज, आयु लगभग 20-22 वर्ष, का विवाह तारीख 10 फरवरी, 1991 को हुआ था और उसकी पुत्री विवाह के पश्चात् अपने पति नरेन्द्र सिंह के साथ दो बार कासमपुर, पुलिस थाना जसपुर, जिला नैनीताल अपनी ससुराल गई थी और तीसरी बार तारीख 19 मई, 1991 को गई थी । उसका दामाद नरेन्द्र सिंह दोपहर में 12.00 बजे आया था और अपराह्न में 4.00 बजे सरोज को अपने साथ ले गया था । यह अभिकथन किया गया कि अपीलार्थी लगातार टेलीविजन, फ्रिज़ और कूलर के दहेज की मांग कर रहे थे और उसने, यदि उसे कुछ समय दिया जाए, इस मांग को पूरा करने का आश्वासन दिया था । किंतु अपनी कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण वह उन मांगों को तुरंत पूरा नही कर सका । जब सरोज का पति दूसरी बार उसकी पुत्री सरोज को उसकी ससुराल ले जाने के लिए रमेश सिंह के घर आया, तो उसके साथ उसका पिता विजय पाल सिंह, उसका छोटा भाई राकेश सिंह और उसका जीजा ज्ञान चन्द्र आया था और उन्होंने उसे दहेज की मांग पूरी न करने पर गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी थी । दहेज की मांग पूरी नहीं होने पर उन्होंने सरोज को भी नुकसान पहुंचाने की धमकी दी थी । उक्त घटना अभि. सा. 1-रमेश सिंह के परिवार के सदस्यों, आस-पड़ोस के लोगों और कुछ ग्रामवासियों की मौजूदगी में घटी थी । आगे यह भी अभिकथन किया गया है कि उसका दामाद नरेन्द्र सिंह उसकी पुत्री के साथ इस आश्वासन पर गया था कि उनकी दहेज की मांगें पूरी कर दी जाएंगी । तारीख 25 मई, 1991 को पूर्वाह्न में लगभग 8.00 बजे राकेश सिंह उसके घर आया और उसे बताया कि सरोज तारीख 23/24 मई, 1991 की मध्यवर्ती रात्रि से गुम है । उसके

पश्चात् रमेश सिंह कासमपुर गया और सरोज के बारे में पूछताछ की किंतु उसके बारे में कोई जानकारी नहीं मिली ।

4. इस साक्षी को तारीख 26 मई, 1991 को पुलिस से सूचना मिली कि उन्हें तारीख 25 मई, 1991 को गांव साहसपुरी के जंगल से एक अज्ञात महिला का अध-जला शव बरामद हुआ है और उसे मरणोत्तर परीक्षा के लिए मुरादाबाद भेजा गया है । यह सूचना प्राप्त होने पर रमेश सिंह मरणोत्तर परीक्षा के स्थल पर गया और शव तथा शव पर के अध-जले कपड़ों, झुमके, अंगूठी, छल्ला और चूड़ियों को देखकर उसने शव की पहचान अपनी पुत्री सरोज के रूप में की । मरणोत्तर परीक्षा के पश्चात् उसने दाह-संस्कार के लिए शव की सुपुर्दगी ली । रमेश सिंह ने यह अभिकथन किया कि उसका दामाद नरेन्द्र सिंह, उसके दामाद का पिता विजय पाल सिंह, उसके दामाद का भाई राकेश सिंह और उसके दामाद का जीजा ज्ञान चन्द्र ने उसकी पुत्री सरोज की हत्या की है और गांव साहसपुरी के निकट शव को जलाकर उसे नष्ट करने की कोशिश की है । आगे यह भी अभिकथन किया गया कि विजय पाल सिंह ने मृतका के गुम होने की सूचना भेजकर उसे गुमराह किया ।

5. उपरोक्त शिकायत को देखते हुए, पुलिस थाना, दिलारी में तारीख 26 मई, 1991 को एक अन्य प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई और अन्वेषण का कार्य महेन्द्र सिंह त्यागी, पुलिस उप अधीक्षक-अभि. सा. 9 द्वारा संभाला गया । दंड प्रक्रिया सहिता, 1973 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "दंड प्रक्रिया संहिता" कहा गया है) की धारा 173(2) के अधीन उसकी रिपोर्ट के अनुसार अपीलार्थी भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख, 498क और 201 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3/4 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषी हैं ।

6. अपीलार्थियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 304ख, भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302, भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 498क और भारतीय दंड संहिता की धारा 201 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप विरचित किए गए । अपीलार्थियों को आरोप पढ़कर सुनाए गए और स्पष्ट किए गए, जिन्होंने दोषी न होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने का दावा किया ।

7. अभियोजन पक्ष ने अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए

शिकायतकर्ता और मृतका के पिता अभि. सा. 1-रमेश सिंह, ग्राम प्रधान अभि. सा. 2-समर पाल सिंह, जिसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्रदर्श केए-4 दी थी, अभि. सा. 3-सूखे, जिसने पहले शव को सड़क पर पड़े हुए देखा था और उसके पश्चात् इसके बारे में ग्राम प्रधान को सूचित किया था, बरामदगी ज्ञापन का साक्षी अभि. सा. 4-विक्रम सिंह, अभि. सा. 5-डा. मुशाहिद हुसैन और अभि. सा. 6-ईश्वर प्रसाद शर्मा, जो गांव का स्थानीय निवासी है, अभि. सा. 7-ब्रह्म पाल सिंह-मृतका की बड़ी बहिन का पति, अभि. सा. 8-अशोक कुमार रावत, जिसने प्रारंभ में मामले का अन्वेषण किया था, मामले का अन्वेषक अधिकारी अभि. सा. 9-महिन्द्र सिंह त्यागी-पुलिस उप अधीक्षक, अभि. सा. 10-डा. एस. के. अरोड़ा, जिसने मरणोत्तर परीक्षा की थी, अभि. सा. 11-हेमेन्द्र कुमार-फोटोग्राफर और अभि. सा. 12-समर पाल सिंह, मृत्यु-समीक्षा रिपोर्ट का साक्षी, की परीक्षा कराई । उसके पश्चात् दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 के अधीन अपीलार्थी/अभियुक्तों के कथन अभिलिखित किए गए । उनमें से प्रत्येक के समक्ष प्रश्न रूप में मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य रखे गए और उन्होंने उनके विरुद्ध किए गए अभिकथनों से इनकार किया । तथापि, उनके द्वारा अपनी प्रतिरक्षा में कोई मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया ।

8. अपर सेशन न्यायाधीश ने सभी अभियुक्तों को मुख्यतः दो आधारों पर सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया – (i) शव शनाख्त करने योग्य हालत में नहीं था और (ii) दहेज के लिए क्रूरता करने या तंग करने का कोई साक्ष्य नहीं है ।

9. राज्य ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 378 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की, जिसका तारीख 10 जून, 2010 के आक्षेपित निर्णय द्वारा निपटारा किया गया । उच्च न्यायालय साक्ष्य की विस्तारपूर्वक और सूक्ष्मता से चर्चा करने के पश्चात् पैरा 33 में निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचा :–

> "33. उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों में अभियोजन पक्ष ने प्रत्यर्थियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 304ख और धारा 498क के अधीन अपने पक्षकथन को संदेह के परे साबित किया है । उपरोक्त के अतिरिक्त, यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि अभि. सा. 10, डा. एस. के. अरोड़ा, जिसने मृतका के शव की मरणोत्तर परीक्षा की थी, ने मृतका के शरीर पर मृत्यु-पूर्व की दो क्षतियां पाईं थीं जो एक सिर पर और दूसरी गर्दन पर थी ।

उसने मृतका के शरीर पर दाह क्षतियां भी पाईं थीं जो मृत्यु होने के पश्चात् कारित की गईं थीं । अंततोगत्वा, उसने यह राय व्यक्त की कि मृतका की मृत्यु गला घोंटने के कारण श्वासावरोध की वजह से हुई थी । इस प्रकार, उपरोक्त तथ्यों से यह प्रकट होता है कि प्रत्यर्थी/अभियुक्तों ने पहले गांव कासमपुर में अपने घर पर मृतका की गर्दन दबाकर हत्या कारित की और उसके पश्चात् साक्ष्य नष्ट करने के लिए उन्होंने शव को जला दिया और इसे गांव कासमपुर से 35 किलोमीटर दूर गांव साहसीपुर के जंगल में सड़क पर फेंक दिया और शिकायतकर्ता रमेश सिंह को गुमराह करने के लिए उन्होंने प्रत्यर्थी/अभियुक्त राकेश के माध्यम से मृतका के गुम होने की मिथ्या सूचना भेजी । इस प्रकार, इस रीति में प्रत्यर्थी/अभियुक्तों ने भारतीय दंड संहिता की धारा 201 के अधीन दंडनीय अपराध भी कारित किया है ।"

10. उपरोक्त परिणाम के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष अभिलिखित किया गया :–

"इसलिए उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, मेरा यह सुविचारित मत है कि विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 304ख, 498क और 201 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषमुक्त करके ठीक और न्यायोचित नहीं किया है । अभियोजन पक्ष ने प्रत्यर्थी/अभियुक्तों के विरुद्ध पूर्वोक्त धाराओं के अधीन अपने पक्षकथन को सफलतापूर्वक संदेह के परे साबित किया है और उन्हें तद्नुसार दोषसिद्ध किया जाता है ।"

11. उपरोक्त निष्कर्ष के आधार पर निम्नलिखित दंडादेश पारित किया गया :–

"35. तद्नुसार, राज्य द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर की जाती है । तृतीय अपर सेशन न्यायाधीश, नैनीताल, कैंप हल्द्वानी द्वारा 1991 के सेशन विचारण सं. 281, राज्य बनाम विजय पाल और एक अन्य, में तारीख 22 जुलाई, 1995 को पारित किया गया निर्णय और आदेश तद्द्वारा अपास्त किया जाता है । प्रत्यर्थी–अभियुक्त विजय पाल सिंह, नरेन्द्र सिंह, राकेश और ज्ञान चन्द्र को तद्द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 304ख के अधीन दोषसिद्ध किया जाता है और उनमें से प्रत्येक को सात वर्ष के कठोर कारावास

से दंडादिष्ट किया जाता है । उनमें से प्रत्येक को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन भी दोषसिद्ध किया जाता है और प्रत्येक को दो वर्ष के कठोर कारावास और 2,000/-रुपए के जुर्माने सहित दंडादिष्ट किया जाता है तथा जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर व्यतिक्रमी छह मास का और कठोर कारावास भोगेगा । उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 201 के अधीन भी दोषसिद्ध किया जाता है और उनमें से प्रत्येक को एक वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया जाता है । जुर्माने के सिवाय सभी दंडादेश साथ-साथ चलेंगे । प्रत्यर्थी-अभियुक्तों को उनमें से प्रत्येक के विरुद्ध यथा अधिनिर्णीत दंडादेश भुगतने के लिए तुरंत अभिरक्षा में लिया जाए । प्रत्यर्थी-अभियुक्तों द्वारा अन्वेषण और विचारण की अवधि के दौरान पहले ही भोगी गई अवधि को समायोजित किया जाएगा ।"

12. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेल श्री पी. के. डे ने यह दलील दी कि यह न्यायालय अपीलार्थियों को विचारण न्यायालय द्वारा दी गई दोषमुक्ति में केवल इस कारण हस्तक्षेप न करे कि भिन्न मत संभव है । यह दलील दी गई कि अभियोजन पक्ष भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन अपराध के संघटकों को सिद्ध करने में पूरी तरह असफल रहा, इसलिए आक्षेपित निर्णय को अपास्त किया जाना चाहिए । विद्वान् काउंसेल श्री डे ने यह भी दलील दी कि विचारण न्यायालय द्वारा अपीलार्थियों को दोषमुक्त कर दिए जाने पर उच्च न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्ष में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था, क्योंकि इस निष्कर्ष को अभिलिखित करते समय केवल उसके पास ही सर्वप्रथम साक्ष्य का मूल्यांकन करने का अवसर था । आगे यह भी दलील दी गई कि किसी भी दशा में, इस न्यायालय द्वारा इस घटना के वर्ष 1991 का होने के कारण अपीलार्थियों को दिए गए दंडादेश को कायम न रखा जाए । जो भी हो, श्री डे ने यह दलील दी कि तृतीय और चतुर्थ अपीलार्थी, जो कि मृतका के पति-द्वितीय अपीलार्थी का छोटा भाई और जीजा, नरेन्द्र सिंह की बहिन का पति है को संयोजित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है । और श्री डे की अंतिम दलील यह है कि मामला उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया जाना चाहिए चूंकि उस न्यायालय ने दंडादेश पर अपीलार्थियों को दलीलें देने का अवसर देने से इनकार करके दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 के आज्ञापक उपबंधों का पालन नहीं किया है ।

13. तथापि, प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान्

काउंसेल श्री तन्मय अग्रवाल ने यह दलील दी कि विचारण न्यायालय के निष्कर्ष पूर्ण रूप से अनुचित होने के कारण उच्च न्यायालय ने निष्कर्ष को उलटकर और सही निष्कर्ष पर पहुंचकर पूर्णतः न्यायोचित कार्य किया है । राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल के अनुसार, वर्तमान मामले में भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के सभी संघटक बनते हैं और सभी अपीलार्थियों को अधिनिर्णीत किए गए दंड कायम रखे जाने चाहिएं ।

14. मरणोत्तर परीक्षा से मृतका के शरीर पर निम्नलिखित क्षतियां दर्शित होती हैं :–

> (i) सिर के अनुकपालीय भाग पर पश्चकपाल के नीचे 10 से. मी. x 4 से. मी. x खोपड़ी की गहराई तक विदीर्ण घाव, पार्श्वकपालीय और बाईं कनपटी की अस्थि का अस्थिभंग ।
>
> (ii) गर्दन पर सामने 20 से. मी. x 3 से. मी. का अर्ध गोलाकार का नील, नीचे रक्त-वहिका विदीर्ण और रक्त का थक्का मौजूद तथा कण्ठिका अस्थि के दोनों ओर के श्रृंग का अस्थिभंग ।

मृतका के शरीर पर एक और मरणोत्तर क्षति पाई गई, जो निम्नलिखित है :–

> "(i) दोनों हाथ-पांव, उदर, छाती, चेहरा और पीठ सहित पूरा शरीर जला हुआ ।"

15. मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट के अनुसार मृत्यु का कारण गला घोंटने के कारण श्वासावरोध होना था ।

16. वास्तव में, यह हैरान करने वाली बात है कि उच्च न्यायालय ने हमारे द्वारा पैरा 8 में यथा उद्धृत यह निष्कर्ष अभिलिखित करने के पश्चात् कि इस अपील में के अपीलार्थियों द्वारा कारित यह हत्या का मामला है, भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन समुचित दंडादेश अधिनिर्णीत करने से इनकार कर दिया । यह ऐसा मामला है जहां अपीलार्थियों ने भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन विचारण का सामना किया था और इसलिए उच्च न्यायालय समुचित दंड अधिनिर्णीत कर सकता था । उच्च न्यायालय ने ऐसा क्यों नहीं किया, इसके अधिसंभाव्य कारणों की हम बाद में चर्चा करेंगे ।

17. चूंकि इस मामले में अपराध की शिकार एक विवाहित स्त्री है और मृत्यु विवाह के सात वर्ष के भीतर होने के कारण न्यायालय ने, स्पष्ट तौर पर, इस मामले को एक दहेज मृत्यु का मामला मानने के लिए केवल

एक बिंदु पर विचार किया है । निस्संदेह, मृत्यु अस्वाभाविक परिस्थितियों में हुई है किंतु यदि ये निश्चित संकेत हैं कि मृत्यु मानव वध है, तो अभियोजन पक्ष और न्यायालय का प्रथम दृष्टिकोण यह पता लगाने का होना चाहिए था कि किसने वह हत्या कारित की । भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख, धारा 302 का अनुकल्प नहीं है । भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख, जो 1986 के अधिनियम सं. 43 के अनुसार तारीख 19 नवम्बर, 1986 से पुरःस्थापित की गई, की उत्पत्ति भारत के विधि आयोग की 91वीं रिपोर्ट से हुई है । यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि विधि आयोग द्वारा इस विषय को स्वयमेव अपने हाथ में लिया गया था । रिपोर्ट का पैरा 1.3 निम्न प्रकार से है :–

"1.3. यदि दहेज मृत्यु की किसी विशिष्ट घटना में तथ्य ऐसे हैं जिनसे विधि में पहले से ज्ञात अपराध के विधिक संघटकों का समाधान होता है, और यदि उन तथ्यों को अधिक कठिनाई के बिना साबित किया जा सकता है, तो अपराधी से जवाब-तलब करने के लिए विद्यमान दांडिक विधि को प्रत्यावर्तित किया जा सकता है । तथापि, व्यवहार में, दो मुख्य अड़चन उद्भूत होती हैं –

(i) या तो तथ्य पूर्ण रूप से किसी ज्ञात अपराध के कपोतखाने (दायरे) में नहीं आते हैं ; या

(ii) स्थिति की विलक्षणताएं ऐसी होती हैं कि प्रत्यक्ष रूप से अपराध में आलिप्त करने वाले तथ्यों को तद्द्वारा साबित करना कठिन हो जाता है ।

ऊपर उल्लिखित प्रथम अड़चन के लिए उचित रूप से उस स्थिति का उदाहरण दिया गया है कि जहां कोई स्त्री अपने हाथों अपने जीवन का अंत कर लेती है, भले ही वह दुर्व्यवहार के कारण ऐसा करने के लिए मजबूर हुई हो । हो सकता है यह स्थिति देश की साधारण दांडिक विधि द्वारा मान्यताप्राप्त अपराधों की सूची में किसी विद्यमान कपोतखाने में फिट न होती हो सिवाय वहां के जहां उकसाने, प्रोत्साहित करने या ऐसे अन्य आचरण जो आत्महत्या के 'दुष्प्रेरण' की कोटि में आता है, का निश्चित सबूत है । यद्यपि, समाचारपत्रों की रिपोर्टों के अनुसार, निचले न्यायालयों के ऐसे निर्णय आए हैं जिनमें 'दुष्प्रेरण' का व्यापक रूप में इसी संदर्भ में अर्थान्वयन किया गया है और यह स्थिति संदेह से परे नहीं है ।

ऊपर उल्लिखित द्वितीय स्थिति के उदाहरण उन घटनाओं में देखने को मिलते हैं जिनमें हालांकि परिस्थितियों से यह ठोस संदेह पैदा होता है कि मृत्यु दुर्घटनावश नहीं हुई है, तो भी युक्तियुक्त संदेह के परे यह सबूत नहीं होता कि मामला वस्तुतः मानव वध का है । इस प्रकार, मूल दांडिक विधि तथा साक्ष्य विधि पर विचार करने की आवश्यकता है ।"

18. विधेयक में 1986 के अधिनियम सं. 43 के लिए उद्देश्यों और कारणों के कथन में निम्नलिखित उल्लेख किया गया है :–

"दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 को हाल ही में दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 के कार्य के प्रश्न की परीक्षा करने और अधिनियम के उपबंधों को और अधिक कठोर तथा प्रभावी बनाने के लिए संसद् के सदनों की संयुक्त समिति की कतिपय सिफारिशों को प्रवर्तित करने के लिए दहेज प्रतिषेध (संशोधन) अधिनियम, 1984 द्वारा संशोधित किया गया है । यद्यपि दहेज प्रतिषेध (संशोधन) अधिनियम, 1984 विद्यमान विधायन में किया गया एक सुधार है, तो भी स्वैच्छिक स्त्री संगठनों के प्रतिनिधियों तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा यह राय व्यक्त की गई है कि जो संशोधन किए गए हैं वे अभी भी अपर्याप्त हैं और अधिनियम को और संशोधित किए जाने की आवश्यकता है ।

2. इसलिए, दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 के उपबंधों को और अधिक कठोर और प्रभावी बनाने के लिए इसमें और संशोधन करना प्रस्थापित किया जाता है......... ।"

19. तथापि, साधारणतया यह देखने में आता है कि ऐसे मामलों में जहां किसी विवाहित स्त्री की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है, तो यह देखने के लिए प्रायिक तौर पर कोई जांच नहीं की जाती है कि क्या कोई ऐसा प्रत्यक्ष या पारिस्थितिक साक्ष्य है जिससे कि अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आता हो । कभी-कभी भारतीय दंड संहिता की धारा 302 एक आनुकल्पिक आरोप के रूप में लगाई जाती है । ऐसे मामलों में जहां यह दर्शित करने के लिए प्रत्यक्ष या पारिस्थितिक साक्ष्य है कि अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत आता है, वहां विचारण न्यायालय को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप विरचित करना चाहिए भले ही पुलिस द्वारा रिपोर्ट में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा

173(2) के अधीन इस बाबत कोई राय व्यक्त न की गई हो । यदि विचारण न्यायालय ऐसा महसूस करे तो भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख आनुकल्पिक आरोप के रूप में लगाई जा सकती है । विचारण के अनुक्रम में, यदि न्यायालय यह पाता है कि यह सिद्ध करने के लिए कोई साक्ष्य, प्रत्यक्ष या पारिस्थितिक, नहीं है कि मृत्यु मानव वध और युक्तियुक्त संदेह के परे सबूत उपलब्ध नहीं है, तो ऐसी स्थिति में यदि भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन संघटक उपलब्ध हैं, तो विचारण न्यायालय को उक्त उपबंध के अधीन कार्यवाही करनी चाहिए । **मुथु कुट्टी और एक अन्य** बनाम **पुलिस निरीक्षक की** मार्फत **तमिलनाडु राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने ऐसे ही विवाद्यक पर विचार किया और निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "20. भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख और साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख का एकसाथ वाचन करने पर यह स्पष्ट होता है कि यदि स्त्री की मृत्यु ऐसी परिस्थितियों में होती है जो सामान्य नहीं हैं और यह दर्शित करने के लिए साक्ष्य है कि उसकी मृत्यु से पूर्व उसके साथ दहेज की किसी मांग के संबंध में क्रूरता की गई थी या उसे तंग किया गया था, तो विधि में इस उपधारणा को प्राधिकृत किया गया है कि पति या पति के किसी अन्य नातेदार ने उस स्त्री की मृत्यु कारित की है । इसलिए इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मृत्यु कारित करने के अपराध में यथास्थिति, पति या नातेदार का वस्तुतः या प्रत्यक्षतः भागीदार होना आवश्यक नहीं है । जो मृत्यु कारित करने के अपराध में प्रत्यक्षतः भागीदार होते हैं, उनके लिए पहले ही धारा 300, 302 और 304 में उपबंध सम्मिलित हैं । भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख और साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख में अंतर्विष्ट उपबंध दहेज प्रतिषेध (संशोधन) अधिनियम, 1984 के बनने पर सम्मिलित किए गए थे, जिनका मुख्य उद्देश्य समाज में दहेज की बुराई को रोकना और इसे अत्यंत दंडात्मक प्रकृति का बनाना था न कि पतियों या उनके नातेदारों को, यदि उन्होंने प्रत्यक्ष तौर पर मृत्यु कारित की है, भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के शिकंजे से मुक्त करना था । विचारण न्यायालयों द्वारा इस संकल्पनात्मक फर्क को विचार में नहीं लिया गया है । किंतु यदि

---

[1] (2005) 9 एस. सी. सी. 113.

दोषसिद्धि को धारा 304 भाग-2 में तब्दील किया जाता है तो इस बात से कोई अनुतोष नहीं मिल सकता है । अभियुक्त-अपीलार्थियों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है क्योंकि उन्हें प्रारंभ में भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के साथ-साथ धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोपित किया गया था ।"

20. **जसविंद्र सैनी और अन्य** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार)**[1] वाले हाल ही के मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है :–

"15. यह सामान्य आधार है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख, धारा 302 के अधीन दंडनीय हत्या के आरोप का अनुकल्प नहीं है । हत्या के मामले की तरह धारा 304ख के अधीन प्रत्येक मामले में भी मृत्यु अंतर्वलित होती है । यह प्रश्न कि क्या यह भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय हत्या है या भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दंडनीय दहेज मृत्यु है, मामले की तथ्यात्मक स्थिति और साक्ष्य पर निर्भर करता है । यदि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप के प्रथमदृष्ट्या समर्थन के लिए साक्ष्य, चाहे प्रत्यक्ष या पारिस्थितिक, है तो विचारण न्यायालय भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय हत्या का आरोप विरचित कर सकता है और वास्तव में करना चाहिए, जो इसके बाद मुख्य आरोप होगा न कि अनुकल्पी आरोप, जैसा कि कुछ मामलों में गलत रूप से धारणा की जाती है । यदि विचारण में हत्या का मुख्य आरोप अभियुक्त के विरुद्ध साबित नहीं होता है, तो न्यायालय यह अवधारण करने के लिए साक्ष्य पर विचार कर सकता है कि क्या धारा 304ख के अधीन दंडनीय दहेज मृत्यु का अनुकल्पी आरोप सिद्ध होता है या नहीं । दोनों अपराधों को गठित करने वाले संघटक अलग-अलग हैं और तद्द्वारा उन संघटकों के सुसंगत परिप्रेक्ष्य में साक्ष्य का मूल्यांकन करना आवश्यक है । विचारण न्यायालय ने मामले को इस प्रकार दृष्टिगत करते हुए यंत्रवत कार्य किया क्योंकि उसने मामले में पेश किए गए साक्ष्य पर विचार किए बिना और मात्र राजबीर वाले मामले में जारी किए गए निदेश के आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अतिरिक्त आरोप विरचित किया । निस्संदेह, उच्च

[1] (2013) 7 एस. सी. सी. 256.

> न्यायालय ने राजबीर वाले मामले में जारी किए गए निदेशों का आश्रय लिए बिना आरोप की विरचना को आधे-अधूरे मन से न्यायोचित ठहराने का प्रयत्न किया, किंतु मामले को नए सिरे से आदेश करने के लिए विचारण न्यायालय को वापस भेजना ज्यादा उचित रहेगा बजाए इसका उस रीति में समर्थन करने के जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा किया गया है ।”

21. यद्यपि वर्तमान मामले में सेशन न्यायालय द्वारा अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोपित किया गया था, फिर भी विचारण न्यायालय ने इस बाबत जांच करने का कोई गंभीर प्रयत्न नहीं किया । यदि दहेज मृत्यु के किसी मामले में मानव वध होने का साक्ष्य उपलब्ध है, तो अन्वेषक अधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन मामले का अन्वेषण करे और अभियोजन पक्ष इस बाबत कार्यवाही करे और न्यायालय इस परिप्रेक्ष्य में दृष्टिकोण अपनाए । केवल इस कारण कि विपदग्रस्त एक विवाहित स्त्री है जिसकी उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर अस्वाभाविक मृत्यु हुई है और यह साक्ष्य है कि दहेज की मांग के लिए उसके साथ क्रूरता की गई थी या उसे तंग किया गया था, अभियोजन पक्ष और न्यायालय आपराधिक मानव वध के प्रश्न पर, यदि इस बाबत प्रत्यक्ष या पारिस्थितिक साक्ष्य है, आंख नहीं मूंद सकता है और अपराधी को दंडित करने से प्रविरत नहीं रह सकता है ।

22. प्रस्तुत मामले में, अभियोजन पक्ष ने मृत्यु-पूर्व की क्षतियों को स्पष्ट करने का कोई प्रयत्न नहीं किया, जिनसे निश्चायक रूप से इंगित होता है कि मृत्यु गला घोंटने से हुए श्वासावरोध के कारण हुई थी । फिर भी, यह हैरान करने वाली बात है, हत्या के अपराधी (अपराधियों) को इससे संसक्त करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया गया ।

23. निस्संदेह, ऐसी कोई बात नहीं है जो इस न्यायालय को अपीलार्थियों को यह सूचना जारी करने से रोकती हो कि क्यों न दंड में समुचित रूप से वृद्धि की जाए, किंतु हमने जानबूझकर क्यों ऐसा करने से इनकार किया है, इस बात को हम निर्णय के पश्चात्वर्ती भाग में स्पष्ट करेंगे ।

24. भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के पुरःस्थापन के पश्चात् इस न्यायालय के दो पूर्ववर्ती विनिश्चयों में इस अपराध के संघटकों और

भारतीय दंड संहिता की धारा 498क, 302 और 306 के साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के पारस्परिक प्रभाव की भी चर्चा की गई है । **पंजाब राज्य** बनाम **इकबाल सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने निर्णय के पैरा 8 में यह मत व्यक्त किया है :–

> "8. ....विधान मडंल का आशय स्पष्ट है कि दहेज मृत्यु आदि के अभिशाप पर सख्ती से रोक लगाई जाए । हमें विधान मंडल के इस आशय को ध्यान में रखना होगा । यह स्मरण रखना होगा कि चूंकि ये अपराध साधारणतया आवासीय घरों की चहारदीवारी में और गुप्त रूप से कारित किए जाते हैं, इसलिए स्वतंत्र और प्रत्यक्ष साक्ष्य मिलना आसान नहीं होता है । यही कारण है कि विधान मंडल ने साक्ष्य अधिनियम में धारा 113क और 113ख पुरःस्थापित करके और यदि कतिपय आधारभूत तथ्य सिद्ध किए जाते हैं और दुर्भाग्यपूर्ण घटना विवाह के सात वर्ष के भीतर घटती है तो एक उपधारणा किए जाने के लिए अनुज्ञात करके अभियोजन के हाथों को मजबूत करने की कोशिश की है । सात वर्ष की इस अवधि को विक्षोभ की अवधि माना गया है और विधान मंडल का यह मानना है कि इसके पश्चात् पति-पत्नी जीवन में व्यवस्थित हो गए होंगे । यदि किसी विवाहित स्त्री के साथ उसके पति या उसके परिवार के सदस्यों द्वारा क्रूरता की जाती है या उसे तंग किया जाता है, तो धारा 498क लागू होगी । यदि ऐसी क्रूरता या ऐसा तंग पति या पति के नातेदार द्वारा दहेज की किसी मांग के लिए, या उसके संबंध में, उसे दाह या शारीरिक क्षति कारित करके या विवाह के सात वर्ष के भीतर असामान्य परिस्थितियों में उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व किया जाता है, तो यह माना जाता है कि पति या पति के नातेदार ने उसकी मृत्यु कारित की है और भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दंडित किए जाने के लिए दायी है । जब विवाद्य प्रश्न यह हो कि क्या कोई व्यक्ति किसी स्त्री की दहेज मृत्यु का दोषी है और साक्ष्य से यह प्रकट होता है कि उसकी मृत्यु से कुछ पूर्व उस व्यक्ति द्वारा उसके साथ दहेज की किसी मांग के लिए, या उसके संबंध में, क्रूरता की थी और/या उसे तंग किया था, तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख में यह उपबंधित है कि न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि उस व्यक्ति ने दहेज मृत्यु कारित की है । निस्संदेह, यदि उस व्यक्ति के बारे में यह साक्ष्य है

---

[1] (1991) 3 एस. सी. सी. 1.

कि उसने स्त्री की जानबूझकर मृत्यु कारित की है तो भारतीय दंड संहिता की धारा 302 लागू होगी । ऐसी भी स्थिति हो सकती है जहां पति या उसके नातेदार ने अपने स्वेच्छापूर्ण आचरण द्वारा ऐसी स्थिति पैदा की जिसके बारे में वह जानता था कि इससे स्त्री आत्महत्या करने के लिए प्रेरित होगी और वह वास्तव में आत्महत्या कर लेती है, तब मामला पूर्ण रूप से भारतीय दंड संहिता की धारा 306 की परिधि के अंतर्गत आएगा । ऐसे मामले में उस व्यक्ति का आचरण स्त्री को उकसाने, उत्प्रेरित करने या उसे वास्तव में ऐसी स्थिति में ढकेलने की कोटि में आएगा जहां से वह वापस न आ सके और उसे आत्महत्या करके अपने दुखों का अंत करने के लिए मजबूर होना पड़े ....।"

25. **श्रीमती शांति और एक अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले में, जिसे बहुत से पश्चात्वर्ती विनिश्चयों में निर्दिष्ट किया गया है, इस न्यायालय ने इस बिंदु पर निम्नलिखित विधि अधिकथित की है :–

"4. ....धारा 304ख का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करने पर यह दर्शित होता है कि इस धारा के निम्नलिखित अनिवार्य तत्व हैं –

(1) किसी स्त्री की मृत्यु सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा दाह या शारीरिक क्षति से कारित की जानी चाहिए ;

(2) ऐसी मृत्यु स्त्री के विवाह के सात वर्ष के भीतर होनी चाहिए ;

(3) उसके साथ उसके पति या उसके पति के किसी नातेदार द्वारा क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो ;

(4) ऐसी क्रूरता या तंग करना दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में होना चाहिए ।

साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख में यह अधिकथित किया गया है कि यदि स्त्री की मृत्यु से कुछ पूर्व उसके साथ दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में क्रूरता की गई थी या उसे तंग किया गया था, तब न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि उस व्यक्ति ने दहेज मृत्यु कारित की है । इन धाराओं के प्रयोजनों के लिए 'क्रूरता' का वही अर्थ लिया जाना चाहिए जैसा कि भारतीय दंड संहिता की धारा 498क में पाया जाता है और इस धारा के अनुसार 'क्रूरता' से

---

[1] (1991) 1 एस. सी. सी. 371.

अभिप्रेत जानबूझकर किया गया कोई ऐसा आचरण है जो ऐसी प्रकृति का है जिससे उस स्त्री को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करने की या उस स्त्री के जीवन आदि को गंभीर क्षति या खतरा कारित करने के लिए उसे करने की संभावना है, या उसे या उससे संबंधित किसी व्यक्ति को किसी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति के लिए किसी विधिविरुद्ध मांग को पूरी करने के लिए प्रपीड़ित करने की दृष्टि से अथवा उसके या उससे संबंधित किसी व्यक्ति को ऐसी मांग पूरी करने में असफल रहने के कारण इस प्रकार तंग किया जा रहा है । 'दहेज' की परिभाषा के अनुसार, कोई संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति जो विवाह पर या विवाह से पूर्व या विवाह के पश्चात् किसी समय दी गई या दिए जाने के लिए सहमति हुई है, 'दहेज' की परिभाषा के अर्थांतर्गत आती है....... ।"

26. **बलजिन्द्र कौर** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में इस बिंदु पर उपलब्ध हाल ही का विनिश्चय आने तक भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन अपराध गठित करने वाली अपेक्षाओं के बारे में विधि, प्रत्येक मामले में उपलब्ध तथ्यात्मक स्थिति की बाबत अपेक्षित सार के सिवाय, अविचल रही है ।

27. प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर वापस आते हैं । इस मामले में चिकित्सा साक्ष्य के अतिरिक्त मुख्य साक्ष्य विपदग्रस्त के पिता अभि. सा. 1 रमेश सिंह, अभि. सा. 5 और 6 जो गांव के निवासी हैं और अभि. सा. 7 मृतका की बड़ी बहिन के पति का है ।

28. अभि. सा. 1 के अनुसार, वह अपनी पुत्री को उसकी ससुराल से लेकर आया था । उसने उसे अपने ससुराल वालों की दहेज की मांग के बारे में बताया था । मृतका केवल दो बार ससुराल गई थी और तीसरी बार जब इस साक्षी का दामाद उसकी पुत्री को लेने आया था, तब उसका पिता विजय पाल सिंह, छोटा भाई राकेश सिंह और जीजा ज्ञान चन्द्र उसके साथ आए थे और उनकी टेलीविजन, फ्रिज़ और कूलर की मांग पूरी न करने की दशा में गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी थी । अभि. सा. 5 और 6 इसके साक्षी हैं । अभि. सा. 5 डा. मुशाहिद हुसैन गांव में दो दशक से भी अधिक समय से सेवारत एक पंजीकृत चिकित्सा व्यवसायी है । उसके अनुसार, मृतका सरोज के पति के नातेदार और उसका ससुर तथा अन्य

[1] (2014) 13 स्केल 96.

नातेदार और अधिक दहेज की मांग कर रहे थे । उसने एक बार विवाद को सुलझाने के लिए अपनी हैसियत का उपयोग किया था । इस साक्षी के साक्ष्य में यह बात भी आई है कि इस विवाद्यक को लेकर एक बार पंचायत बुलाई गई थी और यहां तक कि पंचायत में भी स्वयं उसकी (अभि. सा. 5) मौजूदगी में पति और उसके पिता तथा अन्य नातेदारों ने दहेज की मांग की थी । अभि. सा. 6 ग्राम सभा, आलमपुर का ग्राम प्रधान है । उसने भी इस आशय का साक्ष्य दिया है कि मृतका सरोज के ससुराल वालों की ओर से और अधिक दहेज की मांग की जा रही थी । इस साक्षी ने भी मामले को सुलझाने के लिए पंचायत बुलाने के संबंध में साक्ष्य दिया है और इस साक्षी की मौजूदगी में भी मृतका सरोज के ससुराल वाले और अधिक दहेज देने का आग्रह कर रहे थे । अन्य साक्ष्य मृतका की बड़ी बहिन के पति अभि. सा. 7 का है । केवल अभि. सा. 1 और अभि. सा. 7 ने, जो क्रमशः मृतका का पिता और मृतका की बड़ी बहिन का पति हैं, इस आशय का साक्ष्य दिया है कि सभी अपीलार्थियों ने और अधिक दहेज देने की मांग की थी और मांग पूरी न होने पर परिणाम भुगतने की धमकी दी थी ।

29. मृत्यु विवाह के चार माह के भीतर हुई थी । यह दर्शित करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य है, जिसके बारे में हमने ऊपर चर्चा की है, कि दहेज के लिए मांग की जा रही थी । इसके पश्चात्, एकमात्र संघटक जो सिद्ध किया जाना है यह है कि क्या मृतका सरोज की मृत्यु से कुछ पूर्व दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में उसके साथ क्रूरता की गई थी या उसे तंग किया गया था या नहीं ।

30. श्री डे ने यह दलील दी यदि यह मान भी लिया जाए कि दहेज की मांग करने का साक्ष्य है, तो भी यह दर्शित करने के लिए कतई कोई साक्ष्य नहीं है कि मृतका सरोज से कोई मांग की गई थी । यह दलील स्वीकार करने योग्य नहीं है । दहेज की मांग, जिससे कि यह धारा 304ख या धारा 489क की परिधि के अधीन आ सके, विवाहित स्त्री से किया जाना आवश्यक नहीं है । मांग विवाहित स्त्री के पिता, माता, भाई, आदि से भी की जा सकती है । उनसे की गई कोई मांग विवाहित स्त्री से की गई किसी मांग जितनी ही महत्वपूर्ण है, चूंकि यदि मांग पूरी नहीं होती है तो सहन तो उसे ही करना होता है, जैसा कि प्रस्तुत मामले में घटित हुआ है ।

31. श्री डे द्वारा दी गई एक अन्य गंभीर दलील यह भी है कि जो भी स्थिति हो, दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में मृतका के साथ

क्रूरता करने या उसे तंग करने का कोई साक्ष्य नहीं है । यह आवश्यक नहीं है कि क्रूरता या तंग करने की बात को सदैव शारीरिक हिंसा के रूप में प्रदर्शित किया जाए । ये तथ्य कि विवाहित स्त्री अपनी ससुराल गई थी और ससुराल वालों ने उसे वापस लाने के लिए पूर्व शर्त के रूप में दहेज की मांग की थी और विवाद्यक को सुलझाने के लिए स्थानीय स्तर पर एक पंचायत भी बुलाई गई थी, शारीरिक न सही किंतु मानसिक क्रूरता करने और तंग करने के पर्याप्त सूचक हैं । इस प्रकार, प्रस्तुत मामले में भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के सभी संघटक सिद्ध किए गए हैं ।

32. प्रसंगवश, हम शव की शनाख्त से संबंधित दी गई एक दलील को भी निर्दिष्ट करेंगे । विद्वान् काउंसेल के अनुसार, जो विचारण न्यायालय का भी वृत्तांत रहा है, मृतका की शनाख्त द्वितीय अपीलार्थी नरेन्द्र सिंह की पत्नी सरोज के रूप में नहीं की गई थी । यह प्रतीत होता है कि पहचान या शनाख्त की बाबत विचारण न्यायालय के मस्तिष्क में थोड़ा भ्रम रहा है । अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 ने पहले शव को देखा और सूचित किया कि किसी अज्ञात व्यक्ति का शव है और जो लोग शव को देखने गए वे पहचान नहीं सके कि वह व्यक्ति कौन है । यह देखा जाना चाहिए कि अभि. सा. 2 और 3 मृतका के गांव के नहीं थे । इसलिए, सामान्यतः कोई भी व्यक्ति उनसे मृतक व्यक्ति को पहचानने की प्रत्याशा नहीं कर सकता है । इसका यह अर्थ नहीं है कि शव का चेहरा ऐसे रूप में था कि उसका आकार विकृत हो गया था । प्रदर्श-4 और 5 फोटाग्राफों को देखने मात्र से यह दर्शित होता है कि वे लोग जो मृतका को जानते थे, वे आसानी से पहचान सकते थे कि यह कौन व्यक्ति है । यदि चेहरा पूरी तरह से जल गया होता या अन्यथा उसका संपूर्ण आकार खराब हो गया होता, तो किसी व्यक्ति के लिए उसकी पहचान करना तो दूर इसकी शनाख्त करना संभव नहीं होता । वर्तमान मामले में, अभि. सा. 2 और 3 ने चेहरे की पहचान एक स्त्री के चेहरे के रूप में की थी और अभि. सा. 1 पिता ने अपनी पुत्री के रूप में उसकी शनाख्त की थी । साक्ष्य में यह बात आई है कि दाह-संस्कार के समय अन्य व्यक्तियों ने भी मृतका की शनाख्त अभि. सा. 1 की पुत्री और द्वितीय अपीलार्थी नरेन्द्र सिंह की पत्नी सरोज के रूप में की थी ।

33. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने इस स्थिति के लिए यह जोरदार दलील दी कि दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में अपील न्यायालय के समक्ष कुछ अंतर्निहित निर्बंधन होते हैं और एक भिन्न मत होने की मात्र संभाव्यता दोषमुक्ति में हस्तक्षेप करने के लिए

पर्याप्त नहीं है । इस सुस्थिर प्रतिपादना के साथ हमारा कोई द्वन्द्व नहीं है । इस निर्णय का लेखक **बसप्पा** बनाम **कर्नाटक राज्य**[1] वाले मामले के निर्णय का लेखक है, जिसमें दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध अपील में अपील न्यायालय के हस्तक्षेप की गुंजाइश के बारे में विस्तृत पर्यवलोकन किया गया है । **के. प्रकाशन** बनाम **पी. के. सुरेन्द्रन**[2], **टी. सुब्रह्मण्यन** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[3], **भीम सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य**[4], **कल्लू** उर्फ **मसीह और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[5], **रमेश बाबूलाल दोशी** बनाम **गुजरात राज्य**[6], **गणपत** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य**[7], **पंजाब राज्य** बनाम **करनैल सिंह**[8] और **चन्द्रप्पा और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य**[9] वाले मामलों के विनिश्चयों, जिनमें इसी विवाद्यक पर विचार किया गया है, को निर्दिष्ट करने के पश्चात् इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जब तक कि दोषमुक्ति का निर्णय किसी सामग्री पर आधारित न हो या अनुचित हो न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण पूर्णतः अयुक्तियुक्त हो या दृष्टिकोण युक्तिसंगत नहीं हो या किसी साक्ष्य पर विचार नहीं किया गया हो या साक्ष्य का स्पष्टतः उलटा अर्थ निकाला गया हो, तब तक अपील न्यायालय के लिए दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप करना न्यायोचित नहीं होगा । इन सिद्धांतों का समर्थन और अभिपुष्टि करते हुए हमारा यह सुविचारित मत है कि वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्य का स्पष्टतः उलटा अर्थ निकाला गया है । जैसा कि हमने इसमें ऊपर पहले ही चर्चा की है, विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष स्पष्ट तौर पर साक्ष्य के बल के विरुद्ध हैं और इस प्रकार अनुचित हैं और ये निष्कर्ष इतने अनुचित हैं कि कोई भी युक्तियुक्त व्यक्ति ऐसे निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है ।

34. अब, प्रश्न यह है कि उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालने के पश्चात् कि यह अपीलार्थियों द्वारा कारित एक हत्या का मामला है, फिर भी उन्हें केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दोषसिद्ध

---

[1] (2014) 5 एस. सी. सी. 154.
[2] (2008) 1 एस. सी. सी. 258.
[3] (2006) 1 एस. सी. सी. 401.
[4] (2002) 10 एस. सी. सी. 461.
[5] (2006) 10 एस. सी. सी. 313.
[6] (1996) 9 एस. सी. सी. 225.
[7] (2010) 12 एस. सी. सी. 59.
[8] (2003) 11 एस. सी. सी. 271.
[9] (2007) 4 एस. सी. सी. 415.

किया गया । जैसा कि हमने पहले ही उपदर्शित किया है, यह ऐसा मामला है जिसमें उच्च न्यायालय और इस संबंध में यह न्यायालय उन व्यक्तियों के विरुद्ध दंड में वृद्धि करने के लिए नोटिस जारी कर सकता था जिनके विरुद्ध उन्हें हत्या से संयोजित करने के लिए साक्ष्य है । घटना वर्ष 1991 की होने के कारण अभियोजन पक्ष ने अभियुक्तों की अंतर्ग्रस्तता के अप्रतिरोध्य और निश्चायक निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए सभी परिस्थितियों को एक श्रृंखला में कोई कड़ी लुप्त हुए बिना जोड़ना उचित नहीं समझा, इसलिए उच्च न्यायालय ने अभियुक्तों को केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दोषसिद्ध करना उचित समझा । निस्संदेह, ऐसे मामले में उच्च न्यायालय को हत्या का स्पष्ट निष्कर्ष अभिलिखित नहीं करना चाहिए था चूंकि जब एक बार न्यायालय ऐसा निष्कर्ष अभिलिखित कर देता है तब दंड केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन ही दिया जा सकता है । इस न्यायालय द्वारा ऊपर निर्दिष्ट की गई परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह मत है कि यद्यपि इस मामले पर भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन विचार किया जा सकता था, किंतु इतना समय बीत जाने और परिस्थितियों की श्रृंखला पर साक्ष्य की कमी को देखते हुए इस न्यायालय के लिए यह उचित नहीं होगा कि दंड में वृद्धि करने के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन कार्यवाही की जाए । जहां तक भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख के अधीन उपधारणा का संबंध है, उस संबंध में ऐसी कोई कठिनाई नहीं है । जब एक बार भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के संघटक सिद्ध हो जाते हैं, तब यह उपधारणा की जाती है कि मृत्यु पति या उसके नातेदारों, जिन्होंने क्रूरता की थी और तंग किया था, द्वारा कारित की गई है । प्रस्तुत मामले में यह उपधारणा सुरक्षित रूप से की जा सकती है क्योंकि वर्तमान मामले में भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के सभी संघटकों को संदेह के परे साबित किया गया है, विशिष्ट रूप से, चूंकि अपीलार्थियों की ओर से इसका खंडन करने के लिए कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया है ।

35. इन सभी बातों के साथ-साथ अभी हमें पति राकेश सिंह के छोटे भाई और पति के जीजा ज्ञान चन्द्र की अंतर्ग्रस्तता के प्रश्न पर भी विचार करना है । यद्यपि, भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन उन नातेदारों के विरुद्ध उपधारणा की जानी चाहिए जिन्होंने मृतका को दहेज की मांग के संबंध में तंग किया है, तो भी ऐसा साक्ष्य होना आवश्यक है जिसका पति या प्रत्येक नातेदार को इस बाबत संयोजित करने के लिए खंडन नहीं किया गया हो । खंडन प्रत्यक्ष साक्ष्य के बिना भी किया जा सकता है (**कुंदन लाल रल्लाराम** बनाम **अभिरक्षक, बम्बई निष्क्रांत**

संपत्ति[1] जिसका **एम. नरसिंह राव** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले में अनुसरण किया गया) ।

36. **आलमगिर सानी** बनाम **असम राज्य**[3] वाले मामले में भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन की गई दोषमुक्ति पर इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए एक विवाद्यक यह आया कि क्या भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषमुक्ति के कारण अभियुक्त भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दोषमुक्ति का दावा कर सकता है । इस न्यायालय द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषमुक्ति से स्वतः ही भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दोषमुक्त नहीं हो जाएगी । यदि किसी अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषमुक्त किया जाता है, किंतु यदि भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के संघटकों का समाधान करने वाला साक्ष्य उपलब्ध है, तब भी अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दोषसिद्ध किया जा सकता है यदि अभियुक्त द्वारा यथा कारित मृत्यु पर उपधारणा का खंडन नहीं किया गया है । इसे नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "15. हमें भी इस दलील में कोई सार दिखाई नहीं देता कि केवल इस कारण कि अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषमुक्त किया गया है, साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख के अधीन उपधारणा का स्वतः ही खंडन हो जाता है । मृत्यु विवाह के सात वर्ष के भीतर हुई थी और दहेज की मांग के बारे में पर्याप्त साक्ष्य है, इसलिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख के अधीन उपधारणा का अवलंब लिया जाता है । इसका खंडन करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है ।"

37. यद्यपि मृतका के पिता अभि. सा. 1 और मृतका की बड़ी बहिन के पति अभि. सा. 7 ने यह कथन किया है कि राकेश सिंह और ज्ञान चन्द्र भी तब विजय पाल सिंह और नरेन्द्र सिंह मृतका के पति के साथ थे जब वे उसके घर आए थे और दहेज की मांग की थी तथा धमकी दी थी, किंतु अभि. सा. 5 और अभि. सा. 6 के साक्ष्य में यह बात आई है कि मृतका सरोज के ससुराल के परिवार में ससुर विजय पाल सिंह और पति नरेन्द्र सिंह सिवाय उन्हें किसी अन्य व्यक्ति की पहचान नहीं है । स्वयं अभि. सा. 1

---

[1] ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 1316.

[2] (2001) 1 एस. सी. सी. 691.

[3] (2002) 10 एस. सी. सी. 277.

के साक्ष्य में न केवल यह बात आई है कि छोटा भाई राकेश सिंह कहीं और पढ़ रहा था और जीजा ज्ञान चन्द्र किसी अलग गांव में रहता था । चूंकि स्वतंत्र साक्षी अभि. सा. 5 और 6 केवल मृतका के ससुर और पति को पहचानते थे, इसलिए हमारा यह मत है कि यह निष्कर्ष निकालना सुरक्षित नहीं होगा कि राकेश सिंह और ज्ञान चंद्र के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख, 498क या धारा 201 के अधीन अपराध साबित होता है । इसलिए तृतीय अभियुक्त/अपीलार्थी राकेश सिंह और चतुर्थ अभियुक्त-अपीलार्थी ज्ञान चन्द्र की दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त किए जाते हैं ।

38. अब, अंतिम प्रश्न यह है कि क्या मामले को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 के प्रयोजन के लिए उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया जाना चाहिए, हमारा यह मत है कि वर्तमान मामले में इसकी आवश्यकता नहीं है । दोषसिद्धि भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन की गई है । आज्ञापक न्यूनतम दंड सात वर्ष है । निस्संदेह, भारतीय दंड संहिता की धारा 498क या धारा 201 के अधीन कोई ऐसा न्यूनतम दंड नहीं है । चूंकि भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन अपराध के लिए दो वर्ष के कठोर कारावास और धारा 201 के अधीन एक वर्ष के कठोर कारावास का दंडादेश साथ-साथ चलने हैं, इसलिए दोनों अपीलार्थियों पर किसी प्रकार का कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है । इसलिए, इस न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235 के अधीन प्रक्रिया का अनुसरण करने या उच्च न्यायालय को इसे प्रतिप्रेषित करने के लिए यह उपयुक्त मामला नहीं है ।

39. तृतीय और चतुर्थ अभियुक्त/अपीलार्थी, क्रमशः राकेश सिंह और ज्ञान चन्द्र की दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त किए जाते हैं । प्रथम और द्वितीय अपीलार्थी, क्रमशः विजय पाल सिंह और नरेन्द्र सिंह की भारतीय दंड संहिता की धारा 34, 498क और 201 के साथ पठित धारा 304ख के अधीन दोषसिद्धि और दंडादेश कायम रखे जाते हैं । उनके जमानत बंध-पत्र रद्द किए जाते हैं । वे शेष दंडादेश भुगतने के लिए तुरंत अभ्यर्पण करेंगे/उन्हें अभिरक्षा में लिया जाएगा । इस प्रकार, यह अपील उपरोक्त अनुसार भागतः मंजूर की जाती है ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

जस.

[**2015**] **1 उम. नि. प. 223**

इन्दर सिंह और अन्य

बनाम

राजस्थान राज्य और आदि

6 जनवरी, 2015

न्यायमूर्ति एम. वाई. इकबाल और न्यायमूर्ति शिव कीर्ति सिंह

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 – हत्या – अभियुक्तों का बड़ी संख्या में होना और उनका प्रभावशाली होना – दोनों पक्षों का सह-ग्रामवासी होना – अभियुक्तों के प्रभावशाली होने पर कुछ साक्षियों का अभियोजन पक्षकथन का समर्थन न करना स्वाभाविक है, ऐसी स्थिति में शेष प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के अभिसाक्ष्य का महत्व कम नहीं हो सकता और प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य की संपुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य से होने पर अभियुक्तों की दोषसिद्धि कायम रखी जा सकती है ।

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – हत्या – अन्य साक्षी द्वारा साक्ष्य की संपुष्टि न किया जाना – पांच अभियुक्तों को इत्तिलाकर्ता द्वारा नामित किया गया किन्तु अन्य किसी भी साक्षी द्वारा उसके साक्ष्य का समर्थन न किए जाने पर इन सभी अभियुक्तों को संदेह का लाभ दिया जाएगा, अतः उनकी दोषसिद्धि न्यायोचित नहीं होगी ।

इस मामले में इत्तिलाकर्ता अमर सिंह और अभियुक्तों के बीच भूमि को लेकर पहले से विवाद चला आ रहा था । तारीख 10 सितंबर, 2001 को अभियुक्तों ने इत्तिलाकर्ता पक्ष पर हमला कर दिया और परिणामस्वरूप इत्तिलाकर्ता पक्ष के 4 व्यक्तियों की हत्या कर दी गई । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में 29 अभियुक्तों को नामित किया गया । विशेष सेशन न्यायाधीश, झालावाड़, राजस्थान द्वारा सभी अभियुक्तों का विचारण किया गया जिनमें से 5 अभियुक्तों को दोषमुक्त करते हुए 24 अभियुक्तों को दोषसिद्ध किया गया । विचारण न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर इन 24 दोषसिद्ध व्यक्तियों में से 22 व्यक्तियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष पांच अपीलें

फाइल कीं और 2 दोषसिद्ध व्यक्तियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय द्वारा एक अपीलार्थी को दोषमुक्त कर दिया गया । दो अपीलार्थियों की सुनवाई के दौरान ही मृत्यु हो गई थी । शेष 21 दोषसिद्ध अपीलार्थियों ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष कुल मिलाकर आठ अपीलें फाइल कीं । उच्चतम न्यायालय ने इन अपीलों की एक साथ सुनवाई की और पांच अपीलार्थियों को संदेह का लाभ देते हुए दोषमुक्त कर दिया तथा शेष 16 अपीलार्थियों की दोषसिद्धि कायम रखी । इस प्रकार सभी अपीलों का निपटारा किया गया । अपीलों का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – महत्वपूर्ण साक्षियों के संपूर्ण साक्ष्य, अन्य सामग्री और निचले न्यायालयों के निर्णय का परिशीलन करने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि चूंकि अभियुक्तों की संख्या बहुत अधिक है और वे इतने शक्तिशाली और बलवान हैं कि उन्होंने बड़ी संख्या में लोगों की मौजूदगी में चार व्यक्तियों की हत्या कारित की है इसलिए यह समझना और मूल्यांकन करना मुश्किल नहीं है कि ग्राम के ऐसे स्वतंत्र साक्षियों ने, जिन्होंने घटना देखी थी, अभियोजन पक्ष का समर्थन करना नहीं चाहा । किन्तु इससे ऐसे छह प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के अभिसाक्ष्य का महत्व कम नहीं हो जाता जिन्होंने ऐसी घटना का संगत वर्णन किया है जिसे घटना के तत्काल पश्चात् ही अभि. सा. 15 द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में संक्षिप्त रूप से प्रकट किया गया है और अभि. सा. 15 वह साक्षी है जो इस घटना में गंभीर रूप से आहत हुआ है और इस साक्षी की मौजूदगी पर संदेह नहीं किया जा सकता । यदि यह साक्षी इकलौता साक्षी होता, तब भी निचले न्यायालयों के लिए यह संभव था कि वे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अन्तर्विष्ट उसके पूर्ववर्ती कथन को दृष्टिगत करते हुए और न्यायालय में उसके परिसाक्ष्य की सत्यता परखने के पश्चात् अभियुक्तों को दोषसिद्ध कर देते । ऐसी तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि यदि अन्वेषक अधिकारी खुले मैदान अर्थात् घटनास्थल से छर्रे बरामद करने में असफल रहा है और यदि वह प्राक्षेपिकी विज्ञानी की रिपोर्ट प्राप्त नहीं कर सका है, तब भी अभियोजन पक्षकथन पर संदेह नहीं किया जा सकता । इस घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य और चिकित्सीय साक्ष्य जिसके अनुसार अग्न्यायुध से कारित क्षतियों के अतिरिक्त अनेक क्षतियां दर्शाई गई हैं, से एक दूसरे का समर्थन होता है । इस मुद्दे के संबंध में अभियुक्तों के विरुद्ध विचारण न्यायालय द्वारा की गई चर्चा और निकाले गए निष्कर्षों में गुणता है ।

यह आलोचना कि कुछ अभियुक्तों को क्षतियां पहुंची हैं जिसके बाबत अभियोजन पक्ष ने कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया है, विचारण न्यायालय द्वारा ठीक ही खारिज की गई है क्योंकि ऐसा कोई भी प्रति-वृत्तांत नहीं है और न ही ऐसा कोई सुझाव दिया गया है जिससे यह प्रकट होता हो कि किसी भी अभियुक्त को एक ही घटना के दौरान और एक ही स्थल पर क्षतियां पहुंचीं हैं । प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से किसी भी व्यक्ति ने अभिकथित रूप से ऐसा कोई मामला दर्ज नहीं कराया है जिससे यह प्रकट होता हो कि कहां और किन परिस्थितियों में अभियुक्तों को क्षतियां पहुंचीं । मामले के तथ्यों के आधार पर किसी भी प्रति-वृत्तांत और प्रतिरक्षा के अभिवाक् के अभाव में यह उपधारित करना अनुचित होगा कि अभियुक्तों को एक ही घटना के दौरान एक ही स्थल पर क्षतियां पहुंचीं हैं । यदि केवल ये दो संघटक सिद्ध किए जाते, तब प्रतिरक्षा पक्ष अभियोजन पक्ष से यह स्पष्टीकरण मांग सकता था कि तीन अभियुक्तों को कैसे क्षतियां पहुंचीं । उनकी क्षतियां न तो घातक हैं और न ही उनसे जीवन को कोई खतरा है और इस बात से भी अभियोजन पक्ष पर यह स्पष्ट करने का भार कम हो जाता है कि अभियुक्तों को क्षतियां कैसे पहुंचीं । उपरोक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए, न्यायालय का यह मत है कि श्री किशन और लक्ष्मी सिंह वाले मामलों में दिए गए निर्णयों से अपीलार्थियों को कोई सहायता नहीं मिल सकती । लक्ष्मी सिंह वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 12 में न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि उस मामले की परिस्थितियों के आधार पर यह संदेह नहीं किया जा सकता कि अभियुक्तों को उस समय क्षतियां कारित हुई थीं जब उन्होंने हमला किया था । वर्तमान मामले में, तथ्य भिन्न हैं, इसलिए इस आधार पर अभियोजन पक्षकथन अविश्वसनीय नहीं ठहराया जा सकता है कि कुछ अभियुक्तों अर्थात् मान सिंह (अभियुक्त सं. 8), राम प्रसाद (अभियुक्त सं. 28) और बहादुर सिंह (अभियुक्त सं. 29) को अभिकथित रूप से क्षतियां पहुंचीं थीं । (पैरा 12 और 13)

चूंकि इस मामले में अभियुक्त व्यक्ति और छह तात्विक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी सह-ग्रामवासी हैं, इसलिए यह प्रत्याशा की जाती है कि कम से कम तीन साक्षी अलग-अलग अभियुक्तों के नाम बताएं ताकि उनकी दोषसिद्धि कायम रखी जा सके । इस कसौटी का प्रयोग करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि भगवान सिंह (अभियुक्त सं. 9); पुत्र प्रभु लाल सुरेश कुमार पुत्र राम धाकड़ (अभियुक्त सं. 18); किन्हीं राम (अभियुक्त सं. 20); प्रहलाद सिंह पुत्र नाथू लाल (अभियुक्त सं. 27); और राम प्रसाद पुत्र भेरू लाल

(अभियुक्त सं. 28) संदेह का लाभ देते हुए दोषमुक्त किए जाने चाहिएं । इस संदेह का लाभ अभियुक्तों के पक्ष में जाता है क्योंकि भले ही इत्तिलाकर्ता (अभि. सा. 15) द्वारा विशेष रूप से नामित किया गया है कि ये वही व्यक्ति हैं जो विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य थे और इन्होंने ही हमला किया था किन्तु इत्तिलाकर्ता के इस दावे का समर्थन एक से अधिक साक्षियों द्वारा नहीं किया गया है । दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त अभियुक्तों के विरुद्ध तीन साक्षियों का साक्ष्य स्पष्ट और तर्कसंगत नहीं है । जहां तक राम प्रसाद (अभियुक्त सं. 28) का संबंध है, निस्संदेह अभि. सा. 12 और अभि. सा. 24 द्वारा उसे नामित किया गया है किन्तु उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि वह राम प्रसाद पुत्र भेरू लाल था या इसी नाम का अन्य कोई व्यक्ति था अर्थात् राम प्रसाद पुत्र जेठ राम (अभियुक्त सं. 25) । (पैरा 22)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2013]	(2013) 5 एस. सी. सी. 753 : **खैरुद्दीन और अन्य** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ;	8, 16
[2012]	(2012) 12 एस. सी. सी. 711 : **बूसी कोटेश्वर राव और अन्य** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	8, 15, 21
[2012]	(2012) 3 एस. सी. सी. 221 : **राय फर्नेन्डिज** बनाम **गोआ राज्य और अन्य** ;	18
[2011]	(2011) 5 एस. सी. सी. 324 : **कुलदीप यादव और अन्य** बनाम **बिहार राज्य** ;	8, 14
[2011]	(2011) 9 एस. सी. सी. 257 : **रामचन्द्रन और अन्य** बनाम **केरल राज्य** ;	18
[2009]	(2009) 12 एस. सी. सी. 757 : **श्री किशन और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	7, 13
[1976]	(1976) 4 एस. सी. सी. 394 : **लक्ष्मी सिंह और अन्य** बनाम **बिहार राज्य** ;	7, 13
[1965]	ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 202 : **मसलती आदि** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ।	9, 15, 21

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 493 और 495.

2004 की दांडिक अपील सं. 313, 339 और 385 में राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर की खंड न्यायपीठ के तारीख 29 मई, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से	सर्वश्री आर. बसंत (वरिष्ठ अधिवक्ता), (सुश्री) गौरी करुणा दास मोहंती, अली जेठमलानी, (सुश्री) सुमन कश्यप और सौरभ अजय गुप्ता
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री (ग्रुप कप्तान) करन सिंह भाटी, अजय चौधरी, (सुश्री) मधुरिमा घोष, जयंत भट्ट (मिलिंद कुमार की ओर से) और राम नरेश यादव (सुश्री रूचि कोहली की ओर से)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति शिव कीर्ति सिंह ने दिया ।

न्या. कीर्ति सिंह – ये सभी आठ अपीलें इत्तिलाकर्ता अमर सिंह (अभि. सा. 15) द्वारा पुलिस थाना सुनेल, जिला झालावाड़ (राजस्थान) में तारीख 10 सितंबर, 2001 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 188/2001 के अनुसार दर्ज किए गए आपराधिक मामले में नामित किए गए, 29 सह-ग्रामवासियों के विरुद्ध फाइल की गई हैं । सभी 29 अभियुक्तों को पुलिस द्वारा आरोप पत्रित किया गया । विचारण के पश्चात् पांच अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया गया और शेष 24 अभियुक्तों को विभिन्न अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया । 22 दोषसिद्ध व्यक्तियों द्वारा फाइल की गई पांच अपीलों का निपटारा उच्च न्यायालय के तारीख 29 मई, 2008 के एक ही निर्णय द्वारा किया गया जो कि 7 दांडिक अपीलों में आक्षेपित है और उनमें से 6 अपीलें वर्ष 2009 में फाइल की गई थीं और वर्ष 2011 में दोषसिद्ध कालू लाल द्वारा 2011 की दांडिक अपील सं. 1892 फाइल की गई थी । दो दोषसिद्ध व्यक्ति अर्थात् राम सिंह और केसर सिंह (क्रमशः अभियुक्त सं. 24 और 4) ने उच्च न्यायालय में जेल अपील के माध्यम से विलिंबित रूप में आवेदन किया जिनका निपटारा तारीख 10 मार्च, 2011 के निर्णय द्वारा किया गया और यह निर्णय 2011 की दांडिक अपील सं. 1194 में आक्षेपित है । चूंकि ये सभी मामले दांडिक मामले से उद्भूत

हैं, इसलिए इनकी एक साथ सुनवाई की गई है और एक ही निर्णय द्वारा निपटारा किया जा रहा है ।

2. अभियोजन पक्षकथन पर विचार करने और अपीलार्थियों की मुख्य प्रतिरक्षा का परिशीलन करने के पूर्व यह उल्लेखनीय है कि 29 अभियुक्तों में से, जिनका विचारण किया गया था, अभियुक्त सं. 12, 15, 16, 22 और 23 (विचारण न्यायालय के निर्णय के अनुसार क्रमांक दिया गया है) को विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया है । उच्च न्यायालय ने अभियुक्त सं. 27 को दोषमुक्त कर दिया और उसके समक्ष अपील लंबित रहने के दौरान अभियुक्त सं. 19 की मृत्यु हो गई । अभिलेख से यह दर्शित होता है कि अपीलार्थी मान सिंह (अभियुक्त सं. 8) की मृत्यु इस न्यायालय के समक्ष उसकी अपील के लंबित रहने के दौरान हो गई थी । इस प्रकार, वर्तमान रूप से 21 अपीलार्थी हैं जिन्हें दंड संहिता की धारा 302/149, 307/149, 147 और 148 के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया है । अभियुक्त सं. 1, 2 और 3 को आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 27 के अधीन अपराध के लिए भी दोषसिद्ध किया गया है । सभी को अन्य दंडादेशों के साथ आजीवन कारावास अधिनिर्णीत किया गया है और सभी दंडादेश साथ-साथ चलाए जाने हैं ।

3. अभियोजन पक्षकथन पर विचार करने से पूर्व यह उल्लेखनीय है कि घटना अभिकथित रूप से ग्राम धोड़ी में तारीख 10 सितंबर, 2001 को 6.45 बजे अपराह्न में पुलिस थाने से 18 किलोमीटर की दूरी पर घटित हुई थी । इत्तिलाकर्ता राम सिंह (अभि. सा. 15) गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हो गया था, उसका कथन उसी दिन 9.30 बजे अपराह्न में उसके चाचा चैन सिंह (अभि. सा. 17) की मौजूदगी में कैम्प धोड़ी के थानाध्यक्ष द्वारा अभिलिखित किया गया था और उसी दिन 10.30 बजे अपराह्न में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिलिखित की गई थी । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सम्यक् रूप से अपर मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट को तारीख 11 सितंबर, 2001 को भेज दी गई थी । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में 29 अभियुक्तों को नामित किया गया था और सभी अभियुक्त ग्राम धोड़ी के निवासी हैं । चार मृतक जिनकी मृत्यु इसी घटना के दौरान उन पर किए गए हमले के कारण हुई थी तथा आहत इत्तिलाकर्ता और मुख्य प्रत्यक्षदर्शी साक्षी अर्थात् अभि. सा. 12, 14, 15, 17, 19 और 24 भी उसी ग्राम के निवासी हैं । प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा जो घटनाक्रम तैयार किया गया है और हमें दर्शाया गया है, उससे यह प्रकट होता है कि कम से कम मान सिंह (अभियुक्त सं. 8) और उसके दो पुत्र

अभियुक्त सं. 5 और 29 भी उसी बड़े परिवार के सदस्य हैं जिस परिवार के चार मृतक और आहत इत्तिलाकर्ता अमर सिंह हैं । मान सिंह (अभियुक्त सं. 8) बापू सिंह (मृतक सं. 2) और मनोहर सिंह (मृतक सं. 4) का भाई है जबकि मृतक सं. 1 अर्थात् इन्दर सिंह और मृतक सं. 3 अर्थात् नागू सिंह, मृतक मनोहर सिंह के पुत्र हैं । इत्तिलाकर्ता अमर सिंह मृतक बापू सिंह का पुत्र है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट और आरोप पत्र में नामित किए गए अभियुक्तों ने पुलिस या मजिस्ट्रेट के समक्ष अपनी पहचान को कभी-भी चुनौती नहीं दी है । न ही इन साक्षियों की पहचान के मुद्दे पर उस समय कोई भी प्रतिपरीक्षा की गई है जब साक्षियों ने अपने अभिसाक्ष्य में अभियुक्तों और अपीलार्थियों को नाम लेकर उनके साथ नातेदारी का उल्लेख करते हुए निर्दिष्ट किया है ।

4. अमर सिंह (अभि. सा. 15) के पर्चा-बयान के अनुसार वह तारीख 10 सितंबर, 2001 को 6.45 बजे अपराह्न में अपने घर पर था और उस समय उसने "पटवारी का खेत" नाम के एक खेत से अपने चचेरे भाई इन्दर सिंह (मृतक सं. 1) के चिल्लाने की आवाज सुनी । वह घर से बाहर आया और उसने अपने चाचा मान सिंह (अभियुक्त सं. 8) और 28 अन्य नामित अभियुक्तों को इन्दर सिंह का पीछा करते हुए देखा । वे तलवार, बन्दूक, देशी पिस्तौल, लाठी और गडांसी से लैस थे । उन्होंने एक साथ मिलकर इन्दर सिंह (मृतक सं. 1) की हत्या कर दी । इसके पश्चात् वे इत्तिलाकर्ता (अभि. सा. 15) की ओर दौड़े और उसके दाहिने हाथ की कलाई पर तलवार से वार किया । उसके चीखने पर, उसका पिता बापू सिंह (मृतक सं. 2) इत्तिलाकर्ता को बचाने के लिए दौड़ता हुआ आया । उसके चाचा मान सिंह ने अपनी बन्दूक से गोली चलाई जिसके परिणामस्वरूप बापू सिंह नीचे गिर गया और सभी की मौजूदगी में "खाल" ही में उसकी मृत्यु हो गई । उसके चाचा मनोहर सिंह (मृतक सं. 4) और उसका पुत्र नागू सिंह (मृतक सं. 3) भी उन्हें बचाने के लिए दौड़ते हुए आए किन्तु अभियुक्तों ने उन पर भी हमला किया जिसके परिणामस्वरूप उनकी मृत्यु हो गई । ग्राम के बहुत से व्यक्ति इस घटना को देख रहे थे । अभियुक्तों ने मृतक इन्दर सिंह के विरुद्ध पानी की मोटर की चोरी का मामला रजिस्ट्रीकृत कराया था और उसे जेल अभिरक्षा से हाल ही में छोड़ा गया था । अभियुक्तों ने यह कहा कि चूंकि पुलिस ने कोई कार्रवाई नहीं की इसलिए वे खुद इन्दर सिंह से निपटेंगे । इत्तिलाकर्ता पक्ष और अभियुक्त मान सिंह के बीच भूमि को लेकर विवाद चला आ रहा था और इसी कारणवश मान सिंह और उसके

साथियों ने हथियारों से लैस होकर चार व्यक्तियों की मृत्यु कारित की और हत्या करने के आशय से इत्तिलाकर्ता को भी क्षति पहुंचाई । इत्तिलाकर्ता ने यह दावा किया है कि उसने, उसके चाचा चैन सिंह (अभि. सा. 17), उसकी माता (अभि. सा. 16) और उसकी पत्नी ने मकान में छुपकर अपनी जान बचाई ।

5. विचारण के दौरान, अभियोजन पक्ष की ओर से 24 साक्षियों की परीक्षा कराई गई और प्रदर्श पी-1 से पी-149 तक अनेक दस्तावेजों को चिह्नांकित किया गया । प्रतिरक्षा पक्ष ने भी चार साक्षियों की परीक्षा कराई और प्रदर्श डी-1 से डी-21 के रूप में दस्तावेजों को चिह्नांकित किया । जैसा कि पहले ही विचार किया गया है, विचारण के पश्चात् विद्वान् विशेष न्यायाधीश, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति झालावाड़, राजस्थान ने तारीख 13 फरवरी, 2004 के निर्णय के अनुसार, जो 2002 के सेशन विचारण मामला सं. 123 (13/2002) में पारित किया गया था, 29 में से 24 अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 302/149 के अधीन अपराध सहित अनेक अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया और सभी अभियुक्तों को कठोर आजीवन कारावास अधिनिर्णीत किया गया । विचारण न्यायालय ने अपीलार्थियों को दंड संहिता की धारा 120ख के अधीन आरोप से दोषमुक्त कर दिया । अपीलार्थियों द्वारा राजस्थान उच्च न्यायालय की जयपुर न्यायपीठ के समक्ष फाइल की गई अपीलें खारिज कर दी गईं और अभियुक्तों की दोषसिद्धि और दंडादेश की पुष्टि की गई ।

6. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् अधिवक्ता श्री बसंत ने सबसे पहले सभी अपीलार्थियों की शनाख्त से संबंधित मुद्दा उठाया क्योंकि महत्वपूर्ण साक्षी अर्थात् अभि. सा. 12, 14, 15, 17, 19 और 24 में से किसी भी साक्षी ने अपनी मुख्य परीक्षा में ऐसा कोई भी विशेष दावा नहीं किया है कि वे अभियुक्तों/अपीलार्थियों की शनाख्त कर सकते हैं । यह दलील दी गई है कि इस कमी के कारण अपीलार्थियों की मौजूदगी और उनका अपराध में भाग लेना सिद्ध नहीं होता है और वे दोषमुक्त किए जाने योग्य हैं । हमें ऊपर उल्लिखित आधारभूत तथ्यों के आलोक में इस दलील में ऐसी कोई भी गुणता दिखाई नहीं देती है क्योंकि तथ्यों से यह प्रकट होता है कि सभी अभियुक्तों/अपीलार्थियों को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में नामित किया गया है । अपीलार्थी सह-ग्रामवासी हैं और साक्षियों को पहले से जानते हैं और नाम आदि से उनकी शनाख्त किए जाने को अभियुक्तों द्वारा अन्वेषण या विचारण के दौरान किसी भी प्रक्रम पर चुनौती नहीं दी गई है ।

अपीलार्थियों की मौजूदगी और उनकी शनाख्त से यह तथ्य सामने आता है कि वे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में प्रकट की गई घटना के पूर्वतम वृत्तांत में नामित किए गए थे और तत्पश्चात् कई साक्षियों द्वारा उन्हें विचारण के दौरान स्पष्ट अभिकथन के साथ नामित किया गया है कि वे घटनास्थल पर मौजूद थे और उन्होंने अभियुक्त के रूप में किसी न किसी प्रकार घटना में भाग लिया है । ऐसी तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में अपीलार्थियों की ओर से शनाख्त के संबंध में उठाए गए मुद्दे में कोई सार नहीं है ।

7. अपीलार्थियों की ओर से तथ्यों के बहुत से अन्य मुद्दे भी अभियोजन पक्षकथन की आलोचना करते हुए उठाए गए हैं और हमें यह अभिनिर्धारित करने के लिए जोर दिया गया है कि अभियोजन पक्ष अपीलार्थियों के विरुद्ध युक्तियुक्त संदेह के परे आरोप साबित करने में असफल रहा है । मूल आलोचना इस प्रकार है कि अवलंब लिए गए 6 प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हितबद्ध साक्षी हैं और उनमें से तीन अर्थात् अभि. सा. 12, 14 और 24 अवयस्क हैं जिनके नाम प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में प्रकट नहीं किए गए हैं और यह दर्शाया गया है कि इन साक्षियों ने घटना देखी है । यह भी दलील दी गई है कि घटना खुले मैदान में घटित हुई है और अभिकथित रूप से बहुत से ग्रामवासियों ने देखी है किन्तु ऐसे किसी भी स्वतंत्र साक्षी की परीक्षा नहीं की गई है जिसका मृतकों के परिवार से नाता न हो और इसीलिए अभियोजन पक्षकथन खारिज किया जाना चाहिए । यह भी इंगित किया गया है कि अन्वेषक अधिकारी घटनास्थल से छर्रे बरामद नहीं कर सका और प्राक्षेपिकी विज्ञानी की रिपोर्ट भी उपलब्ध नहीं कराई गई है ताकि कुछ अभियुक्तों द्वारा प्रयोग किए गए अग्न्यायुध की संपुष्टि कराई जाती । हमारा ध्यान कुछ अभियुक्तों को पहुंची क्षतियों की ओर भी दिलाया गया है और अपीलार्थियों के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि अभियुक्तों को पहुंची क्षतियों के संबंध में कोई भी स्पष्टीकरण न दिए जाने पर अभियोजन पक्षकथन खारिज किया जाना चाहिए । इस प्रतिपादना के समर्थन में **श्री किशन और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] और **लक्ष्मी सिंह और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों का अवलंब लिया गया है ।

8. विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल ने विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय

---

[1] (2009) 12 एस. सी. सी. 757.

[2] (1976) 4 एस. सी. सी. 394.

के निर्णयों के विरुद्ध गंभीर शिकायत की है और यह अभिवाक् किया है कि दोनों न्यायालय, अभियुक्तों की अपराध में उस वैयक्तिक भूमिका का विश्लेषण करने में असफल रहे हैं जिसके आधार पर उन्हें दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 302, 307 के अधीन आरोपों के साथ सम्बद्ध किया जा सके । इस दलील का सार यह है कि जब तक एक-एक अभियुक्त के विरुद्ध व्यक्तिगत रूप से अभिकथन पर विचार न कर लिया जाए तब तक यह अभिनिर्धारित करना उचित नहीं होगा कि वे वास्तव में विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य हैं । दंड संहिता की धारा 149 की परिधि और व्यापकता और संबंधित मुद्दों को स्पष्ट करने के लिए विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल द्वारा इस न्यायालय के निम्न निर्णयों का अवलंब लिया गया है :–

(i) **कुलदीप यादव और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[1],

(ii) **बूसी कोटेश्वर राव और अन्य** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[2],

(iii) **खैरुद्दीन और अन्य** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[3] ।

9. अंत में, अपीलार्थियों की ओर से यह दलील दी गई है कि इस तथ्य पर विचार करते हुए कि सभी अभियुक्त, साक्षियों के ही ग्राम के निवासी हैं और पहले से एक-दूसरे को जानते हैं, इसलिए सभी साक्षियों द्वारा नहीं अपितु कुछ ही साक्षियों द्वारा अपीलार्थियों का नाम बताया जाना एक ऐसा महत्वपूर्ण संघटक है जिसके अनुसार संदेह के आधार पर दोषमुक्ति प्रदान की जानी चाहिए । **मसलती आदि** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[4] वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया गया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि निस्संदेह समुचित मामलों में एक ही साक्षी का विश्वासप्रद साक्ष्य अभियुक्तों को दोषसिद्ध करने के लिए पर्याप्त हो सकता है किन्तु जब दांडिक न्यायालय किसी ऐसे अपराध के संबंध में कार्यवाही करता है जिसमें बड़ी संख्या में अपराधी भाग लेते हैं और आहतों की संख्या भी अधिक होती है, तब अभियोजन पक्ष का समर्थन करने वाले आम तौर पर दो या तीन साक्षियों के साक्ष्य को परखा जाता है ।

---

[1] (2011) 5 एस. सी. सी. 324.
[2] (2012) 12 एस. सी. सी. 711.
[3] (2013) 5 एस. सी. सी. 753.
[4] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 202.

न्यायालय ने यह विचार करने के पश्चात् इस परीक्षण का अनुमोदन किया कि यह (परीक्षण) बलकृत प्रतीत होता है किन्तु समुचित मामलों में इसका प्रयोग अविवेकी या अयुक्तियुक्त नहीं माना जा सकता । वर्तमान मामले में ऐसा परीक्षण करने के लिए न्यायालय की सहायता करने हेतु प्रत्येक अपीलार्थी द्वारा प्रयोग किए गए हथियार और अपराध में अभिकथित विशिष्ट भूमिका के संबंध में उनके विरुद्ध प्रस्तुत प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के साक्ष्य के बाबत विस्तृत टिप्पण और तालिकाएं भी बनाई गई हैं ।

10. इसके प्रतिकूल, इत्तिलाकर्ता और राज्य के विद्वान् काउंसेल ने विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय के निर्णयों का अवलंब लिया है और यह निवेदन किया है कि दोनों न्यायालयों ने मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य पर सम्यक् रूप से विचार किया है और मामले के तथ्यों के आधार पर अपीलार्थियों के विरुद्ध अभिलिखित दोषसिद्धि के समवर्ती निष्कर्ष में कोई भी हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है । अभियोजन पक्ष द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि जब एक बड़ी संख्या में अभियुक्तों ने मृतक का पीछा किया था और अंधाधुंध हमला किया था जिसके परिणामस्वरूप खुले मैदान में चार व्यक्तियों की मृत्यु हो गई और इत्तिलाकर्ता को गंभीर क्षतियां पहुंचीं, तब ऐसी स्थिति में साक्षियों से यह प्रत्याशा नहीं की जाती है कि वे यह देख पाते, याद कर पाते और अभिसाक्ष्य दे पाते कि पांच आहतों में किस-किस आहत को किस-किस अभियुक्त ने क्षति पहुंचाई । अभियोजन पक्ष की ओर से यह दलील दी गई है कि विचारण न्यायालय ने चिकित्सीय साक्ष्य और क्षतियों पर ठीक ही विचार किया है जिससे यह दर्शित होता है कि कुल मिलाकर तीन मृतकों को अग्न्यायुध से क्षतियां पहुंचीं जिनमें से एक मृतक नागू सिंह है जिसके शरीर से दो छर्रे बरामद किए गए जिनमें एक बाईं कलाई से और एक छर्रा अमाशय से निकाला गया ; दूसरा मृतक इन्दर सिंह है जिसके शरीर के पृष्ठ-तल से 12 छर्रे बरामद किए गए और तीसरा मृतक बापू सिंह है जिसके जबड़े पर बंदूक की गोली से क्षति कारित हुई है और इस क्षति से प्लास्टिक की एक गोल टोपी के साथ 66 छर्रे निकाले गए हैं । मस्तिष्क से भी छर्रे निकाले गए हैं ।

11. इत्तिलाकर्ता और राज्य के विद्वान् काउंसेलों ने यह दलील दी है

कि निःसंदेह घटनास्थल के आस-पास खड़े निर्दोष व्यक्तियों या साक्षियों को विधिविरुद्ध जमाव के सदस्यों के रूप में अभियुक्तों की सूची में सम्मिलित नहीं करना चाहिए और न्यायालयों को ऐसे तथ्यों से सतर्क और सावधान रहना चाहिए जिनसे घटना के पूर्व और पश्चात् अभियुक्तों के आचरण के आधार पर उनका अपराध में अंतर्वलित होना दर्शित होता हो । अपराध में फंसाने वाला आचरण प्रत्येक मामले में अलग ही होगा और यह अन्य बातों के साथ-साथ अभियुक्त के आचरण की प्रकृति, स्पष्ट कृत्य और हथियार, यदि कोई है, रखने जैसे प्रत्येक मामले के विशिष्ट तथ्यों के आधार पर ही सुनिश्चित किया जा सकता है । इस प्रयोजन के लिए, अभियोजन पक्ष के अनुसार निचले न्यायालयों ने प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य का विस्तृत रूप से विश्लेषण किया है और यह भी देखा है कि अभियुक्तों से अनेक हथियारों की बरामदगी की गई है । अतः, उनकी दलील के अनुसार, अपीलार्थियों की दोषसिद्धि में कोई भी हस्तक्षेप किया जाना अपेक्षित नहीं है ।

12. महत्वपूर्ण साक्षियों के संपूर्ण साक्ष्य, अन्य सामग्री और निचले न्यायालयों के निर्णय का परिशीलन करने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि चूंकि अभियुक्तों की संख्या बहुत अधिक है और वे इतने शक्तिशाली और बलवान हैं कि उन्होंने बड़ी संख्या में लोगों की मौजूदगी में चार व्यक्तियों की हत्या कारित की है इसलिए यह समझना और मूल्यांकन करना मुश्किल नहीं है कि ग्राम के ऐसे स्वतंत्र साक्षियों ने, जिन्होंने घटना देखी थी, अभियोजन पक्ष का समर्थन करना नहीं चाहा । किन्तु इससे ऐसे छह प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के अभिसाक्ष्य का महत्व कम नहीं हो जाता जिन्होंने ऐसी घटना का संगत वर्णन किया है जिसे घटना के तत्काल पश्चात् ही अभि. सा. 15 द्वारा दर्ज कराई गई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में संक्षिप्त रूप से प्रकट किया गया है और अभि. सा. 15 वह साक्षी है जो इस घटना में गंभीर रूप से आहत हुआ है और इस साक्षी की मौजूदगी पर संदेह नहीं किया जा सकता । यदि यह साक्षी इकलौता साक्षी होता, तब भी निचले न्यायालयों के लिए यह संभव था कि वे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अन्तर्विष्ट उसके पूर्ववर्ती कथन को दृष्टिगत करते हुए और न्यायालय में उसके परिसाक्ष्य की सत्यता परखने के पश्चात् अभियुक्तों को दोषसिद्ध कर देते । ऐसी तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में हमारा यह निष्कर्ष है कि यदि अन्वेषक अधिकारी खुले मैदान अर्थात् घटनास्थल से छर्रे बरामद करने में असफल

रहा है और यदि वह प्राक्षेपिकी विज्ञानी की रिपोर्ट प्राप्त नहीं कर सका है, तब भी अभियोजन पक्षकथन पर संदेह नहीं किया जा सकता । इस घटना के प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य और चिकित्सीय साक्ष्य जिसके अनुसार अग्न्यायुध से कारित क्षतियों के अतिरिक्त अनेक क्षतियां दर्शाई गईं हैं, से एक दूसरे का समर्थन होता है । इस मुद्‌दे के संबंध में अभियुक्तों के विरुद्ध विचारण न्यायालय द्वारा की गई चर्चा और निकाले गए निष्कर्षों में गुणता है ।

13. यह आलोचना कि कुछ अभियुक्तों को क्षतियां पहुंचीं हैं जिसके बाबत अभियोजन पक्ष ने कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया है, विचारण न्यायालय द्वारा ठीक ही खारिज की गई है क्योंकि ऐसा कोई भी प्रति वृत्तांत नहीं है और न ही ऐसा कोई सुझाव दिया गया है जिससे यह प्रकट होता हो कि किसी भी अभियुक्त को एक ही घटना के दौरान और एक ही स्थल पर क्षतियां पहुंचीं हैं । प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से किसी भी व्यक्ति ने अभिकथित रूप से ऐसा कोई मामला दर्ज नहीं कराया है जिससे यह प्रकट होता हो कि कहां और किन परिस्थितियों में अभियुक्तों को क्षतियां पहुंचीं । मामले के तथ्यों के आधार पर किसी भी प्रति वृत्तांत और प्रतिरक्षा के अभिवाक् के अभाव में यह उपधारित करना अनुचित होगा कि अभियुक्तों को एक ही घटना के दौरान एक ही स्थल पर क्षतियां पहुंचीं हैं । यदि केवल ये दो संघटक सिद्ध किए जाते, तब प्रतिरक्षा पक्ष अभियोजन पक्ष से यह स्पष्टीकरण मांग सकता था कि तीन अभियुक्तों को कैसे क्षतियां पहुंचीं । उनकी क्षतियां न तो घातक हैं और न ही उनसे जीवन को कोई खतरा है और इस बात से भी अभियोजन पक्ष पर यह स्पष्ट करने का भार कम हो जाता है कि अभियुक्तों को क्षतियां कैसे पहुंचीं । उपरोक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए, हमारा यह मत है कि **श्री किशन** (उपरोक्त) और **लक्ष्मी सिंह** (उपरोक्त) वाले मामलों में दिए गए निर्णयों से अपीलार्थियों को कोई सहायता नहीं मिल सकती । **लक्ष्मी सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 12 में न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि उस मामले की परिस्थितियों के आधार पर यह संदेह नहीं किया जा सकता कि अभियुक्तों को उस समय क्षतियां कारित हुईं थीं जब उन्होंने हमला किया था । वर्तमान मामले में, तथ्य भिन्न हैं, इसलिए इस आधार पर अभियोजन पक्षकथन अविश्वसनीय नहीं ठहराया जा सकता है कि कुछ अभियुक्तों अर्थात् मान सिंह (अभियुक्त सं. 8), राम प्रसाद (अभियुक्त सं. 28) और

बहादुर सिंह (अभियुक्त सं. 29) को अभिकथित रूप से क्षतियां पहुंचीं थीं ।

14. अब विचार के लिए मुख्य मुद्दा यह है कि अपीलार्थियों को चार व्यक्तियों की हत्या करने और इत्तिलाकर्ता पर हत्या के आशय से हमला करने के लिए दोषसिद्ध करने हेतु क्या निचले न्यायालयों ने उनके विरुद्ध दंड संहिता की धारा 149 का अवलंब ठीक लिया है । दंड संहिता की धारा 149 के लागू किए जाने के विधि के सिद्धांत को अपीलार्थियों के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल द्वारा उद्धृत किए गए निर्णयों सहित कई निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा स्पष्ट किया गया है । **कुलदीप यादव** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 39 में निम्न शब्दों में विधि कथित की गई है :–

> "39. धारा 149 को अधिनियमित करने में विधान मण्डल का आशय विधिविरुद्ध जमाव के एक या अधिक सदस्यों द्वारा कारित किए गए प्रत्येक अपराध के लिए उसके प्रत्येक सदस्य को दंडित करना है । धारा 149 लागू करने के लिए यह दर्शित किया जाना चाहिए कि अपराध में फंसाने वाला कार्य विधिविरुद्ध जमाव के सामान्य उद्देश्य को पूरा करने के लिए किया गया है और ऐसे कृत्य की जानकारी जमाव के अन्य सदस्यों को भी होनी चाहिए जिसका कारित किया जाना सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में हो । यदि जमाव के सदस्यों को यह जानकारी थी या वे उस बात से अवगत थे कि सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में कोई विशेष अपराध कारित किया जाना संभावित है, तब वे दंड संहिता की धारा 149 के अधीन ऐसे कृत्य के लिए दायी होंगे ।"

15. **बूसी कोटेश्वर राव** (उपरोक्त) वाले मामले में तथ्यों से यह दर्शित हुआ कि अपराध में बड़ी संख्या में लोग आलिप्त थे, अतः **मसलती** (उपरोक्त) वाले मामले में व्यक्त किए गए मत का अनुमोदन करते समय इस न्यायालय ने निर्णय के पैरा 11 में चेतावनी दी है कि न्यायालयों को आगजनी और हत्या के ऐसे मामलों में सतर्कता से काम लेना चाहिए जिनमें अभियुक्तों की संख्या अधिक होती है और ऐसे मामलों में भी साक्षियों के परिसाक्ष्य पर विश्वास करने के लिए सावधानी बरतनी चाहिए जिन्होंने अभियुक्तों को विशिष्ट रूप से निर्दिष्ट किए बिना सामान्य साक्ष्य दिया है या अभियुक्तों की अपराध में विशेष भूमिका का उल्लेख नहीं किया है ।

16. अपीलार्थियों द्वारा **खैरुद्दीन** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय का जो अवलंब लिया गया है वह गलत है । उस मामले में, जैसाकि पैरा 12, 13 और 14 से प्रकट होता है, हमला करने का प्रत्यक्ष कार्य पांच अपीलार्थियों के मामले में साबित होता है जो अपराध में एक साथ थे और इसीलिए उनकी दोषसिद्धि की पुष्टि की गई जबकि कुछ अन्य अभियुक्त एक भिन्न समूह में शामिल थे और यह पाया गया कि ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे यह दर्शित होता हो कि वे घटनास्थल पर मौजूद थे या उन्होंने उस घटना में भाग लिया था । वर्तमान मामले में, साक्ष्य के आधार पर निकाला गया निष्कर्ष भिन्न है ।

17. दंड संहिता की धारा 149 के संघटकों के अधीन विधिविरुद्ध जमाव होना अपेक्षित है जिसे दंड संहिता की धारा 141 के अधीन परिभाषित किया गया है कि यह 5 या उससे अधिक व्यक्तियों का जमाव है, यदि उस जमाव को गठित करने वाले व्यक्तियों का सामान्य उद्देश्य दंड संहिता की धारा 141 में पूर्णतया अनुध्यात पांच उद्देश्यों में कोई भी है । तृतीय उद्देश्य है – "कोई रिष्टि कारित करना या अप्राधिकृत अतिचार या अन्य अपराध कारित करना" । धारा 141 के स्पष्टीकरण के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि एक जमाव जो विधिविरुद्ध नहीं था, गठित होने पर तत्पश्चात् विधिविरुद्ध हो सकता है । धारा 149 के अनुसार यदि विधिविरुद्ध जमाव का कोई भी सदस्य उस जमाव के सामान्य आशय को अग्रसर करने में कोई अपराध कारित करता है तब प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध के कारित किए जाने के समय पर उस विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य था, कारित किए गए अपराध का दोषी होगा ।

18. चूंकि यह दृढ़तापूर्वक दलील दी गई है कि निचले न्यायालयों ने इस संबंध में अपने विवेक से काम नहीं लिया है कि क्या अपीलार्थी विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य थे या नहीं, हमारा कर्तव्य है कि हम उस विषय से संबंधित विधि पर पुनः विचार करें । इस संबंध में विधि सुस्थापित है, जैसाकि **राय फर्नेन्डिज** बनाम **गोआ राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है कि सामान्य उद्देश्य की विद्यमानता को सुनिश्चित करने के लिए न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उन

---

[1] (2012) 3 एस. सी. सी. 221.

परिस्थितियों पर विचार करे जिनमें घटना घटित हुई है, विधिविरुद्ध जमाव के सदस्यों के आचरण तथा घटनास्थल पर अभियुक्तों द्वारा लाए गए और प्रयोग किए गए हथियारों पर भी विचार किया जाना चाहिए । यह भी सुस्थापित विधि है, जैसाकि **रामचन्द्रन और अन्य** बनाम **केरल राज्य**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, कि सामान्य उद्देश्य क्षणभर में सृजित हो सकता है । विधिविरुद्ध जमाव के सदस्यों द्वारा पूर्व-चिन्तन किया जाना आवश्यक नहीं है ।

19. सुस्थापित विधि को दृष्टिगत करते हुए, जैसाकि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में वर्तमान मामले के तथ्य अभिकथित किए गए हैं और न्यायालय में साबित किए गए हैं, उनसे ऐसा कोई संदेह नहीं होता है कि जिन व्यक्तियों ने इन्दर सिंह (मृतक सं. 1) का पीछा किया था और उसकी मृत्यु कारित की थी और उसके पश्चात् तीन अन्य व्यक्तियों का पीछा किया, उनका घेराव किया तथा उनकी मृत्यु कारित की, साथ ही इत्तिलाकर्ता अमर सिंह को गंभीर क्षतियां कारित कीं, पांच या अन्य व्यक्तियों का ऐसा जमाव था जिसे विधिविरुद्ध जमाव कहा जाना चाहिए क्योंकि इस जमाव के कार्य से यह दर्शित होता है कि जमाव का सामान्य उद्देश्य अपराध कारित करना था । पश्चात्वर्ती कृत्य से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि विधिविरुद्ध जमाव का सामान्य उद्देश्य 4 व्यक्तियों की हत्या का गंभीर अपराध कारित करना और इत्तिलाकर्ता को गंभीर क्षतियां पहुंचाना था ।

20. अतः इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि निचले न्यायालयों ने दंड संहिता की धारा 149 लागू करने और विधिविरुद्ध जमाव के सदस्यों को धारा 302 और धारा 307 (सपठित दंड संहिता की धारा 149) के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध करने में कोई त्रुटि नहीं की है । कुछ दलील इस संबंध में दी गई है कि अपीलार्थियों का कोई भी स्पष्ट हेतु नहीं था किन्तु ऐसी स्थिति में हेतु का स्पष्ट होना बिल्कुल भी आवश्यक या तात्विक नहीं है जब अपराध प्रत्यक्षदर्शियों साक्षियों सहित स्पष्ट और तर्कसम्मत साक्ष्य द्वारा साबित किया गया हो ।

21. जहां तक **मसलती** (उपरोक्त) वाले मामले में प्रतिपादित सतर्कता के सिद्धांत का संबंध है, विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री बसंत द्वारा दी गई इस

---

[1] (2011) 9 एस. सी. सी. 257.

दलील से हमारा समाधान हो गया है कि मामले के विशिष्ट तथ्यों के आधार पर, निचले न्यायालयों को यह विनिश्चित करना चाहिए कि प्रत्येक अभियुक्त के घटनास्थल पर मौजूद होने और अपराध में उसकी भूमिका को साबित करने के लिए साक्ष्य की कितनी संपुष्टि अपेक्षित है । यद्यपि इत्तिलाकर्ता ने नौ व्यक्तियों के मौजूद होने का दावा किया है किन्तु तत्पश्चात् विचारण न्यायालय द्वारा पांच अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया और एक अभियुक्त को उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किया गया । इस मुद्दे के संबंध में उन साक्षियों की संख्या दर्शाने वाली तालिका का परिशीलन करने पर जिन्होंने अलग-अलग अपीलार्थियों के विरुद्ध उनकी मौजूदगी, अपराध में भाग लेने, हथियार का प्रयोग करने और प्रत्यक्ष कृत्य करने, यदि कोई है, के संबंध में अभिसाक्ष्य दिया है, हमारा यह निष्कर्ष है कि **मसलती** (उपरोक्त) वाले मामले में जिस कसौटी का अनुमोदन किया गया है और तत्पश्चात् **बूसी कोटेश्वर राव** (उपरोक्त) वाले मामले सहित अन्य कई मामलों में अनुसरण किया गया है, इस मामले में भी उसका अनुसरण किया जाना चाहिए । **बूसी कोटेश्वर राव** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 13 में इस विषय के संबंध में विधि निम्न रूप में स्पष्ट की गई है :–

> "13. यह स्पष्ट है कि जब दांडिक न्यायालय को ऐसे मामलों में विचार करना होता है जिनमें अनेक अपराधियों द्वारा अपराध कारित किया जाता है और अनेक व्यक्ति आहत होते हैं, तब सामान्य कसौटी यह है कि दोषसिद्धि केवल तब कायम रह सकती है कि जब ऐसे दो या अन्य साक्षियों द्वारा इसका समर्थन होता हो जिन्होंने प्रश्नगत घटना का संगत वर्णन किया हो ।"

22. चूंकि इस मामले में अभियुक्त व्यक्ति और छह तात्विक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी सह-ग्रामवासी हैं, इसलिए यह प्रत्याशा की जाती है कि कम से कम तीन साक्षी अलग-अलग अभियुक्तों के नाम बताएं ताकि उनकी दोषसिद्धि कायम रखी जा सके । इस कसौटी का प्रयोग करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि भगवान सिंह (अभियुक्त सं. 9) ; पुत्र प्रभु लाल सुरेश कुमार पुत्र राम धाकड़ (अभियुक्त सं. 18) ; किन्हीं राम (अभियुक्त सं. 20) प्रहलाद सिंह पुत्र नाथू लाल (अभियुक्त सं. 27) ; और राम प्रसाद पुत्र भेरू लाल (अभियुक्त सं. 28) संदेह का लाभ देते हुए दोषमुक्त किए जाने चाहिएं । इस संदेह का लाभ अभियुक्तों के पक्ष में जाता है क्योंकि भले ही इत्तिलाकर्ता

(अभि. सा. 15) द्वारा विशेष रूप से नामित किया गया है कि ये वही व्यक्ति हैं जो विधिविरुद्ध जमाव के सदस्य थे और इन्होंने ही हमला किया था किन्तु इत्तिलाकर्ता के इस दावे का समर्थन एक से अधिक साक्षियों द्वारा नहीं किया गया है । दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त अभियुक्तों के विरुद्ध तीन साक्षियों का साक्ष्य स्पष्ट और तर्कसंगत नहीं है । जहां तक राम प्रसाद (अभियुक्त सं. 28) का संबंध है, निस्संदेह अभि. सा. 12 और अभि. सा. 24 द्वारा उसे नामित किया गया है किन्तु उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि वह राम प्रसाद पुत्र भेरू लाल था या इसी नाम का अन्य कोई व्यक्ति था अर्थात् राम प्रसाद पुत्र जेठ राम (अभियुक्त सं. 25) ।

23. उपर्युक्त पांच अपीलार्थियों अर्थात् भगवान सिंह पुत्र प्रभु लाल (2009 की दांडिक अपील सं. 1239 में का अपीलार्थी सं. 3) ; सुरेश कुमार पुत्र राम धाकड़ (2009 की दांडिक अपील सं. 493 में का अपीलार्थी सं. 3) ; किन्हीं राम पुत्र प्रभु लाल (2009 की दांडिक अपील सं. 1239 में का अपीलार्थी सं. 4) ; प्रहलाद सिंह पुत्र नाथू लाल (2009 की दांडिक अपील सं. 1241 में का एकमात्र अपीलार्थी) ; और राम प्रसाद पुत्र भेरू लाल (2009 की दांडिक अपील सं. 493 में का अपीलार्थी सं. 4) द्वारा फाइल की गई अपीलें मंजूर की जाती हैं । इन अपीलार्थियों को संदेह का लाभ दिया जाता है और सभी आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है । शेष 16 अपीलार्थियों की अपीलें खारिज की जाती हैं । यदि अपीलार्थी जमानत पर हैं, तब उनके बंधपत्र रद्द किए जाते हैं और उन्हें विधि के अनुसरण में शेष दंडादेश भोगने के लिए तत्काल अभिरक्षा में लिया जाए ।

अपीलों का निपटारा किया गया ।

अस.

अहमद शाह और एक अन्य

बनाम

राजस्थान राज्य

तथा

राजस्थान राज्य

बनाम

रसूल शाह और अन्य

तथा

राजस्थान राज्य

बनाम

श्रीमती हलीमा और अन्य

तथा

राजस्थान राज्य

बनाम

इकबाल और अन्य

9 जनवरी, 2015

न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर, न्यायमूर्ति आदर्श कुमार गोयल और न्यायमूर्ति (श्रीमती) आर. बानुमति

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और 300 का अपवाद 4 – हत्या और हत्या की कोटि में न आने वाला मानव वध – अचानक झगड़ा होने पर अपीलार्थियों और शिकायतकर्ता पक्ष के बीच लड़ाई – पूर्व-चिंतन का अभाव – बंदूक छीनने और हाथापाई के दौरान क्षतियां कारित होना और दो व्यक्तियों की मृत्यु हो जाना – अपीलार्थियों ने पूर्व-चिंतन के बिना अचानक लड़ाई में असम्यक् लाभ लिए बिना मृत्यु कारित की है, ऐसी स्थिति में अपराधी धारा 302 के अधीन नहीं अपितु धारा 300 के अपवाद 4 के अधीन अपराध के दोषी होंगे ।

इस मामले में अपीलार्थियों और शिकायतकर्ता पक्ष के बीच भूमि को लेकर विवाद चल रहा था । घटना से 7-8 दिन पहले शिकायतकर्ता पक्ष ने अपीलार्थियों के खेत पर कब्जा करने का प्रयास किया था जिसके पश्चात् अपीलार्थी पक्ष ने उन्हें वहां से हटा दिया था । घटना के दिन शिकायतकर्ता पक्ष अपीलार्थियों के उक्त खेत पर कब्जा करने के आशय से आया और दोनों पक्षों के बीच कहा-सुनी हुई । इसके पश्चात् दोनों पक्ष गुत्थम-गुत्था हो गए और परिणामस्वरूप दो व्यक्तियों की मृत्यु हो गई और कुछ लोगों को क्षतियां कारित हुईं । अपीलार्थियों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 307, 302, 323, 147, 148 और 149 के अधीन मामला दर्ज किया गया । विचारण न्यायालय द्वारा सभी अभियुक्तों को उक्त अपराधों का दोषी पाया । इस आदेश से व्यथित होकर अभियुक्तों ने राजस्थान उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी गुरुमुख सिंह और अहमद शाह को शब्बीर शाह की मृत्यु के लिए जिम्मेदार पाया और उन्हें दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध किया । उच्च न्यायालय ने अभियुक्त सुबहान शाह और रसूल शाह को दंड संहिता की धारा 307/149 के अधीन दोषसिद्ध किया और उनके दंड को कम करके पहले से भोगे गए दंड जितना कर दिया । अन्य सभी अभियुक्तों को केवल दंड संहिता की धारा 148 के अधीन दोषसिद्ध किया । इस आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थियों ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की तथा राज्य ने भी अभियुक्तों की दंड संहिता की धारा 302/149 और 307/149 के अधीन की गई दोषमुक्ति के विरुद्ध अपीलें फाइल कीं । उच्चतम न्यायालय ने अपीलार्थियों की अपीलें भागतः मंजूर कीं और राज्य की ओर से फाइल की गई अपीलें खारिज कर दीं । इस प्रकार उच्चतम न्यायालय ने सभी अपीलों का निपटारा किया । अपीलों का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – पक्षकारों के बीच विवाद 14 बीघा भूमि से संबंधित है । अब्दुल शाह द्वारा उक्त भूमि अपीलार्थी अहमद शाह को 75,000/- रुपए के प्रतिकर पर विक्रय की गई थी और यह बताया गया है कि इस भूमि का कब्जा अहमद शाह को दिया गया । प्रदर्श डी-8 तारीख 9 अप्रैल, 1987 का विक्रय-विलेख है जो अब्दुल शाह द्वारा अहमद शाह के पक्ष में निष्पादित किया गया है । भूमि से संबंधित पक्षकारों के बीच मुकदमेबाजी चल रही थी । अभियोजन पक्ष का यह पक्षकथन है कि अभियुक्त खेत पर गए थे

और उन्होंने अब्दुल शाह और शब्बीर शाह से कब्जा छीनने का प्रयास किया और एतद्द्वारा शब्बीर शाह और रखू शाह की अभिकथित रूप से मृत्यु कारित की और रखिया (अभि. सा. 8) को क्षतियां पहुंचाईं । अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य और सामग्रियों का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने पर यह पता चलता है कि अभियुक्त पक्ष के पास भूमि का वास्तविक कब्जा था और शिकायतकर्ता पक्ष बलपूर्वक कब्जा लेने के लिए खेत पर गया था । रखिया (अभि. सा. 8) ने यह स्वीकार किया है कि इस घटना के लगभग 7 या 8 दिन पूर्व, उसके पति अब्दुल शाह उसके बड़े पुत्र हसन शाह ने बलपूर्वक खेत पर कब्जा किया था तथा अहमद शाह और रसूल शाह ने उन्हें ऐसे करने से रोका । अभि. सा. 8 ने यह कथन किया है कि रफीक शाह ने उन्हें यह बताया था कि वह उन्हें खेत का कब्जा दिलाने की व्यवस्था करेगा और इसीलिए उस दिन शिकायतकर्ता पक्ष उसके साथ खेत पर गया था । रखिया ने यह भी स्वीकार किया है कि खेत में नरमा की फसल थी । अभि. सा. 8 ने यह भी कथन किया है कि घटना के दिन अर्थात् 29 अप्रैल, 1996 को रखिया उसका भाई रखू शाह, हसन शाह शब्बीर शाह और कुछ अन्य व्यक्ति भूमि का कब्जा लेने गए और शब्बीर शाह बन्दूक से लैस था । अभि. सा. 8 आहत साक्षी है, इसलिए उसके साक्ष्य की गुणवत्ता अधिक है और उसे अधिक महत्व दिया जाना चाहिए । घटना की उत्पत्ति के संबंध में मामले का समुचित रूप से मूल्यांकन करने के लिए, हम प्रतिपरीक्षा के दौरान अभि. सा. 8 द्वारा दिए गए साक्ष्य पर विचार करेंगे । अभि. सा. 21 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि घटना के दिन, अहमद शाह और उसके साथियों के पास उस भूमि का कब्जा था और उस भूमि पर अहमद शाह, रूपा राम बाजीगर से कृषि करवा रहा था और घटना के समय उस खेत में अहमद शाह के लिए रूपा राम बाजीगर द्वारा तैयार की गई नरमा की फसल खड़ी हुई थी । अन्वेषक अधिकारी ने यह भी स्वीकार किया है कि अन्वेषण के दौरान यह बात सामने आई कि तारीख 28 अप्रैल, 1996 को शिकायतकर्ता पक्ष ने उस भूमि पर कब्जा करने का असफल प्रयास किया था । अन्वेषक अधिकारी ने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि घटना के दिन अभियुक्त पक्ष के पास विवादित भूमि का कब्जा था । अभि. सा. 21 के साक्ष्य और प्रदर्श डी-35 से यह पता चलता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 67/1996 के अनुसार एक प्रतिमामला संस्थित किया गया था । उक्त मामले का निर्णय प्रदर्श डी-35 है जिससे भी यह उपदर्शित होता है कि अभियुक्त के पास विवादित भूमि का कब्जा था । प्रदर्श डी-8 तारीख 9

अप्रैल, 1987 का विक्रय-विलेख है जो अब्दुल शाह द्वारा अहमद शाह के पक्ष में निष्पादित किया गया था और इस विलेख से भी अभियुक्त व्यक्तियों का भूमि पर कब्जा होना उपदर्शित होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्तों ने यह साबित करने के लिए प्रदर्श डी-8, 9, 10, 28 और 35 प्रस्तुत किए हैं कि अभियुक्तों के पास विवादित भूमि का कब्जा था और साक्ष्य से यही उद्‌भूत होता है कि भूमि का कब्जा अभियुक्तों के पास था और शिकायतकर्ता पक्ष बन्दूक से लैस होकर उस संपत्ति का बलपूर्वक कब्जा लेने के लिए खेत पर गया था और इस तथ्य से, अभियोजन पक्ष द्वारा दर्शाई गई घटना की उत्पत्ति पर घोर संदेह होता है । हसन शाह (अभि. सा. 7) ने यह कथन किया है कि जब रखिया (अभि. सा. 8) झोपड़ी में चाय बना रही थी तब अभियुक्त पक्ष एक साथ वहां पहुंचे और अपीलार्थियों ने शब्बीर शाह को उस समय क्षतियां पहुंचाईं जब वह निकट ही चारपाई पर सो रहा था और इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि सुबहान शाह ने रखू शाह की दाईं टांग पर कुल्हाड़ी से क्षति कारित की । अभि. सा. 8 ने यह भी कथन किया है कि वह झोपड़ी में ईंटों से बने चूल्हे पर चाय बना रही थी और चाय तोपिया में बनाई जा रही थी और घटना के पश्चात् तोपिया और चूल्हा झोपड़ी में ही छोड़ दिए गए । प्रदर्श पी-14 स्थल-नक्शा है जिसमें झोपड़ी और घटना का दृश्य चिन्हांकित किया गया है । जब अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 21) को स्थलनक्शा प्रदर्श पी-14 दिखाया गया, तब उसने यह कथन किया कि उसने प्रदर्श पी-14 में किसी भी चूल्हे का उल्लेख नहीं किया है । अभि. सा. 21 ने यह भी कथन किया है कि उसने घटनास्थल पर कोई भी तोपिया या चाय बनाने का बर्तन नहीं देखा था । दूसरी ओर अभि. सा. 21 ने यह कथन किया है कि झोपड़ी में एयरगन से टूटा हुआ लकड़ी का एक टुकड़ा देखा था । जैसा कि अभि. सा. 7 और 8 ने कथन किया है, यदि वास्तव में घटना के समय झोपड़ी में चाय बनाई जा रही थी तब मैली, तोपिया, चूल्हा और बर्तन झोपड़ी में ही बिखरे हुए पाए जाते कि अन्वेषक अधिकारी को घटनास्थल पर न तो चूल्हा मिला और न ही बर्तन, इस तथ्य से अभियोजन पक्ष द्वारा दी गई यह दलील असंभावी हो जाती है कि अभियुक्तों ने हमला किया था । अभि. सा. 3, अभि. सा. 4 और अभि. सा. 7 ने अपीलार्थियों के स्पष्ट कृत्य के संबंध में बताया है कि अपीलार्थी गुरुमुख सिंह ने शब्बीर शाह की गर्दन पर गंडासी से वार किए और अहमद शाह ने उसके सिर पर भाले से क्षति पहुंचाई । अभि. सा. 8 आहत साक्षी है, इस साक्षी ने अपीलार्थियों द्वारा शब्बीर शाह को पहुंचाई गई क्षतियों के बारे में साक्ष्य

दिया है । अपीलार्थियों के स्पष्ट कृत्य के संबंध में निचले न्यायालयों द्वारा व्यक्त किए गए समवर्ती मतों से हमारा समाधान हो गया है और प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों, विशेषकर अभि. सा. 8 जिसने दो अपीलार्थियों द्वारा अपराध में भाग लेने और घातक क्षतियां पहुंचाने के संबंध में अपना संगत अभिसाक्ष्य दिया है, के कथनों से अपीलार्थियों का स्पष्ट कृत्य साबित हो गया है । किंतु जहां दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन उनकी दोषसिद्धि का संबंध है, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर हम उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत से सहमत नहीं हैं । दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 4 के अनुसार मानव वध हत्या नहीं है, यदि मानव वध अचानक झगड़ा जनित आवेश की तीव्रता में हुई अचानक लड़ाई में पूर्व-चिन्तन बिना और अपराधी द्वारा अनुचित लाभ उठाए बिना या क्रूरतापूर्ण या अप्रायिक रीति से कार्य किए बिना किया गया हो । दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 4 का अवलंब लेने के लिए चार अध्यपेक्षाओं का समाधान होना चाहिए, अर्थात् – (i) अचानक झगड़ा हुआ हो ; (ii) कोई भी पूर्व-चिन्तन न किया गया हो ; (iii) कृत्य आवेश की तीव्रता में किया गया हो ; और (iv) हमलावर ने कोई भी असम्यक् फायदा न लिया हो और न ही क्रूरतापूर्ण रीति में कार्य किया हो । जैसाकि इसके पूर्व विचार किया गया है, अब्दुल शाह ने वर्ष 1987 में अहमद शाह की संपत्ति क्रय की थी । अहमद शाह की ओर से रूपा राम बाजीगर खेती कर रहा था । साक्ष्य में यह प्रस्तुत किया गया है कि घटना के दिन खेत में नरमा की फसल खड़ी हुई थी जो रूपा राम बाजीगर द्वारा तैयार की गई थी । जैसाकि अभि. सा. 8 के साक्ष्य से दिखाई देता है, शिकायतकर्ता पक्ष अर्थात् रखिया, रखू शाह, हसन शाह, शब्बीर शाह, दारे शाह, मोती शाह और रौराम संख्या में सात व्यक्ति थे जो बलपूर्वक कब्जा लेने गए थे । जैसाकि प्रदर्श पी-65 से दिखाई पड़ता है, अभियुक्त संख्या में लगभग सात थे अर्थात् रसूल शाह, अहमद शाह, अमर शाह, जाकिर, सुबहान शेरू और गुरुमुख सिंह जो वहां मौजूद थे । ऐसा प्रतीत होता है कि परस्पर प्रकोपन और अपवृद्धि हुई थी, चूंकि शिकायतकर्ता पक्ष भूमि का कब्जा लेने गया था, इसलिए यह भी प्रतीत होता है कि पक्षकारों के बीच झगड़ा हुआ था । जानबूझकर कोई भी पूर्ववर्ती कार्य या पूर्व-चिन्तन नहीं किया गया है और यह घटना अचानक झगड़ा होने से घटित हुई है । जैसाकि पहले ही स्पष्ट किया गया है, शिकायतकर्ता पक्ष खेत पर गया था और शब्बीर शाह बन्दूक से लैस था । अचानक झगड़ा होने पर लोग गुत्थम-गुत्था हो गए । हाथापाई के दौरान अपीलार्थियों ने मृतक शब्बीर शाह को क्षतियां पहुंचाईं । अभियुक्तों ने

शब्बीर शाह से बंदूक छीनने की कोशिश की । कोई भी पूर्व-चिन्तन नहीं किया गया था और अचानक झगड़ा होने से घटना घटित हुई । हाथापाई के दौरान अन्य अभियुक्तों ने रखू शाह और अभि. सा. 8 को क्षतियां पहुंचाईं । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, हमारे मतानुसार, वर्तमान मामला ऐसा मामला नहीं कहा जा सकता है जो दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय हो किन्तु यह मामला दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 4 के अधीन आ सकता है । चूंकि अपीलार्थियों ने मृत्यु कारित करने के आशय से शब्बीर शाह की गर्दन और सिर पर क्षतियां पहुंचाईं हैं इसलिए अभियुक्त-अपीलार्थियों का कृत्य दंड संहिता की धारा 304 के भाग-I के अधीन आता है । (पैरा 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18, 20 और 21)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2004] (2004) 11 एस. सी. सी. 395 :
श्रीधर भुयन बनाम **उड़ीसा राज्य** । 19

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2008 की दांडिक अपील सं. 1889. (इसके साथ 2008 की दांडिक अपील सं. 1904, 1938 और 2009 की दांडिक अपील सं. 17 की भी सुनवाई की गई ।)

2005 की दांडिक अपील सं. 704 में राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर की खंड न्यायपीठ के तारीख़ 20 अगस्त, 2007 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

पक्षकारों की ओर से सर्वश्री डूंगर सिंह, वी. जे. फ्रांसिस, हरी कुमार वी., जेनिस वी. फ्रांसिस, राम नरेश यादव और मिलिंद कुमार

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. बानुमति ने दिया ।

न्या. बानुमति – ये अपीलें 2005 की दांडिक अपील सं. 704 में पारित किए गए तारीख़ 20 अगस्त, 2007 के उस निर्णय के विरुद्ध की गई हैं जिसमें राजस्थान उच्च न्यायालय की जोधपुर न्यायपीठ ने भारतीय

दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 302 के अधीन अपीलार्थियों की दोषसिद्धि और 1,000/- रुपए के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की पुष्टि की गई है । उच्च न्यायालय ने अन्य 18 अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 302 के अधीन आरोपों से मुक्त कर दिया और उन्हें दंड संहिता की धारा 148 के अधीन दोषसिद्ध करते हुए पहले से भोगे गए कारावास की अवधि से दंडादिष्ट किया ।

2. अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि तारीख 29 अप्रैल, 1996 को लगभग 3.30 बजे अपराह्न में जब शिकायतकर्ता रखू शाह और अपनी बहिन रखिया (अभि. सा. 8), भतीजे हसन अली और शब्बीर के साथ अपने जीजा अब्दुल के खेत में मौजूद था, तब अपीलार्थी अन्य 19 अभियुक्तों के साथ विधिविरुद्ध जमाव के रूप में खेत पर आए । अपीलार्थी अहमद शाह, गुरुमुख सिंह और रसूल शाह भाले और लाठियों से लैस थे । रसूल शाह ने शिकायतकर्ता रखू शाह को क्षति पहुंचाई । अभियुक्तों ने शिकायतकर्ता की बहिन रखिया (अभि. सा. 8) पर हमला किया । अहमद शाह और गुरुमुख सिंह ने शब्बीर शाह पर हमला किया । गुरुमुख सिंह ने शब्बीर शाह की गर्दन पर भाले से क्षति कारित की जिसके परिणामस्वरूप उसकी गर्दन कट गई और वह रक्त से लथपथ हो गया और अपीलार्थी अहमद शाह ने शब्बीर शाह के सिर पर भाले से क्षति कारित की और शब्बीर शाह की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई ।

3. तारीख 29 अप्रैल, 1996 को रखू शाह को अस्पताल में भर्ती कराया गया । चिकित्सक की यह राय प्राप्त करने के पश्चात् कि रखू शाह कथन देने की स्थिति में है, अन्वेषक अधिकारी मंगू सिंह (अभि. सा. 21) ने रखू शाह का कथन अभिलिखित किया । उक्त कथन के आधार पर, दंड संहिता की धारा 302, 307, 323, 147, 148 और 149 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 68/1996 रजिस्ट्रीकृत की गई । अन्वेषक अधिकारी मंगू सिंह (अभि. सा. 21) ने मामले का अन्वेषक आरंभ किया और स्थलनक्शा तैयार किया तथा घटनास्थल से वस्तुएं बरामद कीं और साथ ही साक्षियों के कथन अभिलिखित किए ।

4. डा. पी. एस. माथुर (अभि. सा. 13) ने शब्बीर शाह के शव का शवपरीक्षण किया और शवपरीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श पी-46 तैयार की और यह

राय दी कि मृत्यु का कारण मृतक को पहुंची अनेक क्षतियां हैं । रखिया (अभि. सा. 8) को पहुंची क्षतियों के कारण उसे उपचार के लिए अस्पताल में भर्ती कराया गया । डा. पी. एस. माथुर (अभि. सा. 13) ने रखिया को पहुंची क्षतियों का मुआयना किया और क्षति रिपोर्ट प्रदर्श पी-44 जारी की । रखू शाह को अस्पताल में भर्ती कराया गया और उसका आपातकालीन वार्ड में उपचार किया गया । तारीख 4 मई, 1996 को रात्रि में 12.10 बजे क्षतियों के कारण रखू शाह की मृत्यु हो गई । डा. राज कुमार डरगर (अभि. सा. 9) ने रखू शाह के शव का शवपरीक्षण किया और शवपरीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श पी-28 है । इस साक्षी ने यह राय दी है कि मृत्यु का कारण अनेक क्षतियों से होने वाला वसा रक्तस्राव रोधन है ।

5. अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने चार प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों अर्थात् राउ राम (अभि. सा. 3), दारे शाह (अभि. सा. 4), हसन शाह (अभि. सा. 7) और रखिया (अभि. सा. 8) तथा कुछ अन्य साक्षियों की परीक्षा कराई है और साथ ही अनेक दस्तावेजों और तात्विक वस्तुओं को प्रदर्शित किया है । अभियुक्तों से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अपराध में फंसाने वाले साक्ष्य और परिस्थितियों के संबंध में प्रश्न किए गए हैं और उन्होंने उन सभी प्रश्नों का खंडन किया है । कुछ अभियुक्तों ने यह कथन किया है कि यह घटना ईद के त्यौहार वाले दिन घटित हुई थी और वे ईद मना रहे थे, इसलिए वे घटनास्थल पर मौजूद नहीं थे ।

6. अपीलार्थी अहमद शाह का विशिष्ट मामला यह है कि वर्ष 1987 में उसने 75,000/- रुपए में अब्दुल शाह से एक भू-खंड क्रय किया था और वह भू-खंड उसके (अहमद शाह) कब्जे में था जो उसने कृषक रूपा राम बाजीगर को दे रखा था । अपीलार्थी अहमद शाह ने यह भी अभिवाक् किया है कि शब्बीर शाह, रखू शाह और रखिया तथा शिकायतकर्ता पक्ष उसके खेत पर बलपूर्वक कब्जा करने आए और शब्बीर शाह ने गोली चलाई और इसके पश्चात् शब्बीर शाह भाग गया । इस प्रकार अभियुक्तों ने यह अभिवाक् किया है कि मृतकों ने ही हमला किया था । अभियुक्तों ने अपनी प्रतिरक्षा में 35 दस्तावेज प्रदर्शित किए हैं ।

7. अभियोजन पक्षकथन का मूल्यांकन करने पर, विचारण न्यायालय ने सभी अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 148, 307/149 और

302/149 के अधीन दोषसिद्ध किया और उन्हें 1,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त कारावास भोगने के साथ क्रमशः 3 वर्ष का कठोर कारावास, दस वर्ष का कठोर कारावास और आजीवन कारावास भोगने का दंडादेश दिया और सभी दंडादेशों के साथ-साथ चलाए जाने का आदेश किया । अभियुक्तों ने इस आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलार्थी गुरुमुख सिंह और अहमद शाह, शब्बीर शाह की मृत्यु कारित करने के लिए जिम्मेदार हैं और तद्नुसार उन्हें दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध किया । अभियुक्त सुबहान शाह और रसूल शाह को दंड संहिता की धारा 307/149 के अधीन दोषसिद्ध किया और उनके दंड को कम करके पहले से भोगे गए दंड जितना कर दिया । ऊपर नामित अभियुक्तों के सिवाय, अन्य सभी अभियुक्तों को दंड संहिता की धारा 302/149 और 307/149 के अधीन आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया तथा उन्हें दंड संहिता की धारा 148 के अधीन दोषसिद्ध किया गया सारभूत दंडादेश को कम करके पहले से भोगे गए दंडादेश की अवधि जितना कर दिया । इस आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थियों ने (हमारे समक्ष) दांडिक अपील सं. 1889/2008 फाइल की । राज्य ने भी अन्य अभियुक्तों की दोषमुक्ति को चुनौती देते हुए अपीलें फाइल कीं हैं ।

8. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने इस बात पर बल दिया है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में केवल सात अभियुक्तों के नाम दिए गए हैं और इसके बाद ही अन्य व्यक्तियों के नाम जोड़े गए हैं और अभियुक्त व्यक्तियों को अत्यधिक संख्या में आलिप्त किया गया है । यह निवेदन किया गया है कि अन्वेषक अधिकारी और अन्य साक्षियों के कथनों से यह स्पष्ट है कि विवादित भूमि का कब्जा अभियुक्तों के ही पास था और इस तथ्य से अभियोजन पक्ष का सम्पूर्ण पक्षकथन बदल जाता है । यह दलील दी गई है कि वर्तमान मामले में अंधाधुंध लड़ाई हुई है और चूंकि अभियुक्तों की वैयक्तिक जिम्मेदारी सुनिश्चित नहीं की जा सकी है इसलिए अपीलार्थियों को दंड संहिता की धारा 302/34 और धारा 307/34 के अधीन दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता था ।

9. प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों ने मिलकर शब्बीर शाह और रखू शाह की

हत्या करने तथा रखिया को घातक क्षतियां कारित करने से संबंधित अपने सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में विधिविरुद्ध जमाव गठित किया था और प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों (अभि. सा. 3, 4, 7 और 8) से स्पष्ट रूप से अभियुक्तों द्वारा किया गया स्पष्ट कृत्य सिद्ध होता है । यह भी दलील दी गई है कि विवादित भूमि का कब्जा अब्दुल शाह के पास था और वही उसका स्वामी था और अभियुक्तों ने हमला किया था और अभियुक्तों को उनकी अपनी संपत्ति की संरक्षा करने के लिए प्रतिरक्षा का कोई भी अधिकार नहीं था । यह दलील दी गई है कि चूंकि अभियोजन पक्ष द्वारा अभियुक्तों के वैयक्तिक कृत्य को स्पष्ट रूप से साबित किया गया है इसलिए उच्च न्यायालय को अन्य अभियुक्तों को दोषमुक्त नहीं करना चाहिए था ।

10. हमने पक्षकारों की परस्पर विरोधी दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य तथा आक्षेपित निर्णय का परिशीलन किया है ।

11. पक्षकारों के बीच विवाद 14 बीघा भूमि से संबंधित है । अब्दुल शाह द्वारा उक्त भूमि अपीलार्थी अहमद शाह को 75,000/- रुपए के प्रतिकर पर विक्रय की गई थी और यह बताया गया है कि इस भूमि का कब्जा अहमद शाह को दिया गया । प्रदर्श डी-8 तारीख 9 अप्रैल, 1987 का विक्रय-विलेख है जो अब्दुल शाह द्वारा अहमद शाह के पक्ष में निष्पादित किया गया है । भूमि से संबंधित पक्षकारों के बीच मुकदमेबाजी चल रही थी । अभियोजन का यह पक्षकथन है कि अभियुक्त खेत पर गए थे और उन्होंने अब्दुल शाह और शब्बीर शाह से कब्जा छीनने का प्रयास किया और एतद्द्वारा शब्बीर शाह और रखू शाह की अभिकथित रूप से मृत्यु कारित की और रखिया (अभि. सा. 8) को क्षतियां पहुंचाईं । अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य और सामग्रियों का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने पर यह पता चलता है कि अभियुक्त पक्ष के पास भूमि का वास्तविक कब्जा था और शिकायतकर्ता पक्ष बलपूर्वक कब्जा लेने के लिए खेत पर गया था ।

12. रखिया (अभि. सा. 8) ने यह स्वीकार किया है कि इस घटना के लगभग 7 या 8 दिन पूर्व, उसके पति अब्दुल शाह उसके बड़े पुत्र हसन शाह ने बलपूर्वक खेत पर कब्जा किया था तथा अहमद शाह और रसूल शाह ने उन्हें ऐसे करने से रोका । अभि. सा. 8 ने यह कथन किया है कि

रफीक शाह ने उन्हें यह बताया था कि वह उन्हें खेत का कब्जा दिलाने की व्यवस्था करेगा और इसीलिए उस दिन शिकायतकर्ता पक्ष उसके साथ खेत पर गया था । रखिया ने यह भी स्वीकार किया है कि खेत में नरमा की फसल थी । अभि. सा. 8 ने यह भी कथन किया है कि घटना के दिन अर्थात् 29 अप्रैल, 1996 को रखिया उसका भाई रखू शाह, हसन शाह शब्बीर शाह और कुछ अन्य व्यक्ति भूमि का कब्जा लेने गए और शब्बीर शाह बन्दूक से लैस था । अभि. सा. 8 आहत साक्षी है, इसलिए उसके साक्ष्य की गुणवत्ता अधिक है और उसे अधिक महत्व दिया जाना चाहिए । घटना की उत्पत्ति के संबंध में मामले का समुचित रूप से मूल्यांकन करने के लिए, हम प्रतिपरीक्षा के दौरान अभि. सा. 8 द्वारा दिए गए साक्ष्य पर विचार करेंगे जो निम्न प्रकार है :–

> "‌. .... यह भूमि अप्रैल, 1987 में उसके पति द्वारा अहमद शाह को 75,000/- रुपए के प्रतिकर के लिए बेची गई थी और दस्तावेज निष्पादित किए गए थे । रखिया ने स्वयं यह कथन किया है कि यह तथ्य मामा और भान्जे को मालूम था । यह सत्य है कि घटना के 7-8 दिन पहले उसके पति और उसके बड़े पुत्र ने बलपूर्वक भूमि का कब्जा लिया था और अहमद शाह तथा रसूल शाह ने उसके पति, उसके पुत्र और उसके सामान को एक ट्रैक्टर में रखकर उसे जलासर रेलवे लाइन के निकट छोड़ दिया था । यह भी सत्य है कि इसके पश्चात् ईद के त्यौहार के दिन, रखिया, उसका भाई रखू शाह और उसका पुत्र हसन शाह, शब्बीर शाह, दारे शाह, मोती शाह और रौराम भूमि का कब्जा लेने गए थे और खेत में ही बैठ गए थे । यह भी सत्य है कि ईद वाले दिन इस भय से कि अहमद शाह पुनः खेत से उन्हें न हटा दे, इसलिए शब्बीर शाह अपने भाई की बन्दूक लेकर गया था और रौराम पटाखा चलाने वाली बन्दूक लेकर गया था......।"

अभि. सा. 8 का यह साक्ष्य अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 21) के साक्ष्य से पूर्णतया प्रबलित होता है कि अभियुक्तों के पास वास्तव में भूमि का कब्जा था और उसके पति अब्दुल शाह, शब्बीर शाह और रखू शाह ने इस घटना के कुछ दिन पहले इस भूमि का कब्जा लेने का असफल प्रयास किया था ।

13. अभि. सा. 21 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में स्पष्ट रूप से यह स्वीकार

किया है कि घटना के दिन, अहमद शाह और उसके साथियों के पास उस भूमि का कब्जा था और उस भूमि पर अहमद शाह, रूपा राम बाजीगर से कृषि करवा रहा था और घटना के समय उस खेत में अहमद शाह के लिए रूपा राम बाजीगर द्वारा तैयार की गई नरमा की फसल खड़ी हुई थी । अन्वेषक अधिकारी ने यह भी स्वीकार किया है कि अन्वेषण के दौरान यह बात सामने आई कि तारीख 28 अप्रैल, 1996 को शिकायतकर्ता पक्ष ने उस भूमि पर कब्जा करने का असफल प्रयास किया था । अन्वेषक अधिकारी ने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि घटना के दिन अभियुक्त पक्ष के पास विवादित भूमि का कब्जा था ।

14. अभि. सा. 21 के साक्ष्य और प्रदर्श डी-35 से यह पता चलता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 67/1996 के अनुसार एक प्रतिमामला संस्थित किया गया था । उक्त मामले का निर्णय प्रदर्श डी-35 है जिससे भी यह उपदर्शित होता है कि अभियुक्त के पास विवादित भूमि का कब्जा था । प्रदर्श डी-8 तारीख 9 अप्रैल, 1987 का विक्रय-विलेख है जो अब्दुल शाह द्वारा अहमद शाह के पक्ष में निष्पादित किया गया था और इस विलेख से भी अभियुक्त व्यक्तियों का भूमि पर कब्जा होना उपदर्शित होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्तों ने यह साबित करने के लिए प्रदर्श डी-8, 9, 10, 28 और 35 प्रस्तुत किए हैं कि अभियुक्तों के पास विवादित भूमि का कब्जा था और साक्ष्य से यही उद्भूत होता है कि भूमि का कब्जा अभियुक्तों के पास था और शिकायतकर्ता पक्ष बन्दूक से लैस होकर उस संपत्ति का बलपूर्वक कब्जा लेने के लिए खेत पर गया था और इस तथ्य से, अभियोजन पक्ष द्वारा दर्शाई गई घटना की उत्पत्ति पर घोर संदेह होता है ।

15. हसन शाह (अभि. सा. 7) ने यह कथन किया है कि जब रखिया (अभि. सा. 8) झोपड़ी में चाय बना रही थी तब अभियुक्त पक्ष एक साथ वहां पहुंचे और अपीलार्थियों ने शब्बीर शाह को उस समय क्षतियां पहुंचाईं जब वह निकट ही चारपाई पर सो रहा था और इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि सुबहान शाह ने रखू शाह की दाईं टांग पर कुल्हाड़ी से क्षति कारित की । अभि. सा. 8 ने यह भी कथन किया है कि वह झोपड़ी में ईंटों से बने चूल्हे पर चाय बना रही थी और चाय तोपिया में बनाई जा रही थी और घटना के पश्चात् तोपिया और चूल्हा झोपड़ी में ही छोड़ दिए गए । प्रदर्श पी-14 स्थलनक्शा है जिसमें झोपड़ी और घटना का दृश्य चिन्हांकित

किया गया है । जब अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 21) को स्थलनक्शा प्रदर्श पी-14 दिखाया गया, तब उसने यह कथन किया कि उसने प्रदर्श पी-14 में किसी भी चूल्हे का उल्लेख नहीं किया है । अभि. सा. 21 ने यह भी कथन किया है कि उसने घटनास्थल पर कोई भी तोपिया या चाय बनाने का बर्तन नहीं देखा था । दूसरी ओर अभि. सा. 21 ने यह कथन किया है कि झोपड़ी में एयरगन से टूटा हुआ लकड़ी का एक टुकड़ा देखा था । जैसा कि अभि. सा. 7 और 8 ने कथन किया है, यदि वास्तव में घटना के समय झोपड़ी में चाय बनाई जा रही थी तब मैली, तोपिया, चूल्हा और बर्तन झोपड़ी में ही बिखरे हुए पाए जाते कि अन्वेषक अधिकारी को घटनास्थल पर न तो चूल्हा मिला और न ही बर्तन, इस तथ्य से अभियोजन पक्ष द्वारा दी गई यह दलील असंभावी हो जाती है कि अभियुक्तों ने हमला किया था ।

16. अभि. सा. 3, अभि. सा. 4 और अभि. सा. 7 ने अपीलार्थियों के स्पष्ट कृत्य के संबंध में बताया है कि अपीलार्थी गुरुमुख सिंह ने शब्बीर शाह की गर्दन पर गंडासी से वार किए और अहमद शाह ने उसके सिर पर भाले से क्षति पहुंचाई । अभि. सा. 8 आहत साक्षी है, इस साक्षी ने अपीलार्थियों द्वारा शब्बीर शाह को पहुंचाई गई क्षतियों के बारे में साक्ष्य दिया है ।

17. अपीलार्थियों के स्पष्ट कृत्य के संबंध में निचले न्यायालयों द्वारा व्यक्त किए गए समवर्ती मतों से हमारा समाधान हो गया है और प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों, विशेषकर अभि. सा. 8 जिसने दो अपीलार्थियों द्वारा अपराध में भाग लेने और घातक क्षतियां पहुंचाने के संबंध में अपना संगत अभिसाक्ष्य दिया है, के कथनों से अपीलार्थियों का स्पष्ट कृत्य साबित हो गया है । किंतु जहां दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन उनकी दोषसिद्धि का संबंध है, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर हम उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत से सहमत नहीं हैं ।

18. दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 4 के अनुसार मानव वध हत्या नहीं है, यदि मानव वध अचानक झगड़ा जनित आवेश की तीव्रता में हुई अचानक लड़ाई में पूर्व-चिन्तन बिना और अपराधी द्वारा अनुचित लाभ उठाए बिना या क्रूरतापूर्ण या अप्रायिक रीति से कार्य किए बिना किया गया हो । दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 4 का अवलंब लेने के लिए चार

अध्यपेक्षाओं का समाधान होना चाहिए, अर्थात् – (i) अचानक झगड़ा हुआ हो ; (ii) कोई भी पूर्व-चिन्तन न किया गया हो ; (iii) कृत्य आवेश की तीव्रता में किया गया हो ; और (iv) हमलावर ने कोई भी असम्यक् फायदा न लिया हो और न ही क्रूरतापूर्ण रीति में कार्य किया हो ।

19. इस न्यायालय ने **श्रीधर भुयन** बनाम **उड़ीसा राज्य**[1] वाले मामले में निम्न अभिनिर्धारित किया है :–

> "7. दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 4 को लागू करने के लिए यह सिद्ध किया जाना चाहिए कि कार्य पूर्व-चिन्तन के बिना अचानक झगड़ा होने पर आवेश की तीव्रता में किया गया है और अपराधी ने असम्यक् फायदा भी नहीं लिया है और उसने क्रूरतापूर्ण या असामान्य रीति में कार्य नहीं किया है ।
>
> 8. दंड संहिता की धारा 300 के चौथे अपवाद के अन्तर्गत अचानक झगड़े के दौरान किया गया कार्य आता है । यह अपवाद अभियोजन के ऐसे मामलों को लागू होता है जो प्रथम, अपवाद के अन्तर्गत नहीं आते हैं, इसलिए इसके पश्चात् चौथे अपवाद के अंतर्गत ऐसे कृत्यों का आना और अधिक उचित हो जाता है । अपवाद ऐसे ही सिद्धांत पर आधारित है क्योंकि दोनों में पूर्व-चिन्तन का अभाव है । किन्तु अपवाद 1 में आत्म-नियंत्रण का पूर्ण वंचन है जबकि अपवाद 4 में आवेश की तीव्रता है जो मनुष्यों की नैतिक तर्कशक्ति को प्रभावित करती है और ऐसे कार्य करने के लिए प्रेरित करती है जो वे अन्यथा नहीं करते । अपवाद 4 में प्रकोपन का ऐसा ही उल्लेख किया गया है जैसा अपवाद 1 में किया गया है ; किन्तु कारित की गई क्षति उस प्रकोपन का प्रत्यक्ष परिणाम नहीं है । वास्तव में अपवाद 4 ऐसे मामलों के बारे में है जिनमें ऐसी बात होते हुए भी कि झगड़े की उत्पत्ति में वार किया गया हो, या प्रकोपन किया गया हो या किसी भी प्रकार से झगड़ा जनित हुआ हो फिर भी दोनों पक्षकारों का आचरण उन्हें समान रूप से दोषी बनाता है । 'अचानक झगड़ा' परस्पर प्रकोपन करने और एक दूसरे पर वार करने से होता है । इसलिए स्पष्ट रूप से एकपक्षीय प्रकोपन से मानव वध नहीं किया गया है और न ही ऐसे मामलों में पूर्ण दोष किसी एक पक्ष पर लगाया जा सकता है । क्योंकि यदि ऐसा

---

[1] (2004) 11 एस. सी. सी. 395.

होता, तब समुचित रूप से लागू होने वाला अपवाद, अपवाद 1 होता । (इस मामले में) झगड़ा करने का पहले से कोई भी सोच-विचार या पूर्व-चिन्तन नहीं किया गया है । अचानक झगड़ा हुआ, जिसके लिए दोनों ही पक्षकारों पर कम या अधिक आरोप लगाया जा सकता है । यह भी हो सकता है कि किसी एक पक्षकार ने झगड़ा आरंभ किया हो और जब तक दूसरे ने उसे गुरुतर न बनाया हो तब तक यह ऐसा गंभीर रूप नहीं ले सकता था जैसाकि घटित हुआ । इसके पश्चात् परस्पर प्रकोपन और अपवृद्धि हुई है और किस हमलावर का कितना दोष है, यह नियत करना कठिन है । अपवाद 4 का अवलंब तब लिया जा सकता है जब मृत्यु – (क) पूर्व-चिन्तन के बिना ; (ख) अचानक लड़ाई में ; (ग) अपराधी द्वारा असम्यक् लाभ लिए बिना या क्रूर या असामान्य रीति में कृत्य किए जाने पर कारित की गई हो ; और (घ) झगड़ा उसी व्यक्ति के साथ हुआ हो जिसकी मृत्यु हुई है । अपवाद 4 के अधीन मामला बनाने के लिए सभी चारों संघटकों का मौजूद होना आवश्यक है । यह उल्लेखनीय है कि दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 4 में प्रयोग होने वाले 'झगड़ा' शब्द को दंड संहिता में परिभाषित नहीं किया गया है । झगड़ा करने के लिए दो व्यक्तियों का होना आवश्यक है । आवेश की तीव्रता के अंतर्गत यह अपेक्षा की गई है कि आवेग के सामान्य हो जाने की कोई गुंजाइश न हो और इस मामले में घटना के आरंभ में ही हुई कहासुनी के कारण स्वयं पक्षकारों ने अचानक कृत्य किया है । 'झगड़ा' दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच हथियारों के साथ या उनके बिना मुकाबला होता है । इस संबंध में कोई भी सामान्य नियम प्रतिपादित करना संभव नहीं है कि अचानक झगड़ा किसे समझा जाए । यह तथ्य का प्रश्न है और झगड़ा अचानक हुआ है या नहीं यह आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले के साबित किए गए तथ्यों पर आधारित होना चाहिए । अपवाद 4 के लागू किए जाने के लिए यह दर्शाना पर्याप्त नहीं है कि झगड़ा अचानक हुआ था और कोई भी पूर्व-चिन्तन नहीं किया गया था । यह भी साबित किया जाना चाहिए कि अपराधी ने असम्यक् फायदा नहीं उठाया है और न ही क्रूर या असामान्य रीति में कार्य किया है । उपबंध में प्रयोग की गई 'असम्यक फायदा' अभिव्यक्ति का अर्थ 'अनुचित फायदा' है । सतीश नारायण सावंत **बनाम** गोआ राज्य,

[(2009) 17 एस. सी. सी. 724] वाले मामले में ऐसा ही सिद्धांत दोहराया गया है ।

20. जैसाकि इसके पूर्व विचार किया गया है, अब्दुल शाह ने वर्ष 1987 में अहमद शाह को संपत्ति विक्रय की थी । अहमद शाह की ओर से रूपा राम बाजीगर खेती कर रहा था । साक्ष्य में यह प्रस्तुत किया गया है कि घटना के दिन खेत में नरमा की फसल खड़ी हुई थी जो रुपा राम बाजीगर द्वारा तैयार की गई थी । जैसाकि अभि. सा. 8 के साक्ष्य से दिखाई देता है, शिकायतकर्ता पक्ष अर्थात् रखिया, रखू शाह, हसन शाह, शब्बीर शाह, दारे शाह, मोती शाह और रैराम संख्या में सात व्यक्ति थे जो बलपूर्वक कब्जा लेने गए थे । जैसाकि प्रदर्श पी-65 से दिखाई पड़ता है, अभियुक्त संख्या में लगभग सात थे अर्थात् रसूल शाह, अहमद शाह, अमर शाह, जाकिर, सुबहान शेरू और गुरुमुख सिंह जो वहां मौजूद थे । ऐसा प्रतीत होता है कि परस्पर प्रकोपन और अपवृद्धि हुई थी, चूंकि शिकायतकर्ता पक्ष भूमि का कब्जा लेने गया था, इसलिए यह भी प्रतीत होता है कि पक्षकारों के बीच झगड़ा हुआ था । जानबूझकर कोई भी पूर्ववर्ती कार्य या पूर्व-चिन्तन नहीं किया गया है और यह घटना अचानक झगड़ा होने से घटित हुई है ।

21. जैसाकि पहले ही स्पष्ट किया गया है, शिकायतकर्ता पक्ष खेत पर गया था और शब्बीर शाह बन्दूक से लैस था । अचानक झगड़ा होने पर लोग गुत्थम-गुत्था हो गए । हाथापाई के दौरान अपीलार्थियों ने मृतक शब्बीर शाह को क्षतियां पहुंचाईं । अभियुक्तों ने शब्बीर शाह से बंदूक छीनने की कोशिश की । कोई भी पूर्व-चिन्तन नहीं किया गया था और अचानक झगड़ा होने से घटना घटित हुई । हाथापाई के दौरान अन्य अभियुक्तों ने रखू शाह और अभि. सा. 8 को क्षतियां पहुंचाईं । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, हमारे मतानुसार, वर्तमान मामला ऐसा मामला नहीं कहा जा सकता है जो दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय हो किन्तु यह मामला दंड संहिता की धारा 300 के अपवाद 4 के अधीन आ सकता है । चूंकि अपीलार्थियों ने मृत्यु कारित करने के आशय से शब्बीर शाह की गर्दन और सिर पर क्षतियां पहुंचाईं हैं इसलिए अभियुक्त-अपीलार्थियों का कृत्य दंड संहिता की धारा 304 के भाग-I के अधीन आता है ।

22. जहां तक दोषमुक्ति के विरुद्ध राज्य द्वारा फाइल की गई अपील का संबंध है, उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष अभिलखित किया है कि अभियुक्त सुबहान शाह और रसूल शाह ने रखू शाह की बाईं टांग और बाएं कंधे पर क्षति पहुंचाई । उपचार किए जाने के बावजूद, अनेक क्षतियों के कारण रखू शाह के शरीर में रक्त-अवरोध हो गया और उसकी अस्थियां भी क्षतिग्रस्त हो गईं जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई । साक्ष्य और क्षतियों की प्रकृति पर विचार करने के पश्चात् उच्च न्यायालय ने सुबहान शाह की दोषसिद्धि को उपान्तरित कर दिया और सारभूत दंडादेश को कम करके पहले से भोगे गए कारावास की अवधि जितना कर दिया ।

23. उच्च न्यायालय ने साक्ष्य का विश्लेषण किया है और यह महसूस किया है कि साक्ष्य सार्वत्रिक और व्यापक है और शेष अभियुक्तों द्वारा कोई भी, विशिष्ट कार्य नहीं किया गया है । जैसाकि पहले ही बताया गया है, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में केवल सात व्यक्तियों के नाम दिए गए हैं । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि उच्च न्यायालय ने अन्य अभियुक्तों को दोषमुक्त करके स्वयं कोई गलती की है । मामले के तथ्य और परिस्थितियों के आधार पर, हमें उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई भी सारभूत आधार दिखाई नहीं देता है ।

24. दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपीलार्थी अहमद शाह और गुरुमुख सिंह की दोषसिद्धि धारा 304, भाग-I में उपान्तरित की जाती है और आजीवन कारावास का सारभूत दंडादेश कम करके पहले से भोगे गए कारावास की अवधि जितना किया जाता है और अभियुक्त-अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई अपील भागतः मंजूर की जाती है । यदि अभियुक्त अन्य किसी मामले में वांछित नहीं है तो उन्हें तत्काल छोड़ा जाए । राज्य द्वारा फाइल की गई अपीलें खारिज की जाती हैं ।

अपीलों का निपटारा किया गया ।

अस./अनू.

[2015] 1 उम. नि. प. 258

सहायक आयुक्त, एर्नाकुलम

बनाम

हिन्दुस्तान अर्बन इंफ्रास्ट्रक्चर लि. और अन्य

13 जनवरी, 2015

मुख्य न्यायमूर्ति एच. एल. दत्तू और न्यायमूर्ति एस. ए. बोबडे

केरल साधारण विक्रय कर अधिनियम, 1963 (केरल जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1963) – धारा 2(viii) [सपठित कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 448ए, 456ए, 457 और 643] – न्यायालय द्वारा नियुक्त शासकीय समापक द्वारा समापनाधीन कंपनी की आस्तियों का नीलाम विक्रय – विक्रय कर का संदाय करने का दायित्व – क्या शासकीय समापक अधिनियम, 1963 के अधीन एक व्यौहारी है – अधिनियम में दी गई व्यौहारी की विस्तृत परिभाषा और विधान-मंडल के आशय के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कोई व्यक्ति या सत्ता जो माल के विक्रय संबंधी कोई कार्यकलाप करता है उसे व्यौहारी के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है, अतः समापनाधीन कंपनी जिसकी आस्तियां नीलामी द्वारा विक्रय की जाती हैं वह व्यौहारी होगी ।

केरल साधारण विक्रय कर अधिनियम, 1963 (केरल जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1963) – धारा 5 [सपठित केरल साधारण विक्रय कर नियम, 1963 का नियम 54] – न्यायालय द्वारा नियुक्त शासकीय समापक द्वारा समापनाधीन कंपनी की आस्तियों का नीलाम विक्रय – विक्रय कर का संदाय करने का दायित्व – चूंकि शासकीय समापक समापनाधीन कंपनी के निदेशक के स्थान पर न्यायालय के निदेशानुसार अपने कानूनी कृत्यों का निर्वहन करता है और वह नियम 54 के अनुसार समापनाधीन कंपनी की आस्तियों के रिसीवर या प्रबंधक के रूप में होता है, इसलिए वह किसी अन्य व्यौहारी की भांति विक्रय के प्रथम स्थल पर विक्रय कर का संदाय करने के लिए दायी है ।

मैसर्स प्रीमियर केबल कंपनी लि. कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन रजिस्ट्रीकृत थी और पीवीसी पावर केबल, एल्यूमिनियम कंडक्टर्स, इनेमल्ड वायर्स इत्यादि के काम में लगी थी । औद्योगिक और वित्त पुनर्गठन बोर्ड द्वारा की गई सिफारिश के अनुसरण में 1996 की कंपनी

याचिका सं. 2 में उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 18 जून, 1998 को पारित किए गए आदेश द्वारा कंपनी का परिसमापन किए जाने का आदेश किया गया । उच्च न्यायालय से संलग्न शासकीय समापक (प्रत्यर्थी सं. 2) को कंपनी की आस्तियों और दायित्वों का भारसाधन लेने और इन पर अधिनियम, 1956 के उपबंधों तथा तद्धीन बनाए गए नियमों के अनुसार कार्यवाही करने के लिए नियुक्त किया गया । उपर्युक्त आदेश के अनुसरण में शासकीय समापक ने समापनाधीन कंपनी की आस्तियों का विक्रय करने के संबंध में निविदाएं आमंत्रित करते हुए एक सूचना जारी की । कंपनी की आस्तियों के विक्रय के निबंधनों और शर्तों में, अन्य बातों के साथ-साथ, अभिव्यक्त रूप से यह उपबंध किया गया था कि यह विक्रय उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि करने के अध्यधीन और इसके अतिरिक्त उन किन्हीं पश्चात्वर्ती निबंधनों और शर्तों के भी अध्यधीन होगा, जो उच्च न्यायालय द्वारा अधिरोपित की जाएं । नीलाम क्रेता (प्रत्यर्थी सं. 1) ने शासकीय समापक द्वारा निविदाएं आमंत्रित करने के लिए जारी की गई सूचना के उत्तर में प्रस्थापना पत्र द्वारा लाट सं. 1-2 को कुल 5,76,00,000/- रुपए में क्रय करने की प्रस्थापना की । प्रस्थापना पत्र में अभिव्यक्त रूप से यह कथन किया गया था कि उक्त रकम सभी कानूनी उद्ग्रहणों जैसे विक्रय कर, केन्द्रीय विक्रय कर, उत्पाद शुल्क इत्यादि, यदि कोई हों, और जो लागू हों, सहित होगी । इस प्रकार की गई प्रस्थापना को स्वीकार करने के पश्चात् शासकीय समापक ने इसे कंपनी के मामलों पर विचार करने वाले विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष उनकी पुष्टि के लिए प्रस्तुत किया । उक्त विक्रय की पुष्टि के पश्चात् नीलाम क्रेता के विक्रय की गईं आस्तियों को कई राज्यों की सीमा के बाहर परिवहन करने का इच्छुक होने के कारण शासकीय समापक को विक्रय बीजकों में सुसंगत विक्रय कर पंजीकरण संख्यांकों को सम्मिलित करने का अनुरोध किया । शासकीय समापक ने इस अनुरोध को स्वीकार करने से इनकार कर दिया । तत्पश्चात्, शासकीय समापक ने उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष एक शपथपत्र, अन्य बातों के साथ-साथ, यह कथन करते हुए फाइल किया कि उसने उसके द्वारा किए गए विक्रय की बाबत न तो किसी उपकर या विक्रय कर का संग्रहण किया है और न ही संदाय किया है । यह कथन किया गया कि शासकीय समापक की यह राय है कि उच्च न्यायालय द्वारा नीलाम क्रेता को निदेशित किया जाए कि वह उपकर, विक्रय कर आदि के निमित्त किन्हीं व्ययों या दायित्व, जब भी ये संदेय हों, की पूर्ति करे । शासकीय समापक द्वारा विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष

कंपनी याचिका में, अन्य बातों के साथ-साथ, मामले के कतिपय पहलुओं पर स्पष्टीकरण की ईप्सा करते हुए एक आवेदन भी फाइल किया गया, जिसमें यह बात भी सम्मिलित थी कि क्या नीलाम क्रेता की गई नीलामी के अनुसरण में विक्रय किए गए माल पर कर का संदाय करने का दायी होगा या नहीं और यह भी कि नीलाम क्रेता को निदेश दिया जाए कि वह उन सभी करों का संदाय करे जो विक्रय कर विभाग द्वारा उद्ग्रहणीय हों । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने आवेदन में किए गए निवेदनों पर विचार करने के पश्चात् एक आदेश पारित किया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रश्नगत विक्रय को केन्द्रीय सरकार द्वारा या रजिस्ट्रीकृत व्यौहारी द्वारा किए गए विक्रय के रूप में नहीं माना जा सकता है जो कर का संग्रहण करने का हकदार हो और यह भी मत व्यक्त किया कि नीलाम क्रेता को केरल साधारण विक्रय कर अधिनियम, 1963 (केरल जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1963) (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम, 1963" कहा गया है) के अधीन एक व्यौहारी नहीं माना जा सकता है और यह भी कि उक्त प्रश्नगत विक्रय पर विक्रय कर वसूलनीय नहीं है । अपीलार्थी ने विद्वान् एकल न्यायाधीश के आदेश से व्यथित होकर एक अपील फाइल की जिसमें, अन्य बातों के साथ-साथ, यह अभिवाक् किया गया कि जब कभी भी शासकीय समापक द्वारा समापनाधीन कंपनी की आस्तियों का विक्रय किया जाता है तो वह विक्रय कर का संदाय करने के लिए आबद्धकर है । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया कि "शासकीय समापक" अधिनियम, 1963 के अधीन "व्यौहारी" की परिभाषा के अर्थांतर्गत नहीं आता है । तद्नुसार अपील खारिज कर दी गई और विद्वान् एकल न्यायाधीश के आदेश की पुष्टि की गई । पुनर्विलोकन याचिका में उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि शासकीय समापक को अधिनियम, 1963 के अधीन एक व्यौहारी नहीं माना जा सकता है और इसलिए उससे विक्रय कर वसूलनीय नहीं है । तथापि, न्यायालय का यह मत था कि नीलाम क्रेता अधिनियम, 1963 की धारा 5क के अधीन क्रय-कर का संदाय करने का दायी है । विक्रय कर विभाग ने उच्च न्यायालय के निर्णय (निर्णयों) से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल कीं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – केरल साधारण विक्रय कर अधिनियम, 1963 (केरल जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1963) की धारा 2(viii) में "व्यौहारी" अभिव्यक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी गई है कि कोई व्यक्ति जो, प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः, माल का क्रय, विक्रय, प्रदाय या वितरण, कार्य की

संविदा का निष्पादन, किसी माल का उपयोग करने के लिए अधिकार का अंतरण या किसी माल का किसी सेवा के रूप में या उसके भाग के रूप में प्रदाय करता है । उपर्युक्त कार्यकलाप प्रतिफल के संदाय के लिए नकदी, आस्थगित संदाय, कमीशन, पारिश्रमिक आदि के रूप में किए जाते हैं । इस प्रकार, इस खंड में उपबंधित "कारबार करता है" अभिव्यक्ति पर दिए गए बल को व्यापक अर्थ में समझा जाना चाहिए और केवल क्रय या विक्रय के कार्यकलाप तक ही निर्बंधित नहीं किया जाना चाहिए । "कारबार" अभिव्यक्ति की एक व्यापक और समावेशित परिभाषा दी गई है, जिसके द्वारा "किसी कारबार, व्यापार, वाणिज्य या विनिर्माण या उक्त प्रकृति के किसी कार्यकलाप को, चाहे यह लाभ कमाने के उद्देश्य से चलाया जाता है या नहीं", अभिव्यक्त रूप से सम्मिलित किया गया है । इसके अंतर्गत ऐसे व्यापार, वाणिज्य आदि से संबद्ध कोई संव्यवहार भी सम्मिलित है और इसमें किसी व्यापार, वाणिज्य से संबद्ध सभी प्रासंगिक या आनुषंगिक कार्यकलाप भी सम्मिलित हैं । इसलिए इस परिभाषा की आपवादिक तौर पर व्यापक परिधि को देखते हुए, प्रथमदृष्ट्या यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कोई व्यक्ति या सत्ता जो माल के विक्रय का कोई कार्यकलाप करता है, उसे अधिनियम, 1963 के अधीन एक "व्यौहारी" के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है । अधिनियम, 1963 के अधीन दी गई "व्यौहारी" शब्द की परिभाषा के सावधानीपूर्वक वाचन से यह स्पष्ट होता है कि विधान मंडल का आशय एक समावेशित मानदंड उपबंधित करना और उक्त वर्गीकरण की व्याप्ति को विस्तृत करना था । विधान मंडल ने इस शब्द की व्याप्ति को साधारण बोल-चाल की भाषा में समझे जाने वाले शब्द तक निर्बंधित नहीं किया । इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अधिनियम, 1963 के अधीन "व्यौहारी" की परिभाषा के अंतर्गत वे व्यक्ति भी आएंगे, यदि वे मशीनरी के विक्रय जैसा कोई कारबार या व्यापारिक कार्यकलाप करते हैं, जैसा कि वर्तमान मामले में है । इसलिए एक आवश्यक तर्क के रूप में, समापनाधीन कंपनी, जिसकी आस्तियों को नीलामी द्वारा बेचा जाता है, अधिनियम, 1963 के अधीन एक "व्यौहारी" होगी । (पैरा 32, 33, 35 और 43)

अधिनियम, 1963 की धारा 5 विक्रय कर के अधिरोपण के संबंध में प्रभारी उपबंध है । यह धारा किसी व्यौहारी द्वारा माल का विक्रय या क्रय करने पर कर के उद्ग्रहण को परिकल्पित करती है । अधिनियम, 1963 की धारा 5(1) ऐसे प्रत्येक व्यौहारी पर दायित्व अधिरोपित करती है जिसका एक वर्ष का कुल आवर्त दो लाख रुपए से अन्यून है । धारा 5(1)(i) में

अधिनियम, 1963 की प्रथम या द्वितीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट माल की दशा में ऐसी दर पर और केवल उन स्थलों पर कर दायित्व को प्रगणित किया गया है जो उक्त अनुसूची में दिए गए ऐसे माल के सामने विनिर्दिष्ट हैं । प्रथम अनुसूची के क्रम संख्यांक 84(i) पर, अन्य के साथ-साथ, मशीनरी के विक्रय पर संदेय कर की दर अनुध्यात की गई है । इस बाबत विक्रय कर के उद्ग्रहण का स्थल राज्य में किसी व्यौहारी द्वारा किए गए प्रथम विक्रय के स्थल पर है, जो अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अधीन कर के लिए दायी है । इस प्रकार अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अनुसरण में, प्रथम और द्वितीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट माल के मामले में एकल स्थल कर केवल उन दरों और स्थलों पर उद्गृहीत किया जा सकता है जो उक्त अनुसूचियों में ऐसे माल के सामने विनिर्दिष्ट हैं । प्रथम अनुसूची में यह विनिर्दिष्ट किया गया है कि प्रश्नगत माल के लिए कर के उद्ग्रहण का स्थल राज्य में किसी व्यौहारी द्वारा किए गए केवल प्रथम विक्रय का स्थल हो सकता है । प्रस्तुत मामले में, अधिनियम, 1963 के अधीन व्यौहारी विक्रय की गई मशीनरी के लिए विक्रय कर का संदाय करने का दायी अधिनियम, 1963 की प्रथम अनुसूची के साथ पठित धारा 5 के अनुसार प्रथम विक्रय के स्थल पर होगा । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि वर्तमान अपील में का प्रश्नगत संव्यवहार अधिनियम, 1963 की धारा 5(1) के अधीन कर के लिए दायी होगा । अधिनियम, 1963 की धारा 5क में ऐसी कतिपय स्थितियां परिकल्पित हैं जिनमें किसी ऐसे व्यौहारी पर क्रय कर अधिरोपित किया जा सकता है जो कोई माल या तो ऐसे किसी रजिस्ट्रीकृत व्यौहारी से या किसी अन्य व्यक्ति से क्रय करता है जिसका विक्रय या क्रय अधिनियम, 1963 के अधीन कर के लिए दायी है । तथापि, पूर्वोक्त उपबंध केवल उन परिस्थितियों में लागू होगा जब धारा 5 की उपधारा (1), (3), (4) और (5) के अधीन कोई कर संदेय नहीं है । तथापि, जैसा कि इसमें ऊपर अवेक्षा की गई है, ऐसा संव्यवहार अधिनियम, 1963 की धारा 5(1) के अधीन कर के लिए दायी है और इसलिए अधिनियम, 1963 की धारा 5क उक्त संव्यवहार को लागू नहीं होगी । (पैरा 44, 45 और 46)

अधिनियम, 1963 के अधीन शासकीय समापक की प्रास्थिति का अवधारण करने के पश्चात् अब इस न्यायालय के लिए शासकीय समापक पर कराधान के प्रयोजनों के लिए अधिरोपित दायित्व, यदि कोई है, की प्रकृति पर विचार करना उचित होगा । इस प्रयोजन हेतु, इस न्यायालय के लिए नियम, 1963 के नियम 54 पर विचार करना आवश्यक है जिसमें,

अन्य बातों के साथ-साथ, न्यायालय के आदेश द्वारा नियुक्त किए गए रिसीवर या प्रबंधक या अन्य व्यक्ति पर उस स्थिति में दायित्व अधिरोपित किया गया है जब किसी व्यौहारी के स्वामित्वाधीन का कोई कारबार उक्त रिसीवर, प्रबंधक या व्यक्ति, चाहे उसका पदनाम कुछ भी हो, के नियंत्रणाधीन है और जो वस्तुतः व्यौहारी की ओर से कारबार का प्रबंधन करता है । पूर्वोक्त नियम में अभिव्यक्त रूप से यह उपबंधित है कि ऐसे रिसीवर, प्रबंधक आदि पर कर उसी रीति में उद्‌गृहीत और वसूलनीय होगा जिस रीति में यह व्यौहारी पर उद्‌ग्रहणीय या उससे वसूलनीय होता । यह कर दायित्व व्यौहारी की ओर से कारबार का प्रबंधन या संचालन करने वाले किसी व्यक्ति द्वारा उपगत किया जा सकता है । ऐसे व्यक्ति द्वारा उपगत कर दायित्व उस दायित्व के समतुल्य होगा जो व्यौहारी पर उद्‌गृहीत होता यदि वह ऐसे कारबार का संचालन कर रहा होता । इसके अतिरिक्त, नियम, 1959 के नियम 233 के अधीन समापनाधीन कंपनी की संपत्ति का कब्जा अर्जित और प्रतिधारित करने के प्रयोजनों के लिए शासकीय समापक की वही स्थिति होगी जैसी रिसीवर की होती है । चूंकि शासकीय समापक किसी कंपनी के परिसमापन के प्रयोजन के लिए नियोजित एक अभिकर्ता के समान होता है, इसलिए शासकीय समापक के कानूनी कृत्यों के निर्वहन के प्रयोजनों के लिए वह उक्त कंपनी के निदेशकों के रूप में कार्य करता है । इस प्रकार, उक्त कार्यवाहियों के दौरान निदेशकों द्वारा उस तारीख से कोई कृत्य करना बंद हो जाता है जिस तारीख से शासकीय समापक नियुक्त किया जाता है और उसके पश्चात् कंपनी के कारबार को चलाने के लिए सभी शक्तियां और कृत्य शासकीय समापक में निहित हो जाते हैं । (पैरा 55 और 56)

पूर्ववर्ती पैराओं में की गई चर्चा से यह न्यायालय यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि शासकीय समापक न्यायालय का एक अधिकारी होता है और अधिनियम, 1956 के अधीन अधिरोपित कानूनी बाध्यताओं का निर्वहन करने के प्रयोजन के लिए शासकीय समापक समापनाधीन कंपनी के साधन के रूप में कार्य करता है । शासकीय समापक द्वारा तारीख 26 नवम्बर, 2001 को निविदाएं आमंत्रित करते हुए जारी की गई सूचना के आधार पर यह पूर्णतः स्पष्ट है कि समापक का आशय परिसमापन में के उक्त माल का अंतरण करने का था । चूंकि नीलाम विक्रय करने में माल का अंतरण अंतर्वलित था, इसलिए यह अधिनियम, 1963 की धारा 2(viii)(च) की व्यापक व्याप्ति के अंतर्गत आता है । इस न्यायालय ने इसमें ऊपर यह उल्लेख किया है कि समापनाधीन कंपनी परिसमापन आदेश के अधीन

नीलामी के माध्यम से अपनी आस्तियों का विक्रय करने के संबंध में एक "व्यौहारी" है । इसके अतिरिक्त, हमने इस स्थिर विधि का उल्लेख किया है कि शासकीय समापक समापनाधीन कंपनी के निदेशक का स्थान लेता है और न्यायालय के निदेशानुसार अपने कानूनी कृत्यों को पूर्ण करता है । इसके अतिरिक्त, नियम, 1963 के नियम 54 में उस स्थिति को परिकल्पित किया गया है जहां किसी व्यौहारी के स्वामित्वाधीन कोई कारबार किसी रिसीवर या प्रबंधक या किसी अन्य व्यक्ति के नियंत्रणाधीन है, चाहे उसका पदनाम कुछ भी हो, जो उक्त व्यौहारी की ओर से कारबार का प्रबंधन करता है । उक्त परिवेश में, व्यौहारी की ओर से कारबार का भारसाधक, उक्त व्यक्ति विक्रय कर के संदाय के लिए उसी रीति में दायी होगा जैसे कि स्वयं व्यौहारी पर उद्गृहीत और उससे वसूलनीय होता । इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वर्तमान मामले में विक्रय कर का संदाय करने का दायित्व शासकीय समापक पर उसी रीति में होगा जैसे कि व्यौहारी अर्थात् समापनाधीन कंपनी पर होता । अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अनुसरण में, समापनाधीन कंपनी पर एक व्यौहारी के रूप में प्रथम विक्रय के स्थल पर विक्रय कर का संदाय करने का दायित्व वैसे ही उपगत होगा जैसे कि उक्त अधिनियम के अधीन किसी अन्य व्यौहारी पर उपगत होता । नियम, 1963 के नियम 54 का अवलंब लेकर विक्रय कर का संदाय करने का दायित्व समापनाधीन कंपनी की संपत्ति के प्रबंधक या रिसीवर के रूप में शासकीय समापक द्वारा वहन किया जाएगा । इसलिए इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि शासकीय समापक से यह अपेक्षित है कि वह समापनाधीन कंपनी की आस्तियों के विक्रय पर संदेय कर का संदाय करे । (पैरा 59, 61 और 62)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2008]	(2008) 14 एस. सी. सी. 17 : **अजय जी. पोदार** बनाम **जे. एस. एंड डब्ल्यू. एम. और अन्य का शासकीय समापक** ;	51
[2004]	(2004) 7 एस. सी. सी. 195 : **कार्यपालक इंजीनियर, केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग** बनाम **राजस्थान कराधान बोर्ड** ;	40
[2003]	(2003) 3 एस. सी. सी. 239 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **भारत संघ** ;	37

[1997]	(1997) 3 एस. सी. सी. 410 : **भारतीय खाद्य निगम** बनाम **केरल राज्य** ;	42
[1989]	(1989) 1 एस. सी. सी. 636 : **तमिलनाडु राज्य** बनाम **शक्ति इस्टेट्स** ;	38
[1985]	[1985] 3 उम. नि. प. 139 = (1985) सप्ली. एस. सी. सी. 280 : **उड़ीसा राज्य** बनाम **टीटागढ़ पेपर मिल्स कंपनी लि.** ;	41
[1980]	(1980) 1 आल ई. आर. 117 : **री मेस्को प्रोपर्टीज़** ;	52
[1975]	(1975) 4 एस. सी. सी. 745 : **तमिलनाडु राज्य** बनाम **एम. के. कंडास्वामी** ;	39
[1975]	(1975) 2 आल ई. आर. 537 : **आयेरस्ट (इंस्पेक्टर आफ टैक्सिज़)** बनाम **सी. एंड के. (कंस्ट्रक्शन) लिमिटेड** ;	53
[1973]	(1973) 1 एस. सी. सी. 46 : **चौरंगी सेल्स ब्यूरो (प्रा.) लिमिटेड** बनाम **आयकर आयुक्त** ;	36
[1969]	(1969) 3 एस. सी. सी. 537 : **नवलखा एंड संस** बनाम **रामानुज दास** ;	49
[1966]	ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 1481 : **हरी प्रसाद जयंतीलाल एंड कं.** बनाम **वी. एस. गुप्ता, आयकर अधिकारी, अहमदाबाद और एक अन्य** ।	50

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2015 की सिविल अपील सं. 354-355.

2002 के एम. एफ. ए. सं. 1394 और 2003 की पुनर्विलोकन याचिका सं. 191 में एर्नाकुलम स्थित केरल उच्च न्यायालय के क्रमशः तारीख 11 फरवरी, 2003 और 21 मार्च, 2003 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री के. आर. शशिप्रभू, जोगी सारिया और मोहम्मद सदीक़

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री एस. के. बगारिया, ज्येष्ठ अधिवक्ता और उसके साथ बी. मोहन, शांत कुमार जैन और (सुश्री) मीरा माथुर

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति एच. एल. दत्तू ने दिया ।

मु. न्या. दत्तू – इजाजत दी गई ।

2. वर्तमान अपीलों में हमारे विचार और विनिश्चय करने के लिए जो विवाद्यक उद्भूत होता है, वह यह है कि क्या केरल साधारण विक्रय कर अधिनियम, 1963 (केरल जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1963) (जिसे इसमें आगे "अधिनियम, 1963" कहा गया है) की धारा 2(viii) के अर्थांतर्गत "शासकीय समापक" एक "व्यौहारी" है और इसलिए किसी समापनाधीन कंपनी की परिसमापन कार्यवाहियों के अनुसरण में उसके द्वारा किए गए विक्रय की बाबत उससे विक्रय कर संगृहीत करना अपेक्षित है या नहीं ।

3. ये अपीलें 2000 के एम. एफ. ए. सं. 1394 में तारीख 11 फरवरी, 2003 को और 2003 की पुनर्विलोकन याचिका सं. 191 में तारीख 21 मार्च, 2003 को केरल उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय (निर्णयों) और आदेश (आदेशों) के विरुद्ध फाइल की गई हैं । उच्च न्यायालय की खंड न्यायापीठ ने पुनर्विलोकन में 2002 के एम. एफ. ए. सं. 1394 में निकाले गए निष्कर्ष की पुष्टि की और यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि शासकीय समापक अधिनियम, 1963 के अधीन एक "व्यौहारी" नहीं है । तथापि, उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा विद्वान् एकल न्यायाधीश के उस आदेश को अपास्त कर दिया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि शासकीय समापक द्वारा किए गए नीलाम-विक्रय में क्रय की गई मशीनरी अधिनियम, 1963 के अधीन कर लगाए जाने के लिए दायी नहीं है । आक्षेपित निर्णय में अपीलार्थी द्वारा किया गया यह एक नया अभिवाक् भी स्वीकार किया गया कि नीलाम क्रेता अधिनियम, 1963 की धारा 5क के अधीन क्रय-कर का संदाय करने का दायी है ।

4. यह उल्लेख करना सुसंगत है कि प्रत्यर्थी सं. 1 अर्थात् हिन्दुस्तान अर्बन इंफ्रास्ट्रक्चर लि. ने आक्षेपित निर्णय में क्रय-कर, जो तद्धीन नीलाम क्रेता पर अधिरोपित किया गया था, का संदाय करने के दायित्व के बारे में उच्च न्यायालय के विनिर्दिष्ट निष्कर्ष के विरुद्ध एक अलग अपील (2003 की सिविल अपील सं. 5048) फाइल की थी । इस न्यायालय ने उक्त

सिविल अपील में तारीख 4 सितम्बर, 2014 के अपने आदेश द्वारा पूर्वोक्त प्रश्न पर अलग-से विचार किया था ।

तथ्य :

5. अंतर्वलित विवाद्यकों का मूल्यांकन करने के लिए उन तथ्यों का उल्लेख करना आवश्यक है जिनसे वर्तमान अपीलें उद्भूत हुई हैं । मैसर्स प्रीमियर केबल कंपनी लि. (जिसे इसमें आगे संक्षेप में "कंपनी" कहा गया है) कंपनी अधिनियम, 1956 (जिसे इसमें आगे संक्षेप में "अधिनियम, 1956" कहा गया है) के अधीन रजिस्ट्रीकृत थी और पीवीसी पावर केबल, एल्यूमिनियम कंडक्टर्स, इनेमल्ड वायर्स इत्यादि के काम में लगी थी । औद्योगिक और वित्त पुनर्गठन बोर्ड द्वारा की गई सिफारिश के अनुसरण में 1996 की कंपनी याचिका सं. 2 में उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 18 जून, 1998 को पारित किए गए आदेश द्वारा कंपनी का परिसमापन किए जाने का आदेश किया गया । उच्च न्यायालय से संलग्न प्रत्यर्थी सं. 2, अर्थात् शासकीय समापक को कंपनी की आस्तियों और दायित्वों का भारसाधन लेने और इन पर अधिनियम, 1956 के उपबंधों तथा तद्धीन बनाए गए नियमों के अनुसार कार्यवाही करने के लिए नियुक्त किया गया था ।

6. उपर्युक्त आदेश के अनुसरण में शासकीय समापक ने समापनाधीन कंपनी की आस्तियों का विक्रय करने के संबंध में निविदाएं आमंत्रित करते हुए तारीख 26 नवम्बर, 2001 को एक सूचना जारी की । पूर्वोक्त आस्तियों में भूमि सहित कारखाना भवन, कर्मशाला भवन, कैन्टीन भवन, गोदाम, क्वाटर्स और अन्य सहायक भवन तथा समापनाधीन कंपनी का संयंत्र और मशीनरी भी सम्मिलित थी । कंपनी की आस्तियों के विक्रय के निबंधनों और शर्तों में, अन्य बातों के साथ-साथ, अभिव्यक्त रूप से यह उपबंध किया गया था कि यह विक्रय उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि करने के अध्यधीन और इसके अतिरिक्त उन किन्हीं पश्चात्वर्ती निबंधनों और शर्तों के भी अध्यधीन होगा, जो उच्च न्यायालय द्वारा अधिरोपित की जाएं ।

7. प्रत्यर्थी सं. 1-नीलाम क्रेता ने शासकीय समापक द्वारा निविदाएं आमंत्रित करने के लिए जारी की गई सूचना के उत्तर में तारीख 18 दिसम्बर, 2001 के प्रस्थापना पत्र द्वारा लाट सं. 1-2 को कुल 5,76,00,000/- रुपए (पांच करोड़ छियत्तर लाख रुपए केवल) में क्रय करने की प्रस्थापना की । प्रस्थापना पत्र में अभिव्यक्त रूप से यह कथन किया गया था कि उक्त रकम सभी कानूनी उद्ग्रहणों जैसे विक्रय कर, केन्द्रीय

विक्रय कर, उत्पाद शुल्क इत्यादि, यदि कोई हो, और जो लागू हों, सहित होगी । इस प्रकार की गई प्रस्थापना को स्वीकार करने के पश्चात् शासकीय समापक ने इसे कंपनी के मामलों पर विचार करने वाले विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष उनकी पुष्टि के लिए प्रस्तुत किया ।

8. उक्त विक्रय की पुष्टि के पश्चात् नीलाम क्रेता के विक्रय की गई आस्तियों को कई राज्यों की सीमा के बाहर परिवहन करने का इच्छुक होने के कारण शासकीय समापक को तारीख 29 अगस्त, 2002 के पत्र द्वारा विक्रय बीजकों में सुसंगत विक्रय कर पंजीकरण संख्यांकों को सम्मिलित करने का अनुरोध किया । शासकीय समापक ने तारीख 3 सितम्बर, 2002 के पत्र द्वारा इस अनुरोध को स्वीकार करने से इनकार कर दिया ।

9. तत्पश्चात्, शासकीय समापक ने उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष एक शपथपत्र, अन्य बातों के साथ-साथ, यह कथन करते हुए फाइल किया कि उसने उसके द्वारा किए गए विक्रय की बाबत न तो किसी उपकर या विक्रय कर का संग्रहण किया है और न ही संदाय किया है । यह कथन किया गया कि शासकीय समापक की यह राय है कि उच्च न्यायालय द्वारा नीलाम क्रेता को निदेशित किया जाए कि वह उपकर, विक्रय कर आदि के निमित्त किन्हीं व्ययों या दायित्व, जब भी ये संदेय हों, की पूर्ति करे ।

10. शासकीय समापक द्वारा विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष कंपनी याचिका में, अन्य बातों के साथ-साथ, मामले के कतिपय पहलुओं पर स्पष्टीकरण की ईप्सा करते हुए एक आवेदन भी फाइल किया गया, जिसमें यह बात भी सम्मिलित थी कि क्या नीलाम क्रेता की गई नीलामी के अनुसरण में विक्रय किए गए माल पर कर का संदाय करने का दायी होगा या नहीं और यह भी कि नीलाम क्रेता को निदेश दिया जाए कि वह उन सभी करों का संदाय करे जो विक्रय कर विभाग द्वारा उद्ग्रहणीय हों । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने आवेदन में किए गए निवेदनों पर विचार करने के पश्चात् 1996 की कंपनी याचिका सं. 2 में 2002 के सिविल आवेदन सं. 293 और 2002 के सिविल आवेदन सं. 333 में एक आदेश पारित किया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रश्नगत विक्रय को केन्द्रीय सरकार द्वारा या रजिस्ट्रीकृत व्यौहारी द्वारा किए गए विक्रय के रूप में नहीं माना जा सकता है जो कर का संग्रहण करने का हकदार हो और यह भी मत व्यक्त किया कि नीलाम क्रेता को अधिनियम, 1963 के अधीन एक व्यौहारी नहीं माना जा सकता है और यह भी कि उक्त प्रश्नगत विक्रय पर विक्रय कर वसूलनीय नहीं है ।

11. अपीलार्थी ने विद्वान् एकल न्यायाधीश के आदेश से व्यथित होकर तारीख 30 अक्तूबर, 2012 के आदेश के विरुद्ध एक अपील फाइल की जिसमें, अन्य बातों के साथ-साथ, यह अभिवाक् किया गया कि जब कभी भी शासकीय समापक द्वारा समापनाधीन कंपनी की आस्तियों का विक्रय किया जाता है तो वह विक्रय कर का संदाय करने के लिए आबद्धकर है । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने 2002 के एम. एफ. ए. सं. 1394 में पारित आदेश द्वारा यह मत व्यक्त किया कि "शासकीय समापक" तारीख 11 फरवरी, 2003 के अधिनियम, 1963 के अधीन "व्यौहारी" की परिभाषा के अर्थांतर्गत नहीं आता है । तद्नुसार अपील खारिज कर दी गई और विद्वान् एकल न्यायाधीश के आदेश की पुष्टि की गई ।

12. अपीलार्थी ने तारीख 11 फरवरी, 2003 के पूर्वोक्त आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष 2003 की पुनर्विलोकन याचिका सं. 191 फाइल की । पुनर्विलोकन याचिका में अपीलार्थी ने यह दावा करते हुए एक नया अभिवाक् किया गया कि भले ही शासकीय समापक अधिनियम, 1963 के अधीन व्यौहारी की परिभाषा के अंतर्गत न आता हो, किंतु जहां तक नीलाम-क्रेता का संबंध है, उक्त अधिनियम की धारा 5क लागू होगी ।

13. 2003 की पुनर्विलोकन याचिका सं. 191 में तारीख 21 मार्च, 2003 को पारित किए गए आक्षेपित निर्णय (निर्णयों) और आदेश (आदेशों) द्वारा उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि शासकीय समापक को अधिनियम, 1963 के अधीन एक व्यौहारी नहीं माना जा सकता है और इसलिए उससे विक्रय कर वसूलनीय नहीं है । तथापि, न्यायालय का यह मत था कि नीलाम क्रेता अधिनियम, 1963 की धारा 5क के अधीन क्रय-कर का संदाय करने का दायी है ।

विवाद्यक :

14. वर्तमान अपीलों में विचार करने के लिए उद्भूत विवाद्यक हैं – प्रथमतः, क्या शासकीय समापक अधिनियम, 1963 के अर्थांतर्गत एक "व्यौहारी" है और द्वितीयतः, क्या शासकीय समापक के लिए किसी परिसमापन कार्यवाही के अनुसरण में किए गए विक्रय के संबंध में विक्रय कर का संदाय करना अपेक्षित है या नहीं ।

दलीलें :

15. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री वी. गिरी ने यह

दलील दी कि राजस्व विभाग द्वारा अपनाया गया संगत आधार यह है कि शासकीय समापक प्रश्नगत संव्यवहार पर विक्रय कर का संदाय करने के लिए दायी है । उसने यह दलील दी कि शासकीय समापक को उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश तथा खंड न्यायपीठ द्वारा अधिनियम, 1963 के अधीन एक "व्यौहारी" होना अभिनिर्धारित किया गया था और केवल पुनर्विलोकन में ही उक्त निष्कर्ष को उलटा गया था । उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश और खंड न्यायपीठ के विनिश्चय का समर्थन करने के लिए उसने अधिनियम, 1963 के अधीन यथा उपबंधित "व्यौहारी" की परिभाषा का अवलंब लिया और यह दलील दी कि शासकीय समापक केन्द्रीय सरकार का अभिकर्ता होता है और इसलिए उसे अधिनियम, 1963 की धारा 2(viii)(च) के स्पष्टीकरण 2 के अधीन उपबंधित अनुसार एक व्यौहारी समझा जाएगा । विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलील को और सिद्ध करने के लिए उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष विक्रय कर प्राधिकारियों की ओर से उपसंजात होने वाले विशेष सरकारी प्लीडर (कर) द्वारा फाइल किए गए कथन के प्रति निर्देश किया, जिसमें स्पष्ट तौर पर यह कहा गया था कि शासकीय समापक अधिनियम, 1963 के अधीन सुसंगत दर पर कर का संदाय करने का दायी है, चाहे उसने यह कर नीलाम क्रेता से संगृहीत किया हो या नहीं ।

16. शासकीय समापक-प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री सी. एस. राजन ने पुनर्विलोकन याचिका में उच्च न्यायालय के निष्कर्षों का समर्थन किया और यह कहा कि शासकीय समापक अधिनियम, 1963 के अधीन किसी प्रकार के कर का संदाय करने का दायी नहीं है ।

17. श्री राजन ने इसके पश्चात् शासकीय समापक द्वारा किए जाने वाले कार्यकलापों की प्रकृति का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया और यह दलील दी कि चूंकि शासकीय समापक न्यायालय का एक अधिकारी होता है, इसलिए वह केवल अपने ऊपर अधिरोपित कानूनी कृत्यों का निर्वहन करता है और इसलिए उसे अधिनियम, 1963 के अधीन कर का संदाय करने के लिए दायी नहीं ठहराया जा सकता है । श्री राजन ने अपनी दलील के समर्थन में अधिनियम, 1956 के विभिन्न उपबंधों और कंपनी (न्यायालय) नियम, 1959 (जिसे इसमें आगे संक्षेप में "नियम, 1959" कहा गया है) के प्रति भी निर्देश किया । श्री राजन ने अंत में यह दलील दी कि चूंकि शासकीय समापक ने समापनाधीन कंपनी की आस्तियों का

विक्रय करके कानूनी कृत्यों का निर्वहन किया है, इसलिए उसे अधिनियम, 1963 के अधीन यथा परिभाषित "कारबार" करने वाला नहीं समझा जा सकता है और इस प्रकार उसे कर का संदाय करने के लिए दायी नहीं माना जा सकता है ।

18. नीलाम क्रेता की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एस. के. बगारिया ने यह दलील दी कि क्रय-कर के संदाय का प्रश्न ही पैदा नहीं होता क्योंकि प्रथमतः, ऐसी दलील पहली बार पुनर्विलोकन याचिका में दी गई थी और द्वितीयतः, उक्त कर विक्रय के प्रथम-स्थल पर उद्ग्रहणीय एकल-स्थल कर है । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी कि नीलाम क्रेता को ऐसे कर के लिए दायी नहीं बनाया जा सकता है जो यहां तक कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा भी अधिरोपित नहीं किया गया था या मांगा गया था । उसने फिर यह दलील दी कि शासकीय समापक कंपनी की ओर से विक्रय करता है, न कि स्वामी के रूप में । अंत में, श्री बगारिया ने केरल साधारण विक्रय कर नियम, 1963 (केरल जनरल सेल्स टैक्स रूल्स, 1963) (जिसे इसमें आगे "नियम, 1963" कहा गया है) और केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम, 1956 (जिसे इसमें आगे "केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम" कहा गया है) की धारा 17 के प्रति यह स्पष्ट करने के लिए निर्देश किया कि विक्रय कर का संदाय करने का दायित्व स्पष्ट तौर पर शासकीय समापक पर था ।

19. हमने मुकदमा लड़ने वाले पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को सुना और निचले न्यायालयों और अधिकरणों द्वारा पारित किए गए आदेशों का भी सावधानीपूर्वक परिशीलन किया ।

20. इस न्यायालय द्वारा विचार और विनिश्चय करने के लिए मुद्दा यह है कि क्या शासकीय समापक अधिनियम, 1963 के अर्थांतर्गत एक "व्यौहारी" है और क्या परिसमापन कार्यवाहियों के अनुसरण में उसके द्वारा किए गए विक्रय की बाबत उसे विक्रय कर का संदाय करना अपेक्षित है या नहीं ।

सुसंगत उपबंध :

21. दी गई दलीलों का मूल्यांकन करने के लिए सुसंगत उपबंधों की अवेक्षा करना उपयुक्त है । ये उपबंध हैं – अधिनियम, 1956 की धारा 448, 456, 457 ; नियम, 1959 का नियम 232, 233 ; अधिनियम, 1963 की धारा 2(vi), 2(viii), 5, 5क, 22 और नियम 1963 का नियम 54

चूंकि ये उपबंध समय-समय पर संशोधित किए गए हैं, इसलिए हमने इन उपबंधों पर, जैसे वे सुसंगत अवधि के दौरान कानून की पुस्तक में थे, उसी रूप में विचार किया है ।

22. अधिनियम, 1956 की धारा 448, 456 और 457 शासकीय समापक की नियुक्ति और शक्तियों के संबंध में हैं । अधिनियम, 1956 की धारा 448 में किसी कंपनी के परिसमापन के प्रयोजन के लिए शासकीय समापक की नियुक्ति का उपबंध हैं । इस प्रकार नियुक्त शासकीय समापक कंपनी के परिसमापन की कार्यवाहियों का संचालन करता है और उन अन्य कर्तव्यों को पूरा करता है जो अधिनियम, 1956 के उपबंधों के अनुरूप न्यायालय उस पर अधिरोपित करता है । अधिनियम, 1956 की धारा 456 में यह उपबंधित है कि परिसमापन आदेश के अनुसरण में समापक कंपनी की सभी संपत्ति, मालमत्ता और अनुयोज्य दावे, जिनकी कंपनी हकदार है या हकदार प्रतीत होती है, अपनी अभिरक्षा में या अपने नियंत्रण के अधीन लेगा । उक्त उपबंध के द्वारा, कंपनी की सब संपत्ति और मालमत्ते की बाबत यह समझा जाएगा कि वह कंपनी के परिसमापन के आदेश की तारीख से न्यायालय की अभिरक्षा में है । अधिनियम, 1956 की धारा 457 में शासकीय समापक की शक्तियों को सूचीबद्ध किया गया है । इन शक्तियों में, अन्य बातों के साथ-साथ, कंपनी के फायदाप्रद परिसमापन के लिए इसके कारबार को चलाना, कंपनी की जंगम और स्थावर संपत्ति तथा अनुयोज्य दावों को लोक नीलामी द्वारा या प्राइवेट संविदा द्वारा बेचना, और ऐसी अन्य सभी कार्यवाही करना जो कंपनी के कार्यकलाप के परिसमापन के लिए तथा उसकी आस्तियों के वितरण के लिए आवश्यक हों, सम्मिलित हैं । तथापि, समापक को अधिनियम, 1956 की धारा 457 के फलस्वरूप प्रदत्त शक्तियां न्यायालय के नियंत्रण के अधीन हैं ।

23. अधिनियम, 1956 की धारा 643 की उपधारा (1) और (2) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए नियम, 1959 अधिनियमित किए गए हैं । न्यायालय द्वारा परिसमापन में आस्तियों के संग्रहण और वितरण से संबंधित सुसंगत नियम, नियम, 1959 के नियम 232 और 234 हैं । नियम 232 शासकीय समापक की शक्तियों के संबंध में है । इस नियम के अनुसार, अधिनियम, 1956 की धारा 467(1) के अधीन कंपनी की आस्तियों के संग्रहण और कंपनी के दायित्वों के निर्वहन में उन आस्तियों के उपयोजन संबंधी न्यायालय पर अधिरोपित कर्तव्यों का शासकीय

समापक द्वारा न्यायालय के एक अधिकारी के रूप में अवश्य निर्वहन किया जाएगा । उपर्युक्त कृत्यों का निर्वहन न्यायालय के नियंत्रण और अधिनियम, 1956 की धारा 643(2) के परंतुक के अधीन होगा । नियम 233 में यह उपबंधित है कि शासकीय समापक पर अधिनियम, 1956 की धारा 467(1) के अनुसरण में अधिरोपित कर्तव्यों के निर्वहन में, और कंपनी की संपत्ति का कब्जा अर्जित करने और प्रतिधारण करने के प्रयोजन के लिए उसे न्यायालय द्वारा नियुक्त संपत्ति के रिसीवर के रूप में माना जाएगा ।

24. अधिनियम, 1963 की धारा 2 में उक्त अधिनियम में दी गई कतिपय अभिव्यक्तियों के अर्थ उपबंधित हैं । धारा 2(vi) में "कारबार" को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है :–

> *"(vi) 'कारबार' के अंतर्गत –
>
> (क) कोई व्यापार, वाणिज्य या विनिर्माण या कोई ऐसा प्रोद्यम या समुत्थान भी है जो व्यापार, वाणिज्य या विनिर्माण की प्रकृति का है, चाहे ऐसा व्यापार, वाणिज्य, विनिर्माण या समुत्थान अभिलाभ या लाभ कमाने के उद्देश्य से चलाया जाता है या नहीं और चाहे ऐसे व्यापार, वाणिज्य, विनिर्माण या समुत्थान से कोई अभिलाभ या लाभ उद्भूत होता है या नहीं ; और
>
> (ख) ऐसे व्यापार, वाणिज्य, विनिर्माण, प्रोद्यम या समुत्थान से सम्बद्ध या प्रासंगिक या उसके आनुषंगिक कोई संव्यवहार भी है ;"

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

> "(vi) 'Business' includes –
>
> (a) any trade, commerce or manufacture or any adventure or concern in the nature of trade, commerce, or manufacture, whethrer or not such trade, commerce, manufacture, adventure or concern is carried on with a motive to make gain or profit and whether or not any profit accrues from such trade, commerce, manufacture, adventure or concern; and
>
> (b) any transaction in connection with, or incidental or ancillary to such trade, commerce, manufacture, adventure or concern;"

25. अधिनियम, 1963 की धारा 2(viii) "व्यौहारी" शब्द की परिभाषा के संबंध में है, जो निम्नलिखित प्रकार से है :–

*"(viii) 'व्यौहारी' से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो माल के क्रय, विक्रय, प्रदाय या वितरण, कार्य की संविदा के निष्पादन, किसी माल के उपयोग के अधिकार का अंतरण करने या किसी माल का किसी सेवा के रूप में या सेवा के भाग के रूप में प्रदाय करने का कारबार, प्रत्यक्षतः या अन्यथा, चाहे नकदी के लिए या आस्थगित संदाय के लिए या कमीशन, पारिश्रमिक या अन्य मूल्यवान प्रतिफल के लिए करता है और इसके अंतर्गत निम्नलिखित भी हैं –

(क) [लोप किया गया]

(ख) नैमित्तिक व्यापारी ;

(ग) * * * *

(घ) * * * *

(ङ.) * * * *

(च) कोई व्यक्ति, जो चाहे कारबार के अनुक्रम में या उसके बिना –

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"(viii) 'Dealer' means any person who carries on the business of buying, selling, supplying or distributing goods, executing works contract, transferring the right to use any goods or supplying by way of or as part of any service, any goods directly or otherwise, whether for cash or for deffered payment, or for commission, remuneration or other valuable consideration and includes, –

(a) [Omitted]

(b) a casual trader;

(c) * * * *

(d) * * * *

(e) * * * *

(f) a person who whether in the course of business or not –

(1) कोई माल, जिसके अंतर्गत नियंत्रित माल भी हैं, चाहे किसी संविदा के अनुसरण में या उसके बिना नकदी के लिए या आस्थगित संदाय के लिए या अन्य मूल्यवान प्रतिफल के लिए, अंतरित करता है ;

(2) किसी काम की संविदा के निष्पादन में अंतर्वलित माल में की संपत्ति (चाहे माल के रूप में या किसी अन्य रूप में) अंतरित करता है ;

(3) किन्हीं माल को किस्तों द्वारा अवक्रय पर या संदाय के किसी अन्य ढंग पर परिदत्त करता है ;

(4) किन्हीं माल के उपयोग के अधिकार का किसी भी प्रयोजन के लिए (चाहे विनिर्दिष्ट अवधि के लिए हो या नहीं) नकदी के लिए, आस्थगित संदाय के लिए या किसी मूल्यवान प्रतिफल के लिए अंतरण करता है ;

(5) माल, जो मानव उपभोग के लिए खाद्‌य या कोई अन्य वस्तु है या किसी पेय पदार्थ (चाहे मादक है या

---

(1) transfers any goods, including controlled goods whether in pursuance of a contract or not, for cash or deferrd payment or other valuable consideration;

(2) transfers property in goods (whether as goods or in some other form) involved in the execution of a works contract;

(3) delivers any goods on hire-purchase or any system of payment by installments;

(4) transfers the right to use any goods for any purpose (whether or not for a specified period) for cash, deferred payment or other valuable consideration;

(5) supplies, by way of or as part of any service or in any other manner whatsoever, goods, being food or any other articles for human consumption

नहीं) का प्रदाय किसी सेवा के रूप में या उसके भाग के रूप में या किसी अन्य रीति में, जो भी हो, करता है और जहां ऐसा प्रदाय या सेवा नकदी के लिए, आस्थगित संदाय के लिए या अन्य मूल्यवान प्रतिफल के लिए है ;

स्पष्टीकरण – (1) कोई सोसाइटी, जिसके अंतर्गत को-आपरेटिव सोसाइटी, क्लब या फर्म या संगम या व्यक्तियों का निकाय भी है, चाहे निगमित है या नहीं, जो चाहे कारबार के अनुक्रम में नकदी के लिए या आस्थगित संदाय के लिए या कमीशन, पारिश्रमिक या अन्य मूल्यवान प्रतिफल के लिए माल का अपने सदस्यों से या उनको क्रय, विक्रय प्रदाय या वितरण करता है, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए व्यौहारी समझा जाएगा ;

स्पष्टीकरण – (2) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार, जो चाहे कारबार के अनुक्रम में या उसके बिना माल का क्रय, विक्रय, प्रदाय या वितरण प्रत्यक्षतः या अन्यथा चाहे नकदी के लिए या आस्थगित संदाय के लिए या कमीशन, पारिश्रमिक या अन्य मूल्यवान प्रतिफल के लिए करती है, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए व्यौहारी समझी जाएगी ।

---

or any drink (whether or not intoxicating), where such supply or sevice is for cash, deferred payment or other valuable consideration;

Explanation – (1) A society including a co-operative society, club or firm or an association or body of persons, whether incorporated or not which whether or not in the course of business buys, sells, supplies or distributes goods from or to its members for cash or for deferred payment, or for commission, remuneration or other valuable consideration, shall be deemed to be a dealer for the purposes of this Act;

Explanation – (2) The Central Government or a State Government, which whether or not in the course of business, buys, sells, supply or distributes goods, directly or otherwise, for cash or for deferred payment, or for commission, remuneration or other valuable consideration, shall be deemed to be a dealer for the purposes of this Act;

(छ) कोई बैंक या वित्तीय संस्था, जो चाहे अपने कारबार के अनुक्रम में या उसके बिना कोई स्वर्ण या अन्य मूल्यवान वस्तु जो किसी ऋण को प्रतिभूत करने के लिए उसके पास गिरवी है, ऐसे ऋण की रकम की वसूली के लिए उसका क्रय करता है ;

स्पष्टीकरण I – इस खंड के प्रयोजनों के लिए बैंक के अंतर्गत कोई राष्ट्रीयकृत बैंक या अनुसूचित बैंक या को-आपरेटिव सोसाइटी भी है ;

स्पष्टीकरण II – वित्तीय संस्था से बैंक से भिन्न कोई वित्तीय संस्था अभिप्रेत है ।''

26. उपर्युक्त परिभाषाओं का परिशीलन करने पर यह प्रतीत होता है कि 'कारबार' शब्द का प्रासंगिक और आनुषंगिक दोनों प्रकार के संव्यवहारों को इसकी परिधि के भीतर सम्मिलित करके व्यापक अर्थ दिया गया है । इसके अतिरिक्त, इसमें लाभ के आवश्यक घटक की अपेक्षा को भी समाप्त किया गया है । 'व्यौहारी' की परिभाषा भी व्यापक अर्थ में दी गई है । इसके अंतर्गत, अन्य बातों के साथ-साथ, ऐसा व्यक्ति सम्मिलित है जो माल का क्रय, विक्रय, प्रदाय या वितरण, चाहे प्रत्यक्षतः या अन्यथा, करता है । संदाय के सभी ढंगों को इसमें सम्मिलित किया गया है वह चाहे नकदी, कमीशन, पारिश्रमिक या अन्य मूल्यवान प्रतिफल के रूप में हो । इसके अंतर्गत, अन्य के साथ-साथ, आकस्मिक व्यापारी, अनिवासी व्यौहारी, कमीशन अभिकर्ता, दलाल, नीलामकर्ता और अन्य वाणिज्यिक अभिकर्ता भी आते हैं । परिभाषा की उपधारा (च) में इस उपबंध की व्याप्ति को इसकी परिधि के भीतर संव्यवहारों की एक सूची, जो कारबार के अनुक्रम में किए गए हैं या नहीं, सम्मिलित करके विस्तृत किया गया है । धारा 2(viii)(च)(1) में 'व्यौहारी' की परिभाषा के भीतर अभिव्यक्त रूप से ऐसे व्यक्ति को

(g) a bank or a financing institution, which, whether in the course of its business or not, sells any gold or other valuable article pledged with it to secure any loan, for the realization of such loan amount.

Explanation I – Bank for the purposes of this clause includes a Nationalized Bank or a Schedule Bank or a co-operative Bank;

Explanation II – Financing Institution means a financing institution other than a bank;''

सम्मिलित किया गया है जो चाहे कारबार के अनुक्रम में या उसके बिना किसी माल का, चाहे किसी संविदा के अनुसरण में या उसके बिना, नकदी के लिए या आस्थगित संदाय के लिए अंतरण करता है ।

27. अधिनियम, 1963 की धारा 5 उक्त अधिनियम के अधीन प्रभारी उपबंध है और माल के विक्रय और क्रय पर कर के उद्ग्रहण का उपबंध करती है । इस धारा में यह उपबंधित है कि प्रत्येक व्यौहारी, जिसका उस वर्ष के लिए कुल आवर्त 2,00,000/- रुपए से अन्यून है, अधिनियम, 1963 की अनुसूची में विनिर्दिष्ट दरों और स्थलों पर कर का संदाय करने के लिए दायी होगा । अधिनियम, 1963 की प्रथम अनुसूची वर्तमान अपील के प्रयोजन के लिए सुसंगत है । उक्त अनुसूची की क्रम सं. 84, अन्य बातों के साथ-साथ, मशीनरी से संबंधित है और इसमें यह उपबंधित है कि उद्ग्रहण का स्थल व्यौहारी, जो अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अधीन कर के लिए दायी है, द्वारा राज्य में किए गए प्रथम विक्रय का स्थल होगा ।

28. अधिनियम, 1963 की धारा 5क क्रय-कर के अधिरोपण के बारे में प्रभारी उपबंध है । उक्त उपबंध के अधीन ऐसा कोई माल, जो उपभोग, प्रयुक्त, व्ययन या किसी रजिस्ट्रीकृत व्यौहारी से राज्य के बाहर प्रेषित किया जा सकता है, के क्रेता पर क्रय-कर के संदाय का दायित्व उपगत होगा । इस उपबंध में पूर्ण रूप से यह स्पष्ट किया गया है कि क्रय-कर केवल उन परिस्थितियों में लागू होगा जिनमें अधिनियम, 1963 की धारा 5 की उपधारा (1), (3), (4) या (5) के अधीन संदेय नहीं है ।

29. नियम, 1963 अधिनियम, 1963 की धारा 57 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए अधिनियमित किए गए हैं । नियम, 1963 का नियम 54 निम्न प्रकार से है :–

> *"54. प्रतिपाल्य अधिकरण (कोर्ट ऑफ वाड्र्स), शासकीय न्यासी आदि का दायित्व – ऐसे किसी व्यौहारी के स्वामित्वाधीन कारबार की दशा में, जिसकी सम्पदा या उसकी सम्पदा का कोई भाग न्यायालय द्वारा नियुक्त, या न्यायालय के किसी आदेश के अधीन प्रतिपाल्य

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

> "54. Liability of Court of Wards, Official Trustees etc – In the case of business, owned by a dealer whose estate or any portion of whose estate is under the control of Court of Wards, the Administrator General, the official trustee or any Receiver

अधिकरण, महाप्रशासक, शासकीय न्यासी या किसी रिसीवर या प्रबंधक (इसमें ऐसा कोई व्यक्ति भी सम्मिलित है जिसका पदनाम कुछ भी हो, जो वस्तुतः व्यौहारी की ओर से कारबार का प्रबंधन करता है) के नियंत्रणाधीन है, कर ऐसे प्रतिपाल्य अधिकरण, महाप्रशासक, शासकीय न्यासी, रिसीवर या प्रबंधक पर वैसी रीति में और वैसे ही निबंधनों पर उद्ग्रहण किया जाएगा और वसूलनीय होगा जैसा कि वह व्यौहारी पर उद्ग्रहणीय और उससे वसूलनीय होता यदि वह स्वयं कारबार का संचालन कर रहा होता, और अधिनियम और तद्धीन बनाए गए नियमों के उपबंध तद्नुसार लागू होंगे ।"

30. उपर्युक्त नियम ऐसा दृश्य-विधान अनुध्यात करता है जिसमें कोई कारबार, जिसका स्वामी कोई व्यौहारी है, अन्य के साथ-साथ, शासकीय न्यासी या रिसीवर या प्रबंधक के नियंत्रणाधीन है और इसके अंतर्गत कोई ऐसा अन्य व्यक्ति भी है जो उक्त व्यौहारी के कारबार का प्रबंधन करता है, जिसे किसी न्यायालय के आदेश द्वारा नियुक्त किया गया है । ऐसी स्थिति में, कर उस व्यक्ति से जो व्यौहारी के कारबार का नियंत्रण करता है, उसी या वैसी ही रीति में वसूलनीय होगा जैसे कि स्वयं व्यौहारी से वसूलनीय होता ।

चर्चा :

31. प्रारंभ में, राजस्व विभाग की ओर से उपसंजात होने वाले विशेष सरकारी प्लीडर (कर) द्वारा उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष फाइल किए गए कथन/शपथ-पत्र के प्रति निर्देश करना आवश्यक होगा । राजस्व विभाग ने उक्त कथन/शपथ-पत्र में यह कहा है कि शासकीय समापक द्वारा किया गया विक्रय, चाहे नीलामी द्वारा या अन्यथा, केन्द्रीय सरकार द्वारा किया गया विक्रय है और इसलिए शासकीय समापक अधिनियम, 1963 के अधीन एक व्यौहारी बन जाता है । आगे यह कथन किया

---

or manager (including any person whatever be his designation, who in fact manages the business on behalf of the dealer) appointed by, or under any order of a Court, the tax shall be levied upon and recoverable from such Court of Wards, Administrator General, Official Trustee, Receiver or Manager in like manner and on the same terms as it would be leviable upon and recoverable from the dealer if he were conducting the business himself, and all the provisions of the Act and Rules made thereunder shall apply accordingly."

गया है कि यद्यपि कर किसी रजिस्ट्रीकृत व्यौहारी द्वारा ही संगृहीत किया जा सकता है, तो भी केन्द्रीय सरकार उसी रीति में कर का संग्रहण करने के लिए सशक्त है जिस रीति में कोई रजिस्ट्रीकृत व्यौहारी हकदार है । राजस्व विभाग ने इस शपथ-पत्र में अंत में यह कहा है कि शासकीय समापक सुसंगत दर पर कर का संदाय करने के लिए दायी है, चाहे उसने यह कर संगृहीत किया है या नहीं ।

32. राजस्व विभाग के आधार का मूल्यांकन करने के लिए अधिनियम, 1963 की धारा 2(viii) को निर्दिष्ट करना उपयोगी होगा, जिसमें 'व्यौहारी' अभिव्यक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी गई है कि कोई व्यक्ति जो, प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः, माल का क्रय, विक्रय, प्रदाय या वितरण, कार्य की संविदा का निष्पादन, किसी माल का उपयोग करने के लिए अधिकार का अंतरण या किसी माल का किसी सेवा के रूप में या उसके भाग के रूप में प्रदाय करता है । उपर्युक्त कार्यकलाप प्रतिफल के संदाय के लिए नकदी, आस्थगित संदाय, कमीशन, पारिश्रमिक आदि के रूप में किए जाते हैं । इस प्रकार, इस खंड में उपबंधित 'कारबार करता है' अभिव्यक्ति पर दिए गए बल को व्यापक अर्थ में समझा जाना चाहिए और केवल क्रय या विक्रय के कार्यकलाप तक ही निर्बंधित नहीं किया जाना चाहिए ।

33. 'कारबार' अभिव्यक्ति की एक व्यापक और समावेशित परिभाषा दी गई है, जिसके द्वारा 'किसी कारबार, व्यापार, वाणिज्य या विनिर्माण या उक्त प्रकृति के किसी कार्यकलाप को, चाहे यह लाभ कमाने के उद्देश्य से चलाया जाता है या नहीं', अभिव्यक्त रूप से सम्मिलित किया गया है । इसके अंतर्गत ऐसे व्यापार, वाणिज्य आदि से संबद्ध कोई संव्यवहार भी सम्मिलित है और इसमें किसी व्यापार, वाणिज्य से संबद्ध सभी प्रासंगिक या आनुषंगिक कार्यकलाप भी सम्मिलित हैं ।

34. इसके अतिरिक्त, धारा 2(viii)(च) में 'व्यौहारी' की परिभाषा को इसकी परिधि के अंतर्गत व्यक्तियों के अधिक वर्ग सम्मिलित करके विस्तृत किया गया है । इसके अंतर्गत कोई व्यक्ति जो कोई माल अंतरित करता है, किसी काम की संविदा के निष्पादन में अंतर्वलित माल में की संपत्ति अंतरित करता है, अवक्रय या किस्तों द्वारा संदाय की किसी पद्धति के आधार पर कोई माल परिदत्त करता है, किसी माल के उपयोग के अधिकार को किसी प्रयोजन के लिए अंतरित करता है और अंततः मानव उपभोग के लिए उपयुक्त कोई खाद्य या पेय पदार्थ का प्रदायकर्ता या सेवा प्रदाता भी

आते हैं । उप-खंड (च) के स्पष्टीकरण 1 के अंतर्गत कोई सोसाइटी, क्लब, फर्म या व्यक्तियों का संगम या निकाय, चाहे निगमित है या नहीं, आते हैं । इस धारा की व्याप्ति के अंतर्गत स्पष्टीकरण 2 में केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार और इसके किसी परिकरण को भी सम्मिलित किया गया है ।

35. इसलिए इस परिभाषा की आपवादिक तौर पर व्यापक परिधि को देखते हुए, प्रथमदृष्ट्या यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कोई व्यक्ति या सत्ता जो माल के विक्रय का कोई कार्यकलाप करता है, उसे अधिनियम, 1963 के अधीन एक 'व्यौहारी' के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है । प्रस्तुत विवाद्यक के संदर्भ में उपर्युक्त निष्कर्ष का परीक्षण करने के लिए हम इस न्यायालय द्वारा किए गए 'व्यौहारी' शब्द के निर्वचन पर विचार करेंगे । अधिनियम, 1963 के अधीन दी गई 'व्यौहारी' शब्द की परिभाषा के सावधानीपूर्वक वाचन से यह स्पष्ट होता है कि विधान मंडल का आशय एक समावेशित मानदंड उपबंधित करना और उक्त वर्गीकरण की व्याप्ति को विस्तृत करना था । विधान मंडल ने इस शब्द की व्याप्ति को साधारण बोल-चाल की भाषा में समझे जाने वाले शब्द तक निर्बंधित नहीं किया ।

36. इस न्यायालय के कई विनिश्चयों द्वारा विभिन्न विक्रय कर विधानों के अधीन दी गई व्यौहारी की परिभाषा का व्यापक अर्थ लगाया गया है । **चौरंगी सेल्स ब्यूरो (प्रा.) लिमिटेड** बनाम **आयकर आयुक्त**[1] वाले मामले में, अन्य बातों के साथ-साथ, बंगाल वित्त (विक्रय कर) अधिनियम, 1941 [बंगाल फाइनेंस (सेल्स टैक्स) ऐक्ट, 1941] के अधीन दी गई 'व्यौहारी' की परिभाषा के स्पष्टीकरण को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि इसमें ऐसे व्यक्ति पर कर उद्ग्रहण करने की ईप्सा की गई है जो न तो विक्रेता है और न ही क्रेता । इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने उक्त चुनौती को नामंजूर करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि 'व्यौहारी' शब्द के अंतर्गत वह नीलामकर्ता भी आता है जो विक्रय का कारबार करता है और जिसके पास कारबार के प्रथागत अनुक्रम में मालिक के माल का विक्रय करने का प्राधिकार है । यह भी मत व्यक्त किया गया कि दिए गए स्पष्टीकरण में माल के विक्रय के संव्यवहार पर कर लगाने की ईप्सा की गई है । यह अभिनिर्धारित किया गया कि नीलामकर्ता जैसे व्यक्ति से विक्रय कर का उद्ग्रहण करने का उपबंध करने वाला कानूनी उपबंध तब

[1] (1973) 1 एस. सी. सी. 46.

अनुज्ञेय होगा जब विक्रय के संव्यवहार और विक्रय कर का संदाय करने के लिए दायी बनाए गए व्यक्ति के बीच निकट और प्रत्यक्ष संबंध हो ।

37. **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि केन्द्रीय सरकार जब विक्रय और क्रय के कारबार में अंतर्वलित हो, तब उसे उत्तर प्रदेश विक्रय कर अधिनियम, 1940 (यू. पी. सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1940) के अधीन 'व्यौहारी' के रूप में समझा जा सकता है । इस न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया :–

> "11. …….. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि किसी माल के उपयोग के अधिकार का अंतरण करने के संबंध में व्यक्ति और सरकार दोनों निम्नलिखित विभेद के अधीन रहते हुए 'व्यौहारी' की परिभाषा की परिधि के भीतर आएंगे : किसी व्यक्ति को 'व्यौहारी' होने के लिए वह, चाहे नियमित रूप से या अन्यथा क्रय, विक्रय आदि का कारबार करता हो, किंतु कोई सरकार जो क्रय, विक्रय आदि करती है (चाहे कारबार के अनुक्रम में या अन्यथा), उत्तर प्रदेश अधिनियम के प्रयोजनों के लिए एक 'व्यौहारी' होगी । क्योंकि 'विक्रय' की परिभाषा के अंतर्गत माल में की संपत्ति का कोई अंतरण और किसी प्रयोजन के लिए किसी माल के उपयोग के अधिकार का अंतरण आते हैं, इसलिए दूरसंचार विभाग जो किसी माल के उपयोग के अधिकार का अंतरण करता है तो वह उत्तर प्रदेश अधिनियम की धारा 2 के खंड (ग) के उप-खंड (iv) के अर्थांतर्गत 'व्यौहारी' होगा ।"

38. **तमिलनाडु राज्य** बनाम **शक्ति इस्टेट्स**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिश्चय करते हुए कि क्या निर्धारिती को एक व्यौहारी माना जा सकता है, तमिलनाडु साधारण विक्रय कर अधिनियम, 1959 (तमिलनाडु जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1959) के अधीन इस शब्द का व्यापक अर्थ लगाया । इस न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया :–

> "10. बहरहाल, हमें कानून में दी गई परिभाषाओं को, जिनसे हमारा सरोकार है, का पूर्णतः अर्थ लगाना है । 'कारबार' की परिभाषा के अंतर्गत 'किसी व्यापार से संबद्ध या प्रासंगिक या आनुषंगिक कोई संव्यवहार' भी आता है और इस प्रकार, यहां तक कि निर्धारिती की

---

[1] (2003) 3 एस. सी. सी. 239.

[2] (1989) 1 एस. सी. सी. 636.

अपनी दलीलों के आधार पर, ये कार्यकलाप उस कारबार के प्रासंगिक और आनुषंगिक थे, जो निर्धारिती चला रहा था या निश्चित तौर पर जिसे उसका चलाने का आशय था । इस परिभाषा के आधार पर यह बात भी अतात्विक है कि निर्धारिती का इन विक्रयों के आधार पर 'कोई लाभ या अभिलाभ कमाने का उद्देश्य नहीं था', यद्यपि तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि ऐसा उद्देश्य रहा होगा और किसी भी दशा में इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है । द्वितीय परिभाषा में किए गए आकस्मिक व्यौहारी के प्रति निर्देश से भी यह बात अतात्विक हो जाती है कि निर्धारिती का आशय लकड़ी के शहतीरों, काष्ठ, जलाने की लकड़ी या तारकोल का नियमित व्यौहार करने का न रहा हो, किंतु यह व्यौहार बागवानी चलाने के लिए जंगल के अर्जन और विदोहन करने के लिए आकस्मिक या आनुषंगिक कार्य था ।"

39. **तमिलनाडु राज्य** बनाम **एम. के. कंडास्वामी**[1] वाले मामले में न्यायालय ने मद्रास साधारण विक्रय कर अधिनियम, 1959 (मद्रास जनरल सेल्स टैक्स ऐक्ट, 1959) के अधीन 'व्यौहारी' शब्द के निर्वचन का अवधारण करते हुए इसके अंतर्गत ऐसे व्यक्ति को सम्मिलित करने के लिए एक विस्तृत निर्वचन किया जो न केवल माल के 'विक्रय, प्रदाय या वितरण' का कारबार करता है अपितु इसके अंतर्गत वह व्यक्ति भी आता है जो केवल 'क्रय करने' का कारबार करता है ।

40. **कार्यपालक इंजीनियर, केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग** बनाम **राजस्थान कराधान बोर्ड**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि एक ठेकेदार मालिक नहीं है अपितु माल का अभिरक्षक मात्र है, इसके बावजूद वह राजस्थान विक्रय कर अधिनियम, 1994 के अधीन एक व्यौहारी है ।

41. **उड़ीसा राज्य** बनाम **टीटागढ़ पेपर मिल्स कंपनी लि.**[3] वाले मामले में यह अभिनिश्चित करते हुए कि क्या केन्द्रीय सरकार और इसके अभिकर्ताओं को 'व्यौहारी' के रूप में माना जा सकता है, इस न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया :–

---

[1] (1975) 4 एस. सी. सी. 745.

[2] (2004) 7 एस. सी. सी. 195.

[3] [1985] 3 उम. नि. प. 139 = (1985) सप्ली. एस. सी. सी. 280.

"26. 'व्यौहारी' की नई परिभाषा के बारे में विशेष रूप से ध्यान देने योग्य बात यह है कि केन्द्रीय सरकार, किसी राज्य सरकार अथवा ऐसी सरकार की ओर से अपनी पदीय हैसियत में कार्य करने वाले उसके किसी कर्मचारी के मामले में माल का क्रय, विक्रय, पूर्ति अथवा वितरण कारबार के अनुक्रम होना आवश्यक नहीं है जबकि अन्य सभी मामलों में किसी व्यक्ति को व्यौहारी बनने के लिए माल के क्रय, विक्रय पूर्ति अथवा वितरण का कारबार करना अनिवार्य है ।"

42. **भारतीय खाद्य निगम** बनाम **केरल राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय को यह अभिनिश्चित करना था कि क्या भारतीय खाद्य निगम द्वारा किया गया अनाज का उपापन उद्ग्रहण आदेशों के अनुसरण में विक्रय/क्रय कर का दायित्व उपगत करने के लिए विक्रय या क्रय की कोटि में आएगा, जैसा कि राज्यों द्वारा उद्गृहीत किया गया है । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि खादों के विक्रय या क्रय के मामले में कोई कानूनी बाध्यता नहीं थी और पक्षकारों को मूल्य नियतिकरण, कोटा की आवश्यकता आदि जैसे न्यूनतम निबंधनों के अधीन रहते हुए सहमतिजन्य संविदात्मक करार करने का विवेकाधिकार था, इसलिए यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि खादों के वितरण का कार्यकलाप उद्ग्रहण आदेशों के अनुसरण में विक्रय की कोटि में आएगा जो कि कर दायित्व उपगत करने के लिए दायी है । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि विक्रय माने जाने के लिए माल का प्रदाय या वितरण कारबार के अनुक्रम में होना आवश्यक नहीं है ।

43. इस प्रकार, इस न्यायालय के उपर्युक्त विनिश्चयों का परिशीलन करने पर हमारा यह मत है कि विभिन्न विक्रय कर विधानों के अधीन 'व्यौहारी' की परिभाषा का व्यापक और समावेशित निर्वचन किया गया है । यह कहना उपयोगी होगा कि ऐसा व्यापक और विस्तारी निर्वचन विधान मंडल के उस आशय के अनुरूप है जो उसका माल विक्रय के सभी संव्यवहारों पर विक्रय कर का दायित्व अधिरोपित करने का था । इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अधिनियम, 1963 के अधीन 'व्यौहारी' की परिभाषा के अंतर्गत वे व्यक्ति भी आएंगे, यदि वे मशीनरी के

---

[1] (1997) 3 एस. सी. सी. 410.

विक्रय जैसा कोई कारबार या व्यापारिक कार्यकलाप करते हैं, जैसा कि वर्तमान मामले में है । इसलिए एक आवश्यक तर्क के रूप में, समापनाधीन कंपनी, जिसकी आस्तियों को नीलामी द्वारा बेचा जाता है, अधिनियम, 1963 के अधीन एक 'व्यौहारी' होगी ।

44. अधिनियम, 1963 की धारा 5 विक्रय कर के अधिरोपण के संबंध में प्रभारी उपबंध है । यह धारा किसी व्यौहारी द्वारा माल का विक्रय या क्रय करने पर कर के उद्ग्रहण को परिकल्पित करती है । अधिनियम, 1963 की धारा 5(1) ऐसे प्रत्येक व्यौहारी पर दायित्व अधिरोपित करती है जिसका एक वर्ष का कुल आवर्त 2,00,000/- रुपए से अन्यून है । धारा 5(1)(i) में अधिनियम, 1963 की प्रथम या द्वितीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट माल की दशा में ऐसी दर पर और केवल उन स्थलों पर कर दायित्व को प्रगणित किया गया है जो उक्त अनुसूची में दिए गए ऐसे माल के सामने विनिर्दिष्ट हैं । प्रथम अनुसूची के क्रम संख्यांक 84(i) पर, अन्य के साथ-साथ, मशीनरी के विक्रय पर संदेय कर की दर अनुध्यात की गई है । इस बाबत विक्रय कर के उद्ग्रहण का स्थल राज्य में किसी व्यौहारी द्वारा किए गए प्रथम विक्रय के स्थल पर है, जो अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अधीन कर के लिए दायी है ।

45. इस प्रकार अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अनुसरण में, प्रथम और द्वितीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट माल के मामले में एकल स्थल कर केवल उन दरों और स्थलों पर उद्गृहीत किया जा सकता है जो उक्त अनुसूचियों में ऐसे माल के सामने विनिर्दिष्ट हैं । प्रथम अनुसूची में यह विनिर्दिष्ट किया गया है कि प्रश्नगत माल के लिए कर के उद्ग्रहण का स्थल राज्य में किसी व्यौहारी द्वारा किए गए केवल प्रथम विक्रय का स्थल हो सकता है । प्रस्तुत मामले में, अधिनियम, 1963 के अधीन व्यौहारी विक्रय की गई मशीनरी के लिए विक्रय कर का संदाय करने का दायी अधिनियम, 1963 की प्रथम अनुसूची के साथ पठित धारा 5 के अनुसार प्रथम विक्रय के स्थल पर होगा । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हमारी यह सुविचारित राय है कि वर्तमान अपील में का प्रश्नगत संव्यवहार अधिनियम, 1963 की धारा 5(1) के अधीन कर के लिए दायी होगा ।

46. अधिनियम, 1963 की धारा 5क में ऐसी कतिपय स्थितियां परिकल्पित हैं जिनमें किसी ऐसे व्यौहारी पर क्रय कर अधिरोपित किया जा

सकता है जो कोई माल या तो ऐसे किसी रजिस्ट्रीकृत व्यौहारी से या किसी अन्य व्यक्ति से क्रय करता है जिसका विक्रय या क्रय अधिनियम, 1963 के अधीन कर के लिए दायी है । तथापि, पूर्वोक्त उपबंध केवल उन परिस्थितियों में लागू होगा जब धारा 5 की उपधारा (1), (3), (4) और (5) के अधीन कोई कर संदेय नहीं है । तथापि, जैसा कि इसमें ऊपर अवेक्षा की गई है, ऐसा संव्यवहार अधिनियम, 1963 की धारा 5(1) के अधीन कर के लिए दायी है और इसलिए अधिनियम, 1963 की धारा 5क उक्त संव्यवहार को लागू नहीं होगी ।

47. इस बात पर विचार करने से पूर्व कि क्या शासकीय समापक को अधिनियम, 1963 के अधीन एक 'व्यौहारी' के रूप में समझा जा सकता है, शासकीय समापक की अधिनियम, 1956 के अधीन यथा उपबंधित शक्तियों पर विचार करना उचित होगा । सामान्य शब्दों में, शासकीय समापक किसी कंपनी के परिसमापन की कार्यवाहियों के संचालन और न्यायालय की सहायता के लिए नियुक्त एक अधिकारी होता है ।

48. ए. रमैया, गाइड टू दि कंपनीज़ ऐक्ट, 16वां संस्करण (2004) में अधिनियम, 1956 की धारा 457 के अधीन शासकीय समापक की शक्तियों का निर्वचन करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया है :–

> "समापक कंपनी के परिसमापन के प्रयोजन के लिए नियोजित एक अभिकर्ता है । उसके मुख्य कर्तव्य हैं – आस्तियों का कब्जा लेना, अभिदायियों और लेनदारों की अपेक्षित सूची बनाना, विवादित मामलों का न्यायनिर्णयन करना, कतिपय मामलों में न्यायालय के नियंत्रण के अधीन रहते हुए आस्तियों का आपन करना और प्रशासन के सम्यक् अनुक्रम में आगमों का कंपनी के ऋणों और दायित्वों के संदायों पर उपयोजन करना और यह करने के पश्चात् अधिशेष को अभिदायियों में विभाजित करना और उनके अधिकारों का समायोजन करना ।"

49. अधिनियम, 1956 की धारा 457(3) में अभिव्यक्त रूप से यह उपबंधित है कि समापक की शक्तियां न्यायालय के नियंत्रण के अधीन रहते हुए हैं । समापक को प्रदत्त शक्तियां उसके द्वारा अकेले ही प्रयुक्त की जा सकती हैं और वह उन शक्तियों का प्रयोग करने के लिए किसी अन्य

व्यक्ति को प्राधिकृत नहीं कर सकता है । 'न्यायालय द्वारा नियंत्रण' अभिव्यक्ति पर इस न्यायालय द्वारा **नवलखा एंड संस** बनाम **रामानुज दास**[1] वाले मामले में चर्चा की गई थी, जिसमें यह मत व्यक्त किया गया था कि जब समापक किन्हीं शक्तियों का प्रयोग करता है या प्रयोग करना प्रस्थापित करता है, तो कोई लेनदार या अभिदायी शक्ति के ऐसे प्रयोग की बाबत न्यायालय में आवेदन कर सकता है । न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह कंपनी और उसके लेनदारों के हितों की रक्षा करे और वसूल किए गए मूल्य की पर्याप्तता के बारे में अपना समाधान करे । नियम, 1959 के नियम 232 पर भी विचार करना उचित होगा, जिसमें कंपनी की आस्तियों को एकत्रित करने और उनके उपयोजन में शासकीय समापक के कर्तव्य को प्रगणित किया गया है, जिसका उसके द्वारा न्यायालय के एक अधिकारी के रूप में निर्वहन किया जाता है ।

50. **हरी प्रसाद जयंतीलाल एंड कं.** बनाम **वी. एस. गुप्ता, आयकर अधिकारी, अहमदाबाद और एक अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि समापक अधिनियम, 1956 द्वारा विहित प्रयोजनों के लिए कंपनी की संपत्ति का प्रबंध करने के लिए इसका मात्र एक अभिकर्ता है । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि आस्तियों, जिसके अंतर्गत संचित लाभ भी है, का वितरण करते समय समापक कंपनी की ओर से मात्र एक अभिकर्ता या प्रशासक के रूप में कार्य करता है । न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया :–

> "7. ....कंपनी की संपत्ति समापक में निहित नहीं होती है, यह कंपनी में निहित बनी रहती है । समापक की नियुक्ति के पश्चात् निदेशक बोर्ड तथा प्रबंधन या पूर्णकालिक निदेशकों, प्रबंध अभिकर्ताओं, सचिवों और कोषपालों की सभी शक्तियां समाप्त हो जाती हैं (धारा 491) और समापक धारा 512 में उल्लिखित शक्तियों का प्रयोग कर सकेगा जिसमें ऐसे काम करने की शक्ति भी सम्मिलित है जो कंपनी के कार्यकलापों के परिसमापन और इसकी आस्तियों के वितरण के लिए आवश्यक हो । सदस्यों के परिसमापन में नियुक्त किया गया समापक कानून द्वारा विहित प्रयोजन के लिए

---

[1] (1969) 3 एस. सी. सी. 537.

[2] ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 1481.

कंपनी की संपत्ति का प्रबंध करने के लिए इसका मात्र एक अभिकर्ता है । संचित लाभ सहित आस्तियों का वितरण करने में समापक कंपनी की ओर से मात्र एक अभिकर्ता या प्रशासक के रूप में कार्य करता है ।"

51. **अजय जी. पोदार** बनाम **जे. एस. एंड डब्ल्यू. एम. और अन्य का शासकीय समापक**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने शासकीय समापक द्वारा फाइल की गई अपकरण कार्यवाहियों के लिए अधिनियम, 1956 के अधीन परिसीमा वर्जन से संबंधित प्रश्न पर विचार किया था । अधिनियम, 1956 की धारा 457(1) के अधीन शासकीय समापक की शक्तियों पर चर्चा करते हुए इस न्यायालय का यह मत था कि कंपनी न्यायालय द्वारा परिसमापन आदेश के अधीन आस्तियों के आपन के लिए कार्यवाही करने के लिए शासकीय समापक को प्राधिकृत किया जाना आवश्यक है और उक्त कार्यवाहियां परिसमापन की जाने वाली कंपनी के नाम में और कंपनी की ओर से आरंभ की जानी चाहिएं । इस न्यायालय ने यह भी राय व्यक्त की कि शासकीय समापक अपना प्राधिकार अधिनियम, 1956 के उपबंधों से प्राप्त करता है ।

52. परिसमापन कार्यवाहियों के दौरान जहां तक शासकीय समापक की शक्तियों का संबंध है, इंग्लैंड के न्यायालयों के दृष्टिकोणों की अवेक्षा करना उपयोगी होगा । **री मेस्को प्रोपर्टीज़**[2] वाले मामले में अपील न्यायालय को यह अभिनिश्चित करना था कि क्या किसी कंपनी पर परिसमापन आदेश पारित होने के पश्चात् अपनी आस्तियों के आपन के परिणामस्वरूप कर दायित्व उपगत हो सकता है और क्या शासकीय समापक इस दायित्व को उपगत करने के लिए उचित अधिकारी है । न्यायालय ने **री मेस्को प्रोपर्टीज़** (उपरोक्त) वाले मामले में पृष्ठ 120 पर निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

"………मेरे मत में, समापक को इस प्रश्न पर मार्गदर्शन के लिए न्यायालय को आवेदन करने लिए स्वतंत्र होना चाहिए कि यदि वह समापनाधीन कंपनी के कतिपय दायित्वों का निर्वहन करता है, तो

---

[1] (2008) 14 एस. सी. सी. 17.

[2] (1980) 1 आल ई. आर. 117.

क्या संदाय नियम 195 के अर्थांतर्गत एक आवश्यक संवितरण होगा । इस मामले में समापक यही कर रहा है । कंपनी उस कर के लिए दायी है जो देय है । कर का संदाय किया जाना चाहिए । समापक इस कर का संदाय करने के लिए उचित अधिकारी है । जब वह इसका संदाय करता है, तो स्पष्ट तौर पर संवितरण करेगा । मेरी राय के अनुसार, यह नियम के अर्थांतर्गत एक आवश्यक संवितरण होगा । इसके अतिरिक्त, मुझे सामान्य प्रज्ञा और न्याय की यह अपेक्षा प्रतीत होती है कि अप्रतिभूत लेनदारों को पूर्विकता के आधार पर इससे पूर्णतः और नियम 195 के अधीन जो पूर्विकता में कमतर कोई व्यय हैं, उन्मोचित किए जाने चाहिएं । कर समापनाधीन कंपनी के अनुक्रम में आस्तियों के आपन का परिणाम है । यह आपन परिसमापन के लिए, अर्थात् दिवालिया सम्पदा के प्रशासन में की गई एक आवश्यक कार्यवाही थी । यह वास्तविकता है कि अप्रतिभूत लेनदारों के लिए कुछ भी उपलब्ध न होने की स्थिति में, मेरे मत में, इसका यह अर्थ नहीं है कि आपन ऐसी कार्यवाही नहीं थी जो उन सभी के हित में की गई हो, जिन्होंने कंपनी के विरुद्ध दावा किया है । उन दावों को उपलब्ध आस्तियों से आवश्यक रूप से पूर्विकता के सम्यक् क्रम में पूरा किया जाना आवश्यक है । बड़े दावे छोटे दावों के रास्ते में रुकावट हो सकते हैं, किंतु समापक का सभी के फायदे के लिए उनके अधिकारों के अनुसार आस्तियों का आपन करने का कर्तव्य है । यदि आपन के परिणामस्वरूप, कंपनी पर कोई दायित्व उपगत होता है, तो मेरी राय के अनुसार, ऐसे दायित्व का उन्मोचन कंपनी अधिनियम, 1948 की धारा 267 के भीतर परिसमापन पर प्रभार या व्यय के रूप में उपगत होगा और मेरे मत में, यह नियम 195 के अंतर्गत आना चाहिए ।"

53. इसके अतिरिक्त, **आयेरस्ट (इंस्पेक्टर आफ टैक्सिज़)** बनाम **सी. एंड के. (कंस्ट्रक्शन) लिमिटेड**[1] वाले मामले में हाऊस आफ लार्ड्स ने यह अभिनिर्धारित किया कि परिसमापन आदेश के अनुसरण में कंपनी की अपनी आस्तियों की अभिरक्षा और उसका नियंत्रण समाप्त हो जाता है जो उसके पश्चात् अनन्य रूप से उन व्यक्तियों के फायदे के लिए प्रशासित

---

[1] (1975) 2 आल ई. आर. 537.

होती हैं जो आस्तियों के आपन के आगमों में हिस्सेदारी के हकदार हैं । हाऊस आफ लार्ड्स ने इस बाबत शासकीय समापक की भूमिका की विस्तारपूर्वक चर्चा की और पृष्ठ 177 पर निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

> "अतः, समापक के कार्य दिवाले की दशा में न्यासी (पूर्वतर में शासकीय समनुदेशिती) या किसी मृत व्यक्ति की सम्पदा के प्रशासन में निष्पादक के कार्यों के समान हैं । तथापि, यहां इसमें यह अंतर है : दिवालिए की संपत्ति में विधिक हक न्यासी में निहित होता है और मृत व्यक्ति की संपत्ति का विधिक हक निष्पादक में निहित होता है, जबकि परिसमापन आदेश से स्वतः ही कंपनी का अपनी किन्हीं आस्तियों से विधिक हक निर्निहित नहीं हो जाता है । यद्यपि यह बात अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से उपबंधित नहीं है, तो भी संपूर्ण भाग 5 में प्रयुक्त भाषा से यह बात स्पष्ट है, विशिष्ट रूप से धारा 243 से 246 में जो समापकों की शक्तियों के संबंध में हैं और संपत्ति जिसकी कंपनी हकदार है, संपत्ति जो कंपनी की है, आस्तियां जो कंपनी की हैं और उन कार्यों के प्रति निर्देश किया गया है जो कंपनी के नाम में और उसकी ओर से समापक द्वारा किए जाने हैं ।"

54. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि शासकीय समापक – (i) अपना प्राधिकार अधिनियम, 1956 के उपबंधों से प्राप्त करता है ; (ii) अधिनियम, 1956 द्वारा विहित प्रयोजनों के लिए समापनाधीन कंपनी की ओर से कार्य करता है ; (iii) न्यायालय द्वारा नियुक्त किया जाता है और अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते समय न्यायालय के नियंत्रण और पर्यवेक्षण के अधीन रहता है ।

55. अधिनियम, 1963 के अधीन शासकीय समापक की प्रास्थिति का अवधारण करने के पश्चात् अब इस न्यायालय के लिए शासकीय समापक पर कराधान के प्रयोजनों के लिए अधिरोपित दायित्व, यदि कोई है, की प्रकृति पर विचार करना उचित होगा । इस प्रयोजन हेतु, हमारे लिए नियम, 1963 के नियम 54 पर विचार करना आवश्यक है जिसमें, अन्य बातों के साथ-साथ, न्यायालय के आदेश द्वारा नियुक्त किए गए रिसीवर या प्रबंधक या अन्य व्यक्ति पर उस स्थिति में दायित्व अधिरोपित किया गया है जब किसी व्यौहारी के स्वामित्वाधीन का कोई कारबार उक्त रिसीवर, प्रबंधक या

व्यक्ति, चाहे उसका पदनाम कुछ भी हो, के नियंत्रणाधीन है और जो वस्तुतः व्यौहारी की ओर से कारबार का प्रबंधन करता है । पूर्वोक्त नियम में अभिव्यक्त रूप से यह उपबंधित है कि ऐसे रिसीवर, प्रबंधक आदि पर कर उसी रीति में उद्‌गृहीत और वसूलनीय होगा जिस रीति में यह व्यौहारी पर उद्‌ग्रहणीय या उससे वसूलनीय होता । यह कर दायित्व व्यौहारी की ओर से कारबार का प्रबंधन या संचालन करने वाले किसी व्यक्ति द्वारा उपगत किया जा सकता है । ऐसे व्यक्ति द्वारा उपगत कर दायित्व उस दायित्व के समतुल्य होगा जो व्यौहारी पर उद्‌गृहीत होता यदि वह ऐसे कारबार का संचालन कर रहा होता । इसके अतिरिक्त, नियम, 1959 के नियम 233 के अधीन समापनाधीन कंपनी की संपत्ति का कब्जा अर्जित और प्रतिधारित करने के प्रयोजनों के लिए शासकीय समापक की वही स्थिति होगी जैसी रिसीवर की होती है ।

56. चूंकि शासकीय समापक किसी कंपनी के परिसमापन के प्रयोजन के लिए नियोजित एक अभिकर्ता के समान होता है, इसलिए शासकीय समापक के कानूनी कृत्यों के निर्वहन के प्रयोजनों के लिए वह उक्त कंपनी के निदेशकों के रूप में कार्य करता है । इस प्रकार, उक्त कार्यवाहियों के दौरान निदेशकों द्वारा उस तारीख से कोई कृत्य करना बंद हो जाता है जिस तारीख से शासकीय समापक नियुक्त किया जाता है और उसके पश्चात् कंपनी के कारबार को चलाने के लिए सभी शक्तियां और कृत्य शासकीय समापक में निहित हो जाते हैं ।

57. विधि के स्थिर सिद्धांतों पर दृष्टिपात करने के पश्चात् हम वर्तमान अपीलों में के विवादों पर वापस आते हैं । मुकदमे के पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों द्वारा इस न्यायालय के समक्ष उठाया गया प्रथम विवाद्यक यह है कि क्या इस मामले में शासकीय समापक अधिनियम, 1963 के अधीन यथा परिभाषित 'व्यौहारी' की परिधि के अंतर्गत आएगा । और द्वितीयतः, क्या शासकीय समापक परिसमापन कार्यवाहियों के अनुसरण में उसके द्वारा किए गए विक्रय की बाबत विक्रय कर का संदाय करने के लिए दायी होगा ।

58. वर्तमान मामले में, शासकीय समापक ने कंपनी की आस्तियों के विक्रय के लिए निविदाएं आमंत्रित करते हुए एक सूचना की थी । नीलाम क्रेता की प्रस्थापना स्वीकार की गई और उच्च न्यायालय द्वारा इसकी

सम्यक्तः पुष्टि की गई । तथापि, इस मामले में का विवाद इस अवधारण की बाबत उद्भूत हुआ कि कौन सा पक्षकार विक्रय कर का संदाय करने के लिए दायी होगा ।

59. पूर्ववर्ती पैराओं में की गई चर्चा से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि शासकीय समापक न्यायालय का एक अधिकारी होता है और अधिनियम, 1956 के अधीन अधिरोपित कानूनी बाध्यताओं का निर्वहन करने के प्रयोजन के लिए शासकीय समापक समापनाधीन कंपनी के साधन के रूप में कार्य करता है । शासकीय समापक द्वारा तारीख 26 नवम्बर, 2001 को निविदाएं आमंत्रित करते हुए जारी की गईं सूचना के आधार पर यह पूर्णतः स्पष्ट है कि समापक का आशय परिसमापन में के उक्त माल का अंतरण करने का था । चूंकि नीलाम विक्रय करने में माल का अंतरण अंतर्वलित था, इसलिए यह अधिनियम, 1963 की धारा 2(viii)(च) की व्यापक व्याप्ति के अंतर्गत आता है ।

60. **री मेस्को प्रोपर्टीज़** (उपरोक्त) वाले मामले में अपील न्यायालय की मताभिव्यक्ति वर्तमान तथ्यात्मक स्थिति होने पर पूर्णतः लागू प्रतीत होती है, अर्थात् परिसमापन कार्यवाहियों के दौरान यदि समापनाधीन कंपनी से कर संगृहीत किया जाना अपेक्षित है, तो समापक इसका संदाय करने के लिए उचित अधिकारी होगा ।

61. इस न्यायालय ने इसमें ऊपर यह उल्लेख किया है कि समापनाधीन कंपनी परिसमापन आदेश के अधीन नीलामी के माध्यम से अपनी आस्तियों का विक्रय करने के संबंध में एक "व्यौहारी" है । इसके अतिरिक्त, हमने इस स्थिर विधि का उल्लेख किया है कि शासकीय समापक समापनाधीन कंपनी के निदेशक का स्थान लेता है और न्यायालय के निदेशानुसार अपने कानूनी कृत्यों को पूर्ण करता है । इसके अतिरिक्त, नियम, 1963 के नियम 54 में उस स्थिति को परिकल्पित किया गया है जहां किसी व्यौहारी के स्वामित्वाधीन कोई कारबार किसी रिसीवर या प्रबंधक या किसी अन्य व्यक्ति के नियंत्रणाधीन है, चाहे उसका पदनाम कुछ भी हो, जो उक्त व्यौहारी की ओर से कारबार का प्रबंधन करता है । उक्त परिवेश में, व्यौहारी की ओर से कारबार का भारसाधक, उक्त व्यक्ति विक्रय कर के संदाय के लिए उसी रीति में दायी होगा जैसे कि स्वयं व्यौहारी पर उद्गृहीत और उससे वसूलनीय होता । इसलिए यह निष्कर्ष

निकाला जा सकता है कि वर्तमान मामले में विक्रय कर का संदाय करने का दायित्व शासकीय समापक पर उसी रीति में होगा जैसे कि व्यौहारी अर्थात् समापनाधीन कंपनी पर होता ।

62. अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अनुसरण में, समापनाधीन कंपनी पर एक व्यौहारी के रूप में प्रथम विक्रय के स्थल पर विक्रय कर का संदाय करने का दायित्व वैसे ही उपगत होगा जैसे कि उक्त अधिनियम के अधीन किसी अन्य व्यौहारी पर उपगत होता । नियम, 1963 के नियम 54 का अवलंब लेकर विक्रय कर का संदाय करने का दायित्व समापनाधीन कंपनी की संपत्ति के प्रबंधक या रिसीवर के रूप में शासकीय समापक द्वारा वहन किया जाएगा । इसलिए हमारी यह सुविचारित राय है कि शासकीय समापक से यह अपेक्षित है कि वह समापनाधीन कंपनी की आस्तियों के विक्रय पर संदेय कर का संदाय करे ।

63. जहां तक नीलाम क्रेता के दायित्व का संबंध है, इस न्यायालय ने 2003 की सिविल अपील सं. 5048 में पारित आदेश में यह मत व्यक्त किया है कि इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए नीलाम क्रेता विक्रय कर का संदाय करने के लिए दायी नहीं होगा । नीलाम क्रेता की प्रस्थापना, जिसे शासकीय समापक द्वारा स्वीकार किया गया है और उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है, सभी करों सहित थी । शासकीय समापक का यह आबद्ध कर्तव्य होगा कि वह किसी दायित्व का निराकरण करने के लिए अधिनियम, 1963 के अधीन करों के संदाय के लिए रकम अलग रखे । पुनरावृत्ति करते हुए यह कहना श्रेयस्कर होगा कि राजस्व विभाग की ओर से विशेष सरकारी प्लीडर (कर) ने उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष स्पष्ट तौर पर यह कहा था कि विक्रय कर का संदाय करने का दायित्व शासकीय समापक पर है ।

64. परिणामतः, हम इन अपीलों को मंजूर करते हैं और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णयों और आदेशों को अपास्त करते हैं ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

जस.

[2015] 1 उम. नि. प. 294

राजिन्द्र कुमार

बनाम

हरियाणा राज्य

14 जनवरी, 2015

न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय और न्यायमूर्ति एन. वी. रमन

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 304ख [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 3] – दहेज मृत्यु – नातेदार साक्षी का साक्ष्य – मृतका-महिला के परिवार के सदस्यों के कथन को तब तक इस आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता कि वे नातेदार हैं या हितबद्ध साक्षी हैं जब तक कि उनके अभिसाक्ष्यों या प्रतिपरीक्षा में कोई विरोधाभास होने की बात दर्शित न की जाए ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 304ख [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 113ख] – दहेज मृत्यु – उपधारणा – अभियुक्त द्वारा दहेज की मांग के संबंध में मृतका को तंग किए जाने के बारे में साक्षियों के विनिर्दिष्ट कथन होने, अभिलेख पर के साक्ष्य से यह स्पष्ट होना कि मृतका के साथ क्रूरता उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व की गई थी और अभियोजन पक्ष द्वारा धारा 304ख के संघटकों को साबित करने में सफल रहने पर विचारण न्यायालय द्वारा विपदग्रस्त की दहेज मृत्यु कारित किए जाने की उपधारणा करते हुए अभियुक्त को ठीक ही दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया तथा उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखकर ठीक किया ।

शिकायतकर्ता की सबसे छोटी बहिन राज रानी (मृतका) का विवाह तारीख 10 मई, 1996 को हिन्दू रीति-रिवाज के अनुसार अभियुक्त राजिन्द्र कुमार के साथ हुआ था । शिकायतकर्ता ने विवाह के समय यथोचित दहेज दिया था । जब राज रानी दूसरी बार अपनी ससुराल गई, तो अभिकथित रूप से उसके पति, सास, ननदों तथा देवर ने कम दहेज लाने की बात को लेकर उस पर ताने मारने और उसे तंग करना आरंभ कर दिया । इस बात की जानकारी मिलने पर शिकायतकर्ता अपने भाइयों के साथ मृतका की ससुराल में आया और अभियुक्तों को समझाया कि राज रानी को तंग न किया करें । इस पर अभियुक्तों ने कहा कि वे इसी तरह बर्ताव करेंगे और

यदि वे राज रानी को ले जाना चाहते हैं तो वे तलाक ले लें । इसके पश्चात् भी उन्होंने राज रानी को उसी रीति में तंग करना जारी रखा । शिकायतकर्ता पुनः राज रानी की ससुराल गया और दशहरे के पर्व पर राज रानी को अपने घर ले आया । उस समय अभियुक्त राजिन्द्र और उसके परिवार के सदस्यों ने राज रानी से कहा कि जब वह वापस आए तो 20,000/- रुपए लेकर आए अन्यथा अच्छी बात नहीं होगी । तारीख 30 अक्तूबर, 1996 को राज रानी ससुराल वापस गई । तारीख 31 अक्तूबर, 1996 को शिकायतकर्ता को सूचना मिली कि तारीख 30/31 अक्तूबर, 1996 की मध्यवर्ती रात्रि में राज रानी की अभियुक्तों ने हत्या कर दी है । यह सूचना मिलने पर शिकायतकर्ता, उसका भाई और एक अन्य व्यक्ति मृतका की ससुराल गए और उन्हें चौबारे में एक खाट पर उसका का शव पड़े हुए देखा । शिकायतकर्ता के कथन के आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई । रसायन परीक्षक की रिपोर्ट प्राप्त होने के पश्चात् मृत्यु का कारण एल्यूमिनियम फास्फाइड खा लेने के कारण विषाक्तिकरण होना दर्शाया गया । अपीलार्थी के साथ-साथ उसकी माता और बहिनों को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 304ख के अधीन अपराधों के लिए आरोपित किया गया । विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 304ख के अधीन दोषसिद्ध किया और अन्य अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया । अपील करने पर उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा अपील भागतः मंजूर की और अपीलार्थी की भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन उसकी दोषसिद्धि और दंडादेश को अपास्त कर दिया । अभियुक्त-अपीलार्थी ने अपनी दोषसिद्ध और दंडादेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – सामान्य परिस्थितियों में, भारतीय समाज में दहेज की मांग करने या इसके लिए तंग किए जाने की घटना घर की चहारदीवारी के भीतर घटती है । यहां तक कि लड़की के माता-पिता या नातेदारों को भी तब तक इसकी जानकारी नहीं होती जब तक कि उन्हें या तो स्वयं लड़की द्वारा इस बात के बारे में नहीं बताया जाता या सीधे तौर पर उनसे दहेज की मांग नहीं की जाती है । पुलिस पदधारी या अन्य व्यक्ति किसी शिकायत या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन साक्षी के कथन के अभाव में दहेज की मांग के संबंध में तंग करने के बारे में कोई

अभिसाक्ष्य नहीं दे सकते हैं । कभी-कभी गांव के पड़ोसियों को इसकी जानकारी हो सकती है । इस पृष्ठभूमि में, मृतका-महिला के परिवार के सदस्यों के कथन को तब तक इस आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता कि वे नातेदार हैं या हितबद्ध साक्षी हैं जब तक कि उनके अभिसाक्ष्यों या प्रतिपरीक्षा में कोई विरोधाभास होने की बात दर्शित न की जाए । हरी चंद (अभि. सा. 13) ने शिकायतकर्ता (अभि. सा. 7) द्वारा किए गए कथन की संपुष्टि की है । उनके कथनों में कोई विसंगति नहीं पाई गई है । प्रतिरक्षा पक्ष उनकी प्रतिपरीक्षा के दौरान भी उनके कथनों को नासाबित करने के लिए कोई बात निकाल नहीं पाया । शिकायतकर्ता (अभि. सा. 7) और हरी चंद (अभि. सा. 13) के कथनों से इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि मृतका राज रानी को उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व दहेज की मांग के कारण तंग किया गया था । (पैरा 6 और 8)

भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 304ख दहेज मृत्यु के संबंध में है । उक्त धारा के प्रयोजन के लिए दहेज मृत्यु के बारे में उपधारणा इन अनिवार्य तत्वों के साबित होने पर की जा सकती है – (क) स्त्री की मृत्यु दाह या शारीरिक क्षति द्वारा कारित की गई है या सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हुई है, (ख) उक्त मृत्यु स्त्री के विवाह के सात वर्ष के भीतर हुई है, (ग) स्त्री के साथ उसके पति या पति के नातेदारों द्वारा क्रूरता की गई थी या उसे तंग किया गया था, (घ) ऐसी क्रूरता या तंग करना दहेज की किसी मांग के लिए या उसके संबंध में थे, और (ङ) उसके साथ ऐसी क्रूरता या उसे तंग उसकी मृत्यु से कुछ पूर्व किया गया था । वर्तमान मामले में राज रानी की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर हुई थी । यह बात विवादग्रस्त नहीं है कि उसकी मृत्यु सामान्य परिस्थितियों में नहीं हुई थी । अभियुक्त द्वारा दहेज की मांग के संबंध में मृतका राज रानी को तंग किए जाने के बारे में शिकायतकर्ता (अभि. सा. 7) और हरी चंद (अभि. सा. 13) के कथन विनिर्दिष्ट हैं । अभिलेख पर के साक्ष्य से यह भी स्पष्ट है कि मृतका के साथ ऐसी क्रूरता उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व की गई थी । अभिलेख पर के साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि अभियोजन पक्ष भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के संघटकों को साबित करने में सफल रहा है । विचारण न्यायालय ने ठीक ही यह उपधारणा की थी कि अभियुक्त ने विपदग्रस्त की दहेज मृत्यु कारित की है और उच्च न्यायालय ने ठीक ही दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखा है । (पैरा 10, 12 और 13)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[2004] (2004) 9 एस. सी. सी. 157 :
कालियापेरुमल बनाम **तमिलनाडु राज्य** ; 10

[2003] (2003) 8 एस. सी. सी. 80 :
हीरा लाल और अन्य बनाम **राज्य**
(राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार) । 11

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2011 की दांडिक अपील सं. 799.

2002 की दांडिक अपील सं. 238 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की एकल न्यायपीठ के तारीख 1 सितम्बर, 2010 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री डी. पी. सिंह, (सुश्री) सोनम गुप्ता, राजकिरण वत्स, वल्लारी भारद्वाज और संजय जैन

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री मंजीत सिंह, अपर महाधिवक्ता, (सुश्री) नुपूर चौधरी, विवेकता सिंह, अक्षय वशिष्ठ और कमल मोहन गुप्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय ने दिया ।

न्या. मुखोपाध्याय – यह अपील 2002 की दांडिक अपील सं. 238 में एक अन्य मामले के साथ पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 1 सितम्बर, 2010 को पारित किए गए निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील खारिज कर दी और विचारण न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन पारित दोषसिद्धि और दंडादेश के आदेश की अभिपुष्टि की ।

2. विचारण न्यायालय द्वारा यथा उल्लिखित अभियोजन का पक्षकथन निम्नलिखित है :

शिकायतकर्ता गणपत राय की सबसे छोटी बहिन राज रानी का विवाह तारीख 10 मई, 1996 को हिन्दू रीति-रिवाज के अनुसार अभियुक्त

राजिन्द्र कुमार के साथ हुआ था । शिकायतकर्ता ने विवाह के समय यथोचित दहेज दिया था और 2,25,000/- रुपए की राशि खर्च की थी । जब राज रानी दूसरी बार अपनी ससुराल गई, तो उसके पति राजिन्द्र, सास दर्शना देवी, ननद मूर्ति और चिरया तथा देवर बिंद्र ने उस पर ताने मारने और उसे तंग करना आरंभ कर दिया । इस बात की जानकारी मिलने पर शिकायतकर्ता गणपत राय अपने भाई घनश्याम और हरी चंद के साथ गांव धरसूल आया और अभियुक्तों को समझाया कि राज रानी को तंग न करें । इस पर अभियुक्तों ने कहा कि वे इसी तरह बर्ताव करेंगे और यदि वे राज रानी को ले जाना चाहते हैं तो वे तलाक ले लें । इसके पश्चात् भी उन्होंने राज रानी को उसी रीति में तंग करना जारी रखा । शिकायतकर्ता गणपत राय पुनः बालक राम के साथ राज रानी की ससुराल गया और तारीख 21 अक्तूबर, 1996 को दशहरे के पर्व पर राज रानी को अपने घर ले आया । उस समय अभियुक्त राजिन्द्र और उसके परिवार के सदस्यों ने राज रानी से कहा कि जब वह वापस आए तो 20,000/- रुपए लेकर आए अन्यथा अच्छी बात नहीं होगी । राजिन्द्र का चाचा चनन राम और बिंद्र तारीख 28 अक्तूबर, 1996 को करवा चौथ के पर्व पर प्रथागत उपहारों सहित गांव छोटा ननहेड़ा शिकायतकर्ता के घर आए । वे वहां दो दिन ठहरे । तारीख 30 अक्तूबर, 1996 को अर्थात् घटना से एक दिन पूर्व राज रानी को धरसूल में उसकी ससुराल वापस लाया गया । शिकायतकर्ता का भाई हरी चंद और गुरमेल सिंह भी उसके साथ आए । राज रानी ने हरी चंद को बताया कि उसके पति और सास-ससुर ने 20,000/- रुपए की मांग की थी और चूंकि ये रुपए नहीं दिए गए हैं इसलिए वे (अभियुक्त) हरी चंद और गुरमेल सिंह के यहां से जाते ही उसकी हत्या कर देंगे । इस बात पर हरी चंद ने उसे आश्वस्त किया कि वे 2/3 दिन के पश्चात् वापस आएंगे और धन का संदाय कर देंगे और गुरमेल सिंह के साथ वापस शिकायतकर्ता के गांव लौट जाएंगे । तारीख 31 अक्तूबर, 1996 को पूर्वाह्न में लगभग 6.00 बजे गांव कुलान निवासी टेक चंद पुत्र कृष्ण शिकायतकर्ता के घर आया और बताया कि तारीख 30/31 अक्तूबर, 1996 की मध्यवर्ती रात्रि में राज रानी की कम दहेज लाने के कारण राजिन्द्र, बिंद्र, राज रानी की सास दर्शना और ननद मूर्ति तथा चिरया ने हत्या कर दी है । यह सूचना मिलने पर शिकायतकर्ता, उसका भाई हरी चंद और सुखपाल बंसल गांव धरसूल कलां गए और चौबारे में एक खाट पर राज रानी का शव पड़े हुए देखा ।

गणपत राय के कथन के आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (प्रदर्श पीए/1) दर्ज की गई और चंद्र सिंह, उप निरीक्षक द्वारा अन्वेषण आरंभ किया गया ।

डा. पी. एल. वर्मा (अभि. सा. 6) ने मरणोत्तर परीक्षा की । रसायन परीक्षक की रिपोर्ट प्राप्त होने के पश्चात् मृत्यु का कारण एल्यूमिनियम फास्फाइड खा लेने के कारण विषाक्तिकरण होना दर्शाया गया ।

अपीलार्थी के साथ-साथ उसकी माता और बहिनों को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 304ख के अधीन अपराधों के लिए आरोपित किया गया, जिनके लिए उन्होंने दोषी होने से इनकार किया और विचारण का दावा किया । अभियोजन पक्ष ने शिकायतकर्ता गणपत राय (अभि. सा. 7) और हरी चंद (अभि. सा. 13) सहित 14 साक्षी पेश किए । अन्य साक्षी ईश्वर सिंह-सहायक उप निरीक्षक (अभि. सा. 1), महीपाल-कांस्टेबल (अभि. सा. 2), गिरीश कुमार-प्रारूपकार (अभि. सा. 3), वज़ीर सिंह-उप निरीक्षक (अभि. सा. 4), जय प्रकाश-कांस्टेबल (अभि. सा. 5), डा. पी. एल. वर्मा-चिकित्सा अधिकारी (अभि. सा. 6), कांस्टेबल अभि. सा. 8, 9 और 11, राजेन्द्र कुमार-फोटोग्राफर (अभि. सा. 10), जय चंद शास्त्री जिसने अभियुक्त-अपीलार्थी (अभि. सा. 12) के साथ मृतका के विवाह की रस्में पूरी की थीं और चंद्र सिंह-उप निरीक्षक (अभि. सा. 14) हैं । प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से तीन साक्षियों अर्थात् डा. जसबीर सिंह (प्रति. सा. 1), संतोष-(प्रति. सा. 2) और छज्जू राम-(प्रति. सा. 3) को पेश किया गया ।

विचारण न्यायालय ने अपने तारीख 22 जनवरी, 2002 के निर्णय द्वारा अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 304ख के अधीन दोषसिद्ध किया और अन्य अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया । अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन सात वर्ष का कठोर कारावास भोगने और धारा 498क के अधीन 5,000/- रुपए सहित दो वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया । अधिनिर्णीत दोनों दंडादेश साथ-साथ चलने का आदेश किया गया ।

3. अपील करने पर उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा अपील भागतः मंजूर की और अपीलार्थी की भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन उसकी दोषसिद्धि और दंडादेश को अपास्त कर दिया ।

4. अपीलार्थी की मुख्य दलील यह है कि मृतका राज रानी की मृत्यु एक नैसर्गिक मृत्यु है और अभिलेख पर के संपूर्ण साक्ष्य में एल्यूमिनियम फास्फाइड के विषाक्तिकरण से मृत्यु होने के वृत्तांत से इनकार किया गया है । अपने पक्षकथन का समर्थन करने के लिए यह उल्लेख किया गया कि डा. पी. एल. वर्मा (अभि. सा. 6), जिसने मरणोत्तर परीक्षा की थी, ने अपने

साक्ष्य में यह कथन किया है कि यदि न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट विष की मौजूदगी के संबंध में नकारात्मक थी तब बोर्ड को इसे एक नैसर्गिक मृत्यु का मामला होने का निष्कर्ष निकालना चाहिए था । यह दलील दी गई कि सामान्य परिस्थितियों में किसी शव में एल्यूमिनियम फास्फाइड जैसे विषैले पदार्थ के मौजूद होने की सदैव संभाव्यता रहती है और इसलिए इस बात पर कोई निश्चायक निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि मृतका राज रानी की मृत्यु एल्यूमिनियम फास्फाइड खा लेने के कारण विषाक्तिकरण के परिणामस्वरूप हुई थी ।

5. इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल के अनुसार, शिकायतकर्ता गणपत राय (अभि. सा. 7) और हरी चंद (अभि. सा. 13), जो मृतका के भाई हैं, का साक्ष्य अविश्वसनीय है क्योंकि वे हितबद्ध साक्षी हैं । गांव के सभी अन्य स्वतंत्र साक्षियों ने यह कथन करते हुए अपीलार्थी के पक्ष में अभिसाक्ष्य दिया है कि मृतका के साथ कभी भी क्रूरतापूर्वक व्यवहार नहीं किया गया था और न ही कोई दहेज की मांग की गई थी । अपीलार्थी और उसके परिवार की निर्दोषिता के बारे में कथन करते हुए एक आवेदन पत्र भी लिखा गया था और बीस से अधिक ग्रामवासियों द्वारा उस पर हस्ताक्षर किए गए थे ।

6. सामान्य परिस्थितियों में, भारतीय समाज में दहेज की मांग करने या इसके लिए तंग किए जाने की घटना घर की चहारदीवारी के भीतर घटती है । यहां तक कि लड़की के माता-पिता या नातेदारों को भी तब तक इसकी जानकारी नहीं होती जब तक कि उन्हें या तो स्वयं लड़की द्वारा इस बात के बारे में नहीं बताया जाता या सीधे तौर पर उनसे दहेज की मांग नहीं की जाती है । पुलिस पदधारी या अन्य व्यक्ति किसी शिकायत या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन साक्षी के कथन के अभाव में दहेज की मांग के संबंध में तंग करने के बारे में कोई अभिसाक्ष्य नहीं दे सकते हैं । कभी-कभी गांव के पड़ोसियों को इसकी जानकारी हो सकती है । इस पृष्ठभूमि में, मृतका-महिला के परिवार के सदस्यों के कथन को तब तक इस आधार पर त्यक्त नहीं किया जा सकता कि वे नातेदार हैं या हितबद्ध साक्षी हैं जब तक कि उनके अभिसाक्ष्यों या प्रतिपरीक्षा में कोई विरोधाभास होने की बात दर्शित न की जाए ।

7. मृतका-राज रानी के भाई शिकायतकर्ता-गणपत राय (अभि. सा. 7) ने यह कथन किया कि अभियुक्त मृतका को उसके विवाह के पश्चात् से ही तंग करते थे और कम संख्या में साड़ी और अपर्याप्त धन

लाने का ताना मारते थे । अभियुक्त ने मृतका से 20,000/- रुपए की भी मांग की थी । इस बात की जानकारी मिलने पर शिकायतकर्ता (अभि. सा. 7) और उसका भाई अपीलार्थी-अभियुक्त के घर गए थे और अपीलार्थी को समझाने की कोशिश की थी कि वह उनकी बहिन को तंग करना बंद करे । तथापि, अपीलार्थी और उसके परिवार के सदस्यों ने उनसे कहा कि वे अपनी बहिन को अपने साथ ले जाएं । तारीख 21 अक्तूबर, 1996 को शिकायतकर्ता (अभि. सा. 7) राज रानी को छोटा नन्हेड़ा में अपने घर ले आया । तारीख 28 अक्तूबर, 1996 को अपीलार्थी-राजिन्द्र के पिता का बड़ा भाई चनन राम राज रानी के लिए करवा चौथ के प्रथागत उपहार लेकर शिकायतकर्ता के घर आया और दो दिन वहां ठहरा । तारीख 30 अक्तूबर, 1996 को शिकायतकर्ता (अभि. सा. 7) का छोटा भाई हरी चंद (अभि. सा. 13) और गुरमेल सिंह राज रानी को उसकी ससुराल में छोड़ आए । जब हरी चंद (अभि. सा. 13) और गुरमेल सिंह घर से जाने लगे तब राज रानी ने उन्हें यह कहा कि चूंकि उन्होंने अभियुक्त को 20,000/- रुपए नहीं दिए हैं, इसलिए वह उसकी हत्या कर देगा । हरी चंद ने राज रानी से कहा कि वे दो या तीन दिन में रकम दे देंगे । तारीख 31 अक्तूबर, 1996 को शिकायतकर्ता (अभि. सा. 7) को यह सूचना मिली कि पूर्ववर्ती रात्रि में उसकी बहिन की मृत्यु हो गई है । जब शिकायतकर्ता (अभि. सा. 7) अपीलार्थी के घर गया तो उसे अपनी बहिन को चौबारे में मृत पड़े हुए पाया । मृतका के मुंह से झाग निकल रहे थे और वहां ईंट का एक टुकड़ा पड़ा हुआ था । पुलिस को शव के निकट कुछ टूटी हुई चूड़ियां पाईं थीं । हरी चंद और सुखपाल को शव के पास छोड़कर शिकायतकर्ता ने पुलिस को मामले की सूचना दी थी ।

8. हरी चंद (अभि. सा. 13) ने शिकायतकर्ता (अभि. सा. 7) द्वारा किए गए कथन की संपुष्टि की है । उनके कथनों में कोई विसंगति नहीं पाई गई है । प्रतिरक्षा पक्ष उनकी प्रतिपरीक्षा के दौरान भी उनके कथनों को नासाबित करने के लिए कोई बात निकाल नहीं पाया । शिकायतकर्ता (अभि. सा. 7) और हरी चंद (अभि. सा. 13) के कथनों से हमारा यह निष्कर्ष है कि मृतका राज रानी को उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व दहेज की मांग के कारण तंग किया गया था ।

9. डा. पी. एल. वर्मा (अभि. सा. 6) ने मृतका राज रानी के शव की मरणोत्तर परीक्षा की थी । उसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि मृतका की आंखें और मुंह आधे खुले हुए थे । रसायन परीक्षक की रिपोर्ट प्राप्त होने के

पश्चात् इस साक्षी ने यह कथन किया कि मृतका राज रानी की मृत्यु एल्यूमिनियम फास्फाइड खाने के कारण विषाक्तिकरण के परिणामस्वरूप हुई थी । डा. पी. एल. वर्मा (अभि. सा. 6) और रसायन परीक्षक, जो कि इस विषय में विशेषज्ञ हैं, ने यह कथन नहीं किया है कि मृत्यु सामान्य अनुक्रम में हुई थी या शव में एल्यूमिनियम फास्फाइड स्वतः ही जनित हो सकता है ।

10. भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख दहेज मृत्यु के संबंध में है । उक्त धारा के प्रयोजन के लिए दहेज मृत्यु के बारे में उपधारणा निम्नलिखित अनिवार्य तत्वों के साबित होने पर की जा सकती है :–

(क) स्त्री की मृत्यु दाह या शारीरिक क्षति द्वारा कारित की गई है या सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हुई है ।

(ख) उक्त मृत्यु स्त्री के विवाह के सात वर्ष के भीतर हुई है ।

(ग) स्त्री के साथ उसके पति या पति के नातेदारों द्वारा क्रूरता की गई थी या उसे तंग किया गया था ।

(घ) ऐसी क्रूरता या तंग करना दहेज की किसी मांग के लिए या उसके संबंध में थे, और

(ङ) उसके साथ ऐसी क्रूरता या उसे तंग उसकी मृत्यु से कुछ पूर्व किया गया था ।

इस सबंध में हम **कालियापेरुमल** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को निर्दिष्ट कर सकते हैं ।

11. **हीरा लाल और अन्य** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार)**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख और भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख का विश्लेषण किया और निम्नलिखित मताभिव्यक्ति कीं :–

"8. भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख, जो दहेज मृत्यु के संबंध में है, निम्नलिखित प्रकार से है –

'**धारा 304ख. दहेज मृत्यु** – (1) जहां किसी स्त्री की मृत्यु किसी दाह या शारीरिक क्षति द्वारा की जाती है या उसके

---

[1] (2004) 9 एस. सी. सी. 157.

[2] (2003) 8 एस. सी. सी. 80.

> विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है और यह दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके पति ने या उसके पति के किसी नातेदार ने, दहेज की किसी मांग के लिए, या उसके संबंध में, उसके साथ क्रूरता की थी या उसे तंग किया था वहां ऐसी मृत्यु को 'दहेज मृत्यु' कहा जाएगा और ऐसा पति या नातेदार उसकी मृत्यु कारित करने वाला कहा जाएगा ।
>
> स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए 'दहेज' का वही अर्थ है जो दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) की धारा 2 में है ।
>
> (2) जो कोई दहेज मृत्यु कारित करेगा वह कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष से कम की नहीं होगी किंतु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा ।'

यह उपबंध तब लागू होता है जब किसी स्त्री की मृत्यु किसी दाह या शारीरिक क्षति या उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा हो जाती है और यह दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके पति ने या उसके पति के किसी नातेदार ने, दहेज की किसी मांग के लिए, या उसके संबंध में, उसके साथ क्रूरता की थी या उसे तंग किया था । भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख को लागू करने के लिए अनिवार्य संघटक निम्नलिखित हैं –

> (i) किसी स्त्री की मृत्यु दाह या शारीरिक क्षति द्वारा या सामान्य परिस्थितियों से अन्यथा कारित होनी चाहिए ।
>
> (ii) उक्त मृत्यु स्त्री के विवाह के सात वर्ष के भीतर हुई हो ।
>
> (iii) स्त्री के साथ उसके पति या पति के नातेदारों द्वारा क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो ।
>
> (iv) ऐसी क्रूरता या तंग करना दहेज की किसी मांग के लिए या उसके संबंध में होना चाहिए ।
>
> (v) यह दर्शित किया जाना चाहिए कि स्त्री के साथ ऐसी क्रूरता या उसे तंग उसकी मृत्यु से कुछ पूर्व किया गया था ।

साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख भी प्रस्तुत मामले के लिए सुसंगत

है । जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख और साक्ष्य अधिनियम की धारा 113ख दोनों दहेज प्रतिषेध (संशोधन) अधिनियम, 1986 (1986 का 43) द्वारा दहेज मृत्यु के बढ़ते हुए संकट को रोकने के लिए अंतःस्थापित की गई थीं । धारा 113ख निम्नलिखित है –

> '**113-ख. दहेज मृत्यु के बारे में उपधारणा** – जब प्रश्न यह है कि किसी व्यक्ति ने किसी स्त्री की दहेज मृत्यु की है और यह दर्शित किया जाता है कि मृत्यु के कुछ पूर्व ऐसे व्यक्ति ने दहेज की किसी मांग के लिए, या उसके संबंध में उस स्त्री के साथ क्रूरता की थी या तंग किया था तो न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि ऐसे व्यक्ति ने दहेज मृत्यु कारित की थी ।
>
> **स्पष्टीकरण** – इस धारा के प्रयोजनों के लिए दहेज मृत्यु का वही अर्थ है जो भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धारा 304ख में है ।'

भारत के विधि आयोग द्वारा 'दहेज मृत्यु और विधि सुधार' पर तारीख 10 अगस्त, 1998 की अपनी 21वीं रिपोर्ट में दोनों उपबंधों को अंतःस्थापित करने की आवश्यकता पर विस्तार पूर्वक विश्लेषण किया गया है । दहेज-संबंधी मृत्यु को साबित करने का साक्ष्य प्राप्त करने में पूर्व-विद्यमान विधि में आने वाली रुकावट को ध्यान में रखते हुए विधान मंडल ने कतिपय अनिवार्य तत्वों के साबित होने पर दहेज मृत्यु की उपधारणा से संबंधित एक उपबंध अंतःस्थापित करना उचित समझा । इसी पृष्ठभूमि में, भारतीय साक्ष्य अधिनियम में उपधारणात्मक धारा 113ख अंतःस्थापित की गई । भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख में दी गई 'दहेज मृत्यु' की परिभाषा और साक्ष्य अधिनियम की उपधारणात्मक धारा 113ख की शब्दरचना के अनुसार, दोनों उपबंधों में अन्य अनिवार्य संघटकों के साथ-साथ एक अनिवार्य संघटक यह है कि संबंधित स्त्री के साथ 'दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में' 'उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व' क्रूरता की गई हो या उसे तंग किया गया हो । धारा 113ख के अधीन उपधारणा एक विधि की उपधारणा है । इस धारा में वर्णित अनिवार्य तत्वों का सबूत होने पर न्यायालय के लिए यह आबद्धकर हो जाता है कि वह यह उपधारणा करे कि अभियुक्त ने दहेज मृत्यु कारित की है । उपधारणा केवल निम्नलिखित अनिवार्य तत्वों का सबूत होने पर की जाएगी –

(1) न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न होना चाहिए कि क्या अभियुक्त ने स्त्री की दहेज मृत्यु कारित है या नहीं (इससे यह अभिप्रेत है कि उपधारणा केवल तब की जा सकती है यदि अभियुक्त का विचारण भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन अपराध के लिए किया जा रहा हो) ।

(2) स्त्री के साथ उसके पति या पति के नातेदारों द्वारा क्रूरता की गई थी या उसे तंग किया गया था ।

(3) ऐसी क्रूरता या तंग करना दहेज की किसी मांग के लिए या उसके संबंध में था ।

(4) ऐसी क्रूरता या तंग स्त्री की मृत्यु से कुछ पूर्व किया गया था ।"

12. वर्तमान मामले में राज रानी की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर हुई थी । यह बात विवादग्रस्त नहीं है कि उसकी मृत्यु सामान्य परिस्थितियों में नहीं हुई थी । अभियुक्त द्वारा दहेज की मांग के संबंध में मृतका राज रानी को तंग किए जाने के बारे में शिकायतकर्ता (अभि. सा. 7) और हरी चंद (अभि. सा. 13) के कथन विनिर्दिष्ट हैं । अभिलेख पर के साक्ष्य से यह भी स्पष्ट है कि मृतका के साथ ऐसी क्रूरता उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व की गई थी ।

13. जैसी की ऊपर चर्चा की गई है, अभिलेख पर के साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि अभियोजन पक्ष भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के संघटकों को साबित करने में सफल रहा है । विचारण न्यायालय ने ठीक ही यह उपधारणा की थी कि अभियुक्त ने विपदग्रस्त की दहेज मृत्यु कारित की है और उच्च न्यायालय ने ठीक ही दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखा है ।

14. हम इस अपील में कोई गुणागुण नहीं पाते हैं और इसे तद्नुसार खारिज किया जाता है । अपीलार्थी को दंडादेश की शेष अवधि भोगने के लिए तुरंत अभिरक्षा में लिए जाने का निदेश दिया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

जस.

[2015] 1 उम. नि. प. 306

मणिक तनेजा और एक अन्य

बनाम

कर्नाटक राज्य और एक अन्य

20 जनवरी, 2015

न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौड़ा और न्यायमूर्ति (श्रीमती) आर. बानुमति

दंड प्रक्रिया सहिता, **1973** (**1974** का **2**) – धारा **482** [सपठित भारतीय दंड संहिता, **1860** की धारा **353** और **503**] – उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति – पुलिस निरीक्षक द्वारा अपीलार्थियों के साथ किए गए बर्ताव के संबंध में उनके द्वारा यातायात पुलिस द्वारा फेसबुक पर सृजित पृष्ठ पर टीका-टिप्पणी किया जाना – पुलिस द्वारा दांडिक कार्यवाहियां आरंभ करने के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज किया जाना – अपीलार्थियों द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अभिखंडित किए जाने के लिए उच्च न्यायालय में दांडिक याचिका – उच्च न्यायालय द्वारा दांडिक याचिका खारिज किया जाना – किसी अभियोजन को आरंभिक प्रक्रम पर अभिखंडित किए जाने की ईप्सा किए जाने पर न्यायालय द्वारा लागू की जाने वाली कसौटी यह है कि क्या अविवादग्रस्त अभिकथनों के आधार पर प्रथमदृष्ट्या अपराध स्थापित होता है या नहीं और अभियोजन जारी रखा जाना समीचीन और न्याय के हित में है या नहीं और यदि न्यायालय की यह राय हो कि अंततोगत्वा दोषसिद्धि की गुंजाइश कम है और दांडिक अभियोजन जारी रखने से किसी उपयोगी प्रयोजन की पूर्ति होने की संभावना नहीं है, तो न्यायालय कार्यवाहियों को अभिखंडित कर सकता है, भले ही ऐसी कार्यवाहियां आरंभिक प्रक्रम पर ही हों ।

दंड संहिता, **1860** (**1860** का **45**) – धारा **353** और **503** [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, **1973** की धारा **482**] – पुलिस निरीक्षक द्वारा अपीलार्थियों के साथ किए गए बर्ताव के संबंध में उनके द्वारा यातायात पुलिस द्वारा फेसबुक पर सृजित पृष्ठ पर टीका-टिप्पणी किया जाना – पुलिस द्वारा दांडिक कार्यवाहियां आरंभ करने के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज किया जाना – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अभिखंडित किए जाने के लिए उच्च न्यायालय में दांडिक याचिका – उच्च न्यायालय द्वारा दांडिक याचिका खारिज किया जाना – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के

अविवादग्रस्त अभिकथनों पर विचार करने के पश्चात् अभिकथित अपराधों के संघटक पूरे नहीं होते हैं और अपीलार्थियों के विरुद्ध दांडिक कार्यवाहियां जारी रखना न्यायसंगत नहीं होगा, इसलिए उच्च न्यायालय का आदेश अपास्त किए जाने योग्य है ।

अपीलार्थी सं. 1 और उसकी पत्नी जब एक मारुति कार में जा रहे थे तो वे एक आटो रिक्शा के साथ दुर्घटनाग्रस्त हो गए । कार अपीलार्थी सं. 1 की पत्नी चला रही थी । एक यात्री को, जो आटो से यात्रा कर रही थी, क्षतियां पहुंचीं और उसे उपचार के लिए अस्पताल में भर्ती कराया गया । कथित रूप से क्षतिग्रस्त के उपचार पर आया अस्पताल का समस्त व्यय अपीलार्थी सं. 1 की पत्नी अर्थात् अपीलार्थी सं. 2 ने संदत्त किया था और क्षतिग्रस्त और अपीलार्थियों के बीच मामले में कथित रूप से सौहार्दपूर्ण रूप से समझौता हो गया था और कोई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई गई थी । एक कांस्टेबल, जो दुर्घटना के समय मौजूद था, ने अपीलार्थियों को श्री कासिम, पुलिस निरीक्षक, पुलाकेशी नगर यातायात पुलिस थाना, बंगलौर शहर से मिलने का निदेश दिया । अभिकथित रूप से, अपीलार्थियों ने जैसे ही श्री कासिम के कार्यालय में प्रवेश किया, उसने उनके साथ अभद्र रीति में बर्ताव किया । इसके अतिरिक्त, श्री कासिम ने अपीलार्थी सं. 2 को अपनी चलन अनुज्ञप्ति और अन्य दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए कहा । क्योंकि उस समय कोई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई गई थी, इसलिए अपीलार्थी सं. 2 ने पुलिस निरीक्षक से प्रश्न किया कि उसे इन दस्तावेजों को प्रस्तुत करने के लिए क्यों कहा जा रहा है । श्री कासिम ने इसके उत्तर में अपीलार्थी को, अभिकथित रूप से, यह कहते हुए धमकी दी कि यदि वह ऐसे ही बहस करती रही तो वह उसे न्यायालय में घसीटेगा और उसे उसके कार्यालय से भी बाहर फेंक दिया जाएगा । श्री कासिम के आदेश पर उसके उपपदीय ने अपीलार्थियों से कहा कि वे उन्हें उतावलेपन और लापरवाही से यान चलाने के आरोप में आरोपित कर रहे हैं । अपीलार्थियों ने उस रीति से व्यथित होकर जिसमें उनके साथ बर्ताव किया गया था, बंगलौर यातायात पुलिस के फेसबुक पृष्ठ पर श्री कासिम पर उनके बर्ताव को लेकर टीका-टिप्पणी की और प्रत्यर्थी पुलिस निरीक्षक द्वारा उनके साथ किए गए उत्पीड़न के बारे में एक ईमेल भी किया । प्रत्यर्थी सं. 2 पुलिस निरीक्षक ने अपीलार्थियों द्वारा फेसबुक पर टीका-टिप्पणी करने के संबंध में एक शिकायत फाइल की और उसके बाद अपीलार्थियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 353 और 506 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई । अपीलार्थियों ने प्रथम इत्तिला

रिपोर्ट और उनके विरुद्ध आरंभ की गई दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने की ईप्सा करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक याचिका इस आधार पर फाइल की कि शिकायत सोच-विचार के बाद फाइल की गई है । उच्च न्यायालय ने तारीख 24 अप्रैल, 2014 के अपने आदेश द्वारा यह मत व्यक्त करते हुए याचिका को खारिज कर दिया कि याचिका समयपूर्व फाइल की गई है । अपीलार्थियों ने विशेष इजाजत लेकर उपरोक्त आदेश की शुद्धता को उच्चतम न्यायालय में चुनौती देते हुए अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह विधिक स्थिति सुस्थिर है कि जब किसी अभियोजन को आरंभिक प्रक्रम पर अभिखंडित किए जाने के लिए कहा जाता है, तो न्यायालय द्वारा लागू की जाने वाली कसौटी यह है कि जो अविवादग्रस्त अभिकथन किए गए हैं, क्या उनसे प्रथमदृष्ट्या अपराध स्थापित होता है या नहीं । न्यायालय के लिए यह भी आवश्यक है कि ऐसी किन्हीं विशेष विशिष्टताओं, जो किसी विशिष्ट मामले में प्रतीत हों, को भी यह विचार करने के लिए ध्यान में रखे कि क्या अभियोजन को जारी रखा जाना अनुज्ञात करना समीचीन और न्याय के हित में है या नहीं । जहां, न्यायालय की राय में, अंततोगत्वा दोषसिद्धि की गुंजाइश कम है और दांडिक अभियोजन जारी रखना अनुज्ञात करके किसी उपयोगी प्रयोजन की पूर्ति होने की संभावना नहीं है, तो न्यायालय कार्यवाहियों को अभिखंडित कर सकता है भले ही ऐसी कार्यवाहियां आरंभिक प्रक्रम पर ही हों । (पैरा 9)

जहां तक भारतीय दंड संहिता की धारा 353 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने के विवाद्यक का संबंध है, यह देखना होगा कि क्या यातायात पुलिस के फेसबुक पृष्ठ पर कोई टीका-टिप्पणी करने से इस धारा के अधीन दोषसिद्धि कायम रखने योग्य हो सकती है या नहीं । उपरोक्त उपबंध के वाचन से यह दर्शित होता है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 353 के अधीन अपराध के आवश्यक संघटक ये हैं कि अपराध के अभियुक्त व्यक्ति ने लोक सेवक पर ऐसे लोक सेवक के नाते उसके कर्तव्य के निर्वहन से निवारित करने या भयोपरत करने के आशय से हमला या आपराधिक बल का प्रयोग किया हो । अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन करने पर यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थियों द्वारा ऐसा अपराध कारित करने के लिए किसी बल का प्रयोग नहीं किया गया था । अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कुछ भी नहीं है कि अपीलार्थियों ने प्रत्यर्थियों

पर या तो हमला किया हो या द्वितीय प्रत्यर्थी को अपने शासकीय कर्तव्य के निर्वहन से निवारित करने के लिए आपराधिक बल का प्रयोग किया हो । इस न्यायालय के मत में, अविवादग्रस्त अभिकथनों पर विचार करने के पश्चात् भारतीय दंड संहिता की धारा 353 के अधीन अपराध के संघटक नहीं बनते हैं । (पैरा 11 और 12)

आपराधिक अभित्रास की परिभाषा के वाचन से यह उपदर्शित होता है कि किसी अन्य व्यक्ति को धमकी देने का कृत्य उसके शरीर, ख्याति या संपत्ति को, या किसी ऐसे व्यक्ति के शरीर या ख्याति को, जिससे वह व्यक्ति, जिसे धमकी दी गई है, हितबद्ध हो, कोई क्षति कारित करने के लिए किया गया हो और वह धमकी उस व्यक्ति को संत्रास कारित करने के आशय से दी गई हो या ऐसी धमकी कोई ऐसा कृत्य करने के लिए दी गई हो, जो वह अन्य व्यक्ति वैध रूप से करने के लिए आबद्ध नहीं हो या किसी ऐसे कार्य को करने का लोप करने के लिए होना चाहिए जिसे करने के लिए वह वैध रूप से हकदार हो । प्रस्तुत मामले में, अभिकथन यह है कि अपीलार्थियों ने शिकायतकर्ता के साथ गाली-गलौच की और द्वितीय प्रत्यर्थी को उसके पदीय कर्तव्यों का निर्वहन करने में बाधा उत्पन्न की और उसकी सत्यनिष्ठा को दूषित किया । यह विनिश्चय करने के लिए कि अभियुक्त ने जो कुछ कहा, क्या वह 'आपराधिक अभित्रास' के अर्थांतर्गत आता है या नहीं, उसके लिए अभियुक्त के आशय पर विचार किया जाना चाहिए । धमकी शिकायतकर्ता को संत्रास करने के आशय से होनी चाहिए जिससे कि वह व्यक्ति कोई कार्य करे या करने का लोप करे । संत्रास करने के किसी आशय के बिना केवल किन्हीं शब्दों की अभिव्यक्ति इस धारा को लागू करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी, अपितु अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए सामग्री प्रस्तुत की जानी चाहिए कि शिकायतकर्ता को संत्रास कारित करने का आशय है । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थियों का द्वितीय प्रत्यर्थी के कर्तव्य के निर्वहन में बाधा उत्पन्न करके उसके मस्तिष्क में संत्रास कारित करने का कोई आशय नहीं था । जहां तक फेसबुक पर टीका-टिप्पणियां करने का संबंध है, यह प्रतीत होता है कि यह जनता की सहायता करने के लिए एक सार्वजनिक मंच है और फेसबुक पर कोई टीका-टिप्पणी करने के अपीलार्थियों के कार्य से भारतीय दंड संहिता की धारा 503 में उपबंधित आपराधिक अभित्रास के संघटक नहीं बन सकते हैं । निस्संदेह, न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए किसी आपराधिक मामले के अन्वेषण या विचारण में

हस्तक्षेप करने में अत्यधिक सचेत रहना चाहिए और अन्वेषण को तब के सिवाय अवरुद्ध नहीं करना चाहिए जब तक वह किसी प्रकार के संदेह के परे इस बात से विश्वस्त न हो कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट से अपराध का कारित होना प्रकट नहीं होता है और दांडिक अभियोजन का जारी रहना न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग की कोटि में आएगा । यातायात पुलिस द्वारा फेसबुक पर सृजित किया गया पृष्ठ जनता के लिए अपनी शिकायतें प्रकाशित करने हेतु एक मंच था । इस न्यायालय के सुविचारित मत में, अपीलार्थियों ने इस सद्‌भावी विश्वास के अधीन ऑनलाइन टीका-टिप्पणी की थी कि यह अनुज्ञेय सीमाओं के भीतर है । यहां तक कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में किए गए अविवादग्रस्त अभिकथनों पर विचार करने पर भी, इस न्यायालय के मत में, अभिकथित अपराधों के संघटकों में से किसी संघटक का समाधान नहीं होता है । इस न्यायालय का यह मत है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अपीलार्थियों के विरुद्ध न्यायालय की प्रक्रिया को जारी रखा जाना अनुज्ञात करना अनुचित होगा और परिणामस्वरूप उच्च न्यायालय का आदेश अपास्त किया जाना चाहिए । (पैरा 14, 15 और 16)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[1995]	(1995) 2 एस. सी. सी. 449 : **तमिलनाडु राज्य** बनाम **थिरुकुरल पेरुमल** ।	10

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2015 की दांडिक अपील सं. 141.

2014 की दांडिक याचिका सं. 252 में बंगलौर स्थित कर्नाटक उच्च न्यायालय के तारीख 24 अप्रैल, 2014 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से — सर्वश्री भारद्वाज एस. आयंगर और विकास उपाध्याय

प्रत्यर्थियों की ओर से — सर्वश्री जोसफ अरिस्टोटल, ज्येष्ठ अधिवक्ता और उनके साथ (सुश्री) प्रिया अरिस्टोटल और एम. बी. एलाकुमारन्

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (श्रीमती) आर. बानुमति ने दिया ।

न्या. (श्रीमती) बानुमति – इजाजत दी गई ।

2. विशेष इजाजत लेकर फाइल की गई यह अपील 2014 की दांडिक याचिका सं. 252 में कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 24 अप्रैल, 2014 को पारित किए गए उस निर्णय से उद्भूत हुई है, जिसमें और जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने याचिका को खारिज करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि याचिका समयपूर्व है और यहां तक कि यह अन्वेषण पूर्ण होने से पहले फाइल की गई है ।

3. संक्षिप्त तथ्य, जिनके आधार पर यह अपील फाइल की गई, निम्नलिखित हैं :–

अपीलार्थी सं. 1 और उसकी पत्नी साक्षी जावा तारीख 13 जून, 2013 को सबेरे लगभग 10.30 बजे एक आटो रिक्शा के साथ उस समय दुर्घटनाग्रस्त हो गए जब साक्षी जावा मारुति एसएक्स4 केए-03-एमएम-8646 चला रही थी । एक यात्री अर्थात् श्रीमती लक्ष्मी गणपति, जो आटो से यात्रा कर रही थी, को क्षतियां पहुंचीं और उसे उपचार के लिए संतोष अस्पताल में भर्ती कराया गया । साक्षी जावा, अपीलार्थी सं. 2, ने कथित रूप से क्षतिग्रस्त के उपचार पर आया अस्पताल का समस्त व्यय संदत्त किया था और क्षतिग्रस्त और अपीलार्थियों के बीच मामले में कथित रूप से सौहार्दपूर्ण रूप से समझौता हो गया था और कोई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई गई थी । कांस्टेबल, जो दुर्घटना के समय मौजूद था, ने अपीलार्थियों को श्री कासिम, पुलिस निरीक्षक, पुलाकेशी नगर यातायात पुलिस थाना, बंगलौर शहर से मिलने का निदेश दिया । अपीलार्थियों का यह अभिकथन है कि जैसे ही उन्होंने श्री कासिम के कार्यालय में प्रवेश किया, उसने अभद्र रीति में बर्ताव किया । इसके अतिरिक्त, श्री कासिम ने अपीलार्थी सं. 2 को अपनी चलन अनुज्ञप्ति और अन्य दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए कहा । क्योंकि उस समय कोई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई गई थी, इसलिए अपीलार्थी सं. 2 ने पुलिस निरीक्षक से प्रश्न किया कि उसे इन दस्तावेजों को प्रस्तुत करने के लिए क्यों कहा जा रहा है । श्री कासिम ने इसके उत्तर में अपीलार्थी को, अभिकथित रूप से, यह कहते हुए धमकी दी कि यदि वह ऐसे ही बहस करती रही तो वह उसे न्यायालय में घसीटेगा और उसे उसके कार्यालय से भी बाहर फेंक दिया जाएगा । श्री कासिम के आदेश पर उसके उपपदीय ने अपीलार्थियों से कहा कि वे उन्हें उतावलेपन और लापरवाही से यान चलाने के आरोप में आरोपित कर रहे हैं ।

4. अपीलार्थियों ने उस रीति से व्यथित होकर जिसमें उनके साथ बर्ताव किया गया था, बंगलौर यातायात पुलिस के फेसबुक पृष्ठ पर श्री कासिम पर उनके बर्ताव को लेकर आरोपित करते हुए टीका-टिप्पणी की और प्रत्यर्थी पुलिस निरीक्षक द्वारा उनके साथ किए गए उत्पीड़न के बारे में एक ईमेल भी किया । प्रत्यर्थी सं. 2-पुलिस निरीक्षक ने अपीलार्थियों द्वारा फेसबुक पर टीका-टिप्पणी करने के संबंध में एक शिकायत फाइल की और उसके बाद तारीख 14 जून, 2013 को अपीलार्थियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 353 और 506 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई ।

5. अपीलार्थियों ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट और उनके विरुद्ध आरंभ की गई दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने की ईप्सा करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष 2014 की दांडिक याचिका सं. 252 इस आधार पर फाइल की कि शिकायत सोच-विचार के बाद फाइल की गई है । उच्च न्यायालय ने तारीख 24 अप्रैल, 2014 के अपने आदेश द्वारा यह मत व्यक्त करते हुए याचिका को खारिज कर दिया कि याचिका समयपूर्व फाइल की गई है । अपीलार्थियों ने इस विशेष इजाजत के द्वारा उपरोक्त आदेश की शुद्धता को चुनौती देने की ईप्सा की है ।

6. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि यातायात पुलिस के फेसबुक पृष्ठ पर टीका-टिप्पणी करना भारतीय दंड संहिता की धारा 353 और 506 के अधीन अपराध की कोटि में नहीं आता है और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट विधि की दृष्टि से संधार्य नहीं है । यह दलील दी गई कि बंगलौर यातायात पुलिस का फेसबुक पृष्ठ नागरिकों की शिकायतों की चर्चा करने और उन्हें उस पर चिपकाने के लिए एक सार्वजनिक मंच है और इसलिए फेसबुक पर की गई अपीलार्थियों की टीका-टिप्पणी से प्रथमदृष्ट्या अपराध गठित नहीं होता है और उच्च न्यायालय ने मामले का उचित परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन न करके गलती की है ।

7. इसके विपरीत, प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी की अपीलार्थियों ने यातायात पुलिस के फेसबुक पर आधारहीन अभिकथन करते हुए टीका-टिप्पणी करके शिकायतकर्ता और उसके कर्मचारिवृंद के लोक कर्तव्य में बाधा डाली है । यह दलील दी गई कि फेसबुक पृष्ठ पर ऐसी अनादर सूचक टीका-टिप्पणी करना भारतीय दंड संहिता की धारा 506 के अर्थांतर्गत 'धमकी देने' और 'आपराधिक अभित्रास' की कोटि में आता है और इससे शिकायतकर्ता की ख्याति तथा

सत्यनिष्ठा प्रभावित हुई है और उच्च न्यायालय ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट को अभिखंडित करने से इनकार करके ठीक किया है और आक्षेपित आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

8. हमने विरोधी दलीलों पर विचार किया है और आक्षेपित आदेश तथा अभिलेख पर की सामग्री का परिशीलन किया है ।

9. यह विधिक स्थिति सुस्थिर है कि जब किसी अभियोजन को आरंभिक प्रक्रम पर अभिखंडित किए जाने के लिए कहा जाता है, तो न्यायालय द्वारा लागू की जाने वाली कसौटी यह है कि जो अविवादग्रस्त अभिकथन किए गए हैं, क्या उनसे प्रथमदृष्ट्या अपराध स्थापित होता है या नहीं । न्यायालय के लिए यह भी आवश्यक है कि ऐसी किन्हीं विशेष विशिष्टताओं, जो किसी विशिष्ट मामले में प्रतीत हों, को भी यह विचार करने के लिए ध्यान में रखे कि क्या अभियोजन को जारी रखा जाना अनुज्ञात करना समीचीन और न्याय के हित में है या नहीं । जहां, न्यायालय की राय में, अंततोगत्वा दोषसिद्धि की गुंजाइश कम है और दांडिक अभियोजन जारी रखना अनुज्ञात करके किसी उपयोगी प्रयोजन की पूर्ति होने की संभावना नहीं है, तो न्यायालय कार्यवाहियों को अभिखंडित कर सकता है भले ही ऐसी कार्यवाहियां आरंभिक प्रक्रम पर ही हों ।

10. **तमिलनाडु राज्य** बनाम **थिरुकुरल पेरुमल**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट/दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 की व्याप्ति पर विचार करते हुए निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> " ....न्यायालयों द्वारा किसी प्रथम इत्तिला रिपोर्ट और दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने की शक्ति का प्रयोग यदाकदा करना चाहिए । वास्तव में, उच्च न्यायालय को अन्याय को रोकने के लिए, इस न्यायालय द्वारा विभिन्न निर्णयों में अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए [इस संबंध में हरियाणा राज्य **बनाम** भजन लाल, (1992) सप्ली. 1 एस. एस. सी. 335 वाले मामले के प्रति निर्देश करना उपयोगी होगा], प्रथम इत्तिला रिपोर्ट और दांडिक कार्यवाहियों को अभिखंडित करने की असाधारण और अंतर्निहित शक्ति है किंतु इस शक्ति का प्रयोग अति सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए । दांडिक विचारण की सामान्य प्रक्रिया को वस्तुतः आकस्मिक रीति में संक्षिप्त नहीं किया जा सकता है........ ।"

---

[1] (1995) 2 एस. सी. सी. 449.

11. जहां तक भारतीय दंड संहिता की धारा 353 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने के विवाद्यक का संबंध है, यह देखना होगा कि क्या यातायात पुलिस के फेसबुक पृष्ठ पर कोई टीका-टिप्पणी करने से इस धारा के अधीन दोषसिद्धि कायम रखने योग्य हो सकती है या नहीं । अभिलेख पर की सामग्री पर विचार करने से पूर्व, हम उपयोगी रूप में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 353 को निर्दिष्ट कर सकते हैं, जो निम्नलिखित प्रकार से है :–

> "**353. लोक सेवक को अपने कर्तव्य के निर्वहन से भयोपरत करने के लिए हमला या आपराधिक बल का प्रयोग –** जो कोई किसी ऐसे व्यक्ति पर, जो लोक सेवक हो, उस समय जब वैसे लोक सेवक के नाते वह उसके अपने कर्तव्य का पालन कर रहा हो, या इस आशय से कि उस व्यक्ति को वैसे लोक सेवक के नाते अपने कर्तव्य के निर्वहन से निवारित करे या भयोपरत करे या ऐसे लोक सेवक के नाते उसके अपने कर्तव्य के विधिपूर्ण निर्वहन में की गई या की जाने के लिए प्रयतित किसी बात के परिणामस्वरूप हमला करेगा या आपराधिक बल का प्रयोग करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडित किया जाएगा ।"

12. उपरोक्त उपबंध के वाचन से यह दर्शित होता है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 353 के अधीन अपराध के आवश्यक संघटक ये हैं कि अपराध के अभियुक्त व्यक्ति ने लोक सेवक पर ऐसे लोक सेवक के नाते उसके कर्तव्य के निर्वहन से निवारित करने या भयोपरत करने के आशय से हमला या आपराधिक बल का प्रयोग किया हो । अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन करने पर यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थियों द्वारा ऐसा अपराध कारित करने के लिए किसी बल का प्रयोग नहीं किया गया था । अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कुछ भी नहीं है कि अपीलार्थियों ने प्रत्यर्थियों पर या तो हमला किया हो या द्वितीय प्रत्यर्थी को अपने शासकीय कर्तव्य के निर्वहन से निवारित करने के लिए आपराधिक बल का प्रयोग किया हो । हमारे मत में, अविवादग्रस्त अभिकथनों पर विचार करने के पश्चात् भारतीय दंड संहिता की धारा 353 के अधीन अपराध के संघटक नहीं बनते हैं ।

13. भारतीय दंड संहिता की धारा 506 में आपराधिक अभित्रास के अपराध के लिए दंड विहित किया गया है । भारतीय दंड संहिता की धारा 503 में यथा परिभाषित 'आपराधिक अभित्रास' निम्नलिखित प्रकार से है :–

"**503. आपराधिक अभित्रास** – जो कोई किसी अन्य व्यक्ति के शरीर, ख्याति या संपत्ति को या किसी ऐसे व्यक्ति के शरीर या ख्याति को, जिससे कि वह व्यक्ति हितबद्ध हो, कोई क्षति कारित करने की धमकी उस अन्य व्यक्ति को इस आशय से देता है कि उसे संत्रास कारित किया जाए, या उससे ऐसी धमकी के निष्पादन का परिवर्जन करने के साधन स्वरूप कोई ऐसा कार्य कराया जाए, जिसे करने के लिए वह वैध रूप से आबद्ध न हो, या किसी ऐसे कार्य को करने का लोप कराया जाए, जिसे करने के लिए वह वैध रूप से हकदार हो, वह आपराधिक अभित्रास करता है ।

स्पष्टीकरण – किसी ऐसे मृत व्यक्ति की ख्याति को क्षति करने की धमकी जिससे वह व्यक्ति, जिसे धमकी दी गई है, हितबद्ध हो, इस धारा के अंतर्गत आता है ।"

14. 'आपराधिक अभित्रास' की परिभाषा के वाचन से यह उपदर्शित होता है कि किसी अन्य व्यक्ति को धमकी देने का कृत्य उसके शरीर, ख्याति या संपत्ति को, या किसी ऐसे व्यक्ति के शरीर या ख्याति को, जिससे वह व्यक्ति, जिसे धमकी दी गई है, हितबद्ध हो, कोई क्षति कारित करने के लिए किया गया हो और वह धमकी उस व्यक्ति को संत्रास कारित करने के आशय से दी गई हो या ऐसी धमकी कोई ऐसा कृत्य करने के लिए दी गई हो, जो वह अन्य व्यक्ति वैध रूप से करने के लिए आबद्ध नहीं हो या किसी ऐसे कार्य को करने का लोप करने के लिए होना चाहिए जिसे करने के लिए वह वैध रूप से हकदार हो ।

15. प्रस्तुत मामले में, अभिकथन यह है कि अपीलार्थियों ने शिकायतकर्ता के साथ गाली-गलौच की और द्वितीय प्रत्यर्थी को उसके पदीय कर्तव्यों का निर्वहन करने में बाधा उत्पन्न की और उसकी सत्यनिष्ठा को दूषित किया । यह विनिश्चय करने के लिए कि अभियुक्त ने जो कुछ कहा, क्या वह 'आपराधिक अभित्रास' के अर्थांतर्गत आता है या नहीं, उसके लिए अभियुक्त के आशय पर विचार किया जाना चाहिए । धमकी शिकायतकर्ता को संत्रास करने के आशय से होनी चाहिए जिससे कि वह व्यक्ति कोई कार्य करे या करने का लोप करे । संत्रास करने के किसी आशय के बिना केवल किन्हीं शब्दों की अभिव्यक्ति इस धारा को लागू करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी, अपितु अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए सामग्री प्रस्तुत की जानी चाहिए कि शिकायतकर्ता को संत्रास कारित करने का आशय है । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से यह प्रतीत

होता है कि अपीलार्थियों का द्वितीय प्रत्यर्थी के कर्तव्य के निर्वहन में बाधा उत्पन्न करके उसके मस्तिष्क में संत्रास कारित करने का कोई आशय नहीं था । जहां तक फेसबुक पर टीका-टिप्पणियां करने का संबंध है, यह प्रतीत होता है कि यह जनता की सहायता करने के लिए एक सार्वजनिक मंच है और फेसबुक पर कोई टीका-टिप्पणी करने के अपीलार्थियों के कार्य से भारतीय दंड संहिता की धारा 503 में उपबंधित आपराधिक अभित्रास के संघटक नहीं बन सकते हैं ।

16. निस्संदेह, न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए किसी आपराधिक मामले के अन्वेषण या विचारण में हस्तक्षेप करने में अत्यधिक सचेत रहना चाहिए और अन्वेषण को तब के सिवाय अवरुद्ध नहीं करना चाहिए जब तक वह किसी प्रकार के संदेह के परे इस बात से विश्वस्त न हो कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट से अपराध का कारित होना प्रकट नहीं होता है और दांडिक अभियोजन का जारी रहना न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग की कोटि में आएगा । जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, यातायात पुलिस द्वारा फेसबुक पर सृजित किया गया पृष्ठ जनता के लिए अपनी शिकायतें प्रकाशित करने हेतु एक मंच था । हमारे सुविचारित मत में, अपीलार्थियों ने इस सद्भावी विश्वास के अधीन ऑनलाइन टीका-टिप्पणी की थी कि यह अनुज्ञेय सीमाओं के भीतर है । जैसी कि पहले चर्चा की गई है, यहां तक कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में किए गए अविवादग्रस्त अभिकथनों पर विचार करने पर भी, हमारे मत में, अभिकथित अपराधों के संघटकों में से किसी संघटक का समाधान नहीं होता है । हमारा यह मत है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अपीलार्थियों के विरुद्ध न्यायालय की प्रक्रिया को जारी रखा जाना अनुज्ञात करना अनुचित होगा और परिणामस्वरूप उच्च न्यायालय का आदेश अपास्त किया जाना चाहिए ।

17. परिणामतः, 2014 की दांडिक याचिका सं. 252 में उच्च न्यायालय के तारीख 24 अप्रैल, 2014 के आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है और यह अपील मंजूर की जाती है तथा अपीलार्थियों के विरुद्ध दर्ज 2013 के अपराध सं. 174 में की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभिखंडित की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012

(2012 का अधिनियम संख्यांक 32)

[19 जून, 2012]

लैंगिक हमला, लैंगिक उत्पीड़न और अश्लील साहित्य के अपराधों से बालकों का संरक्षण करने और ऐसे अपराधों का विचारण करने के लिए विशेष न्यायालयों की स्थापना तथा उनसे संबंधित या आनुषंगिक विषयों के लिए उपबंध करने के लिए अधिनियम

संविधान के अनुच्छेद 15 का खंड (3), अन्य बातों के साथ राज्य को बालकों के लिए विशेष उपबंध करने के लिए सशक्त करता है ;

संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा अंगीकृत बालकों के अधिकारों से संबंधित अभिसमय को, जो बालक के सर्वोत्तम हितों को सुरक्षित करने के लिए सभी राज्य पक्षकारों द्वारा पालन किए जाने वाले मानकों को विहित करता है, भारत सरकार ने तारीख 11 दिसम्बर, 1992 को अंगीकृत किया है ;

बालक के उचित विकास के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उसकी निजता और गोपनीयता के अधिकार का सभी प्रकार से तथा बालकों को अंतर्वलित करने वाली न्याय प्रक्रिया के सभी प्रक्रमों के माध्यम से संरक्षित और सम्मानित किया जाए ;

यह अनिवार्य है कि विधि ऐसी रीति से प्रवर्तित हो कि बालक के अच्छे शारीरिक, भावात्मक, बौद्धिक और सामाजिक विकास को सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक प्रक्रम पर बालक के सर्वोत्तम हित और कल्याण पर सर्वोपरि महत्व के रूप में ध्यान दिया जाए ;

बालक के अधिकारों से संबंधित अभिसमय के राज्य पक्षकारों से निम्नलिखित का निवारण करने के लिए सभी समुचित राष्ट्रीय, द्विपक्षीय या बहुपक्षीय उपाय करना अपेक्षित है, –

(क) किसी विधिविरुद्ध लैंगिक क्रियाकलाप में लगाने के लिए किसी बालक को उत्प्रेरित या प्रपीड़न करना ;

(ख) वेश्यावृत्ति या अन्य विधिविरुद्ध लैंगिक व्यवसायों में बालकों

का शोषणात्मक उपयोग करना ;

(ग) अश्लील गतिविधियों और सामग्रियों में बालकों का शोषणात्मक उपयोग करना ;

बालकों के लैंगिक शोषण और लैंगिक दुरुपयोग जघन्य अपराध हैं, और उन पर प्रभावी रूप से कार्रवाई करने की आवश्यकता है ।

भारत गणराज्य के तिरसठवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जो केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे ।

2. परिभाषाएं – (1) इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमला" का वही अर्थ है जो धारा 5 में है ;

(ख) "गुरुतर लैंगिक हमला" का वही अर्थ है जो धारा 9 में है ;

(ग) "सशस्त्र बल या सुरक्षा बल" से संघ के सशस्त्र बल या अनुसूची में यथाविनिर्दिष्ट सुरक्षा बल या पुलिस बल अभिप्रेत है ;

(घ) "बालक" से ऐसा कोई व्यक्ति, अभिप्रेत है जिसकी आयु अठारह वर्ष से कम है ;

(ङ) "घरेलू संबंध" का वह अर्थ होगा जो घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 (2005 का 43) की धारा 2 के खंड (च) में है ;

(च) "प्रवेशन लैंगिक हमला" का वही अर्थ है जो धारा 3 में है ;

(छ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(ज) "धार्मिक संस्था" का वह अर्थ होगा जो धार्मिक संस्था (दुरुपयोग निवारण) अधिनियम, 1988 (1988 का 41) में है ;

(झ) "लैंगिक हमला" का वही अर्थ है जो धारा 7 में है ;

(ञ) "लैंगिक उत्पीड़न" का वही अर्थ है जो धारा 11 में है ;

(ट) "साझी गृहस्थी" से ऐसी गृहस्थी अभिप्रेत है, जहां अपराध से आरोपित व्यक्ति, बालक के साथ घरेलू नातेदारी में रहता है, या किसी समय पर रह चुका है ;

(ठ) "विशेष न्यायालय" से धारा 28 के अधीन उस रूप में अभिहित कोई न्यायालय अभिप्रेत है ;

(ड) "विशेष लोक अभियोजक" से धारा 32 के अधीन नियुक्त कोई अभियोजक अभिप्रेत है ।

(2) उन शब्दों और पदों के, जो इसमें प्रयुक्त हैं, और परिभाषित नहीं हैं किन्तु भारतीय दंड संहिता, 1860 (1860 का 45), दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2), किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 (2000 का 56) और सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 (2000 का 21) में परिभाषित हैं वही अर्थ होंगे जो उक्त संहिताओं या अधिनियमों में हैं ।

अध्याय 2

बालकों के विरुद्ध लैंगिक अपराध

क. – प्रवेशन लैंगिक हमला और उसके लिए दंड

3. प्रवेशन लैंगिक हमला – कोई व्यक्ति, "प्रवेशन लैंगिक हमला" करता है, यह कहा जाता है, यदि वह –

(क) अपना लिंग, किसी भी सीमा तक किसी बालक की योनि, मुंह, मूत्रमार्ग या गुदा में प्रवेश करता है या बालक से उसके साथ या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करवाता है ; या

(ख) किसी वस्तु या शरीर के किसी ऐसे भाग को, जो लिंग नहीं है, किसी सीमा तक बालक की योनि, मूत्रमार्ग या गुदा में

घुसेड़ता है या बालक से उसके साथ या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करवाता है ; या

(ग) बालक के शरीर के किसी भाग के साथ ऐसा अभिचालन करता है जिससे वह बालक की योनि, मूत्रमार्ग या गुदा या शरीर के किसी भाग में प्रवेश कर सके या बालक से उसके साथ या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करवाता है ; या

(घ) बालक के लिंग, योनि, गुदा या मूत्रमार्ग पर अपना मुंह लगाता है या ऐसे व्यक्ति या किसी अन्य व्यक्ति के साथ बालक से ऐसा करवाता है ।

4. प्रवेशन लैंगिक हमले के लिए दंड – जो कोई प्रवेशन लैंगिक हमला करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष से कम की नहीं होगी किन्तु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

ख. – गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमला और उसके लिए दंड

5. गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमला – (क) जो कोई, पुलिस अधिकारी होते हुए, किसी बालक पर –

(i) पुलिस थाने या ऐसे परिसरों की सीमाओं के भीतर जहां उसकी नियुक्ति की गई है ; या

(ii) किसी थाने के परिसरों में, चाहे उस पुलिस थाने में अवस्थित हैं या नहीं जिसमें उसकी नियुक्ति की गई है ; या

(iii) अपने कर्तव्यों के अनुक्रम में या अन्यथा ; या

(iv) जहां वह, पुलिस अधिकारी के रूप में ज्ञात हो या उसकी पहचान की गई हो,

प्रवेशन लैंगिक हमला करता है ; या

(ख) जो कोई सशस्त्र बल या सुरक्षा बल का सदस्य होते हुए बालक पर, –

(i) ऐसे क्षेत्र की सीमाओं के भीतर जिसमें वह व्यक्ति तैनात है ; या

(ii) बलों या सशस्त्र बलों की कमान के अधीन किन्हीं क्षेत्रों में ; या

(iii) अपने कर्तव्यों के अनुक्रम में या अन्यथा ; या

(iv) जहां उक्त व्यक्ति, सुरक्षा या सशस्त्र बलों के सदस्य के रूप में ज्ञात हो या उसकी पहचान की गई हो,

प्रवेशन लैंगिक हमला करता है ; या

(ग) जो कोई लोक सेवक होते हुए, किसी बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला करता है ; या

(घ) जो कोई किसी जेल, प्रतिप्रेषण गृह, संरक्षण गृह, संप्रेक्षण गृह या तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा या उसके अधीन स्थापित अभिरक्षा या देखरेख और संरक्षण के किसी अन्य स्थान का प्रबंध या कर्मचारिवृंद ऐसे जेल, प्रतिप्रेषण गृह, संप्रेक्षण गृह या अभिरक्षा या देखरेख और संरक्षण के अन्य स्थान पर रह रहे किसी बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला करता है ; या

(ङ) जो कोई, किसी अस्पताल, चाहे सरकारी या प्राइवेट हो, का प्रबंध या कर्मचारिवृंद होते हुए उस अस्पताल में किसी बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला करता है ; या

(च) जो कोई, किसी शैक्षणिक संस्था या धार्मिक संस्था का प्रबंध या कर्मचारिवृंद होते हुए उस संस्था में किसी बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला करता है ; या

(छ) जो कोई, किसी बालक पर सामूहिक प्रवेशन लैंगिक हमला करता है ।

स्पष्टीकरण – जहां किसी बालक पर, किसी समूह के एक या अधिक व्यक्तियों द्वारा उनके सामान्य आशय को अग्रसर करने में लैंगिक हमला किया गया है वहां ऐसे प्रत्येक व्यक्ति द्वारा इस खंड के अर्थांतर्गत सामूहिक प्रवेशन लैंगिक हमला किया जाना समझा जाएगा और ऐसा प्रत्येक व्यक्ति उस कृत्य के लिए वैसी ही रीति से दायी होगा मानो वह उसके द्वारा अकेले किया गया था ; या

(ज) जो कोई, किसी बालक पर घातक आयुध, अग्न्यायुध, गर्म पदार्थ या संक्षारक पदार्थ का प्रयोग करते हुए प्रवेशन लैंगिक हमला करता है ; या

(झ) जो कोई, किसी बालक को घोर उपहति कारित करते हुए या शारीरिक रूप से नुकसान और क्षति करते हुए, या उसके/उसकी जननेंद्रियों को क्षति करते हुए प्रवेशन लैंगिक हमला करता है ; या

(ञ) जो कोई, किसी बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला करता है जिससे, —

(i) बालक शारीरिक रूप से अशक्त हो जाता है या बालक मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम, 1987 (1987 का 14) की धारा 2 के खंड (ख) के अधीन यथापरिभाषित मानसिक रूप से रोगी हो जाता है या किसी प्रकार का ऐसा ह्रास कारित करता है जिससे बालक अस्थायी या स्थायी रूप से नियमित कार्य करने में अयोग्य हो जाता है ; या

(ii) बालिका की दशा में, वह लैंगिक हमले के परिणामस्वरूप, गर्भवती हो जाती है ;

(iii) बालक, मानव प्रतिरक्षाह्रास विषाणु या किसी ऐसे अन्य प्राणघातक रोग या संक्रमण से ग्रस्त हो जाता है जो बालक को शारीरिक रूप से अयोग्य, या नियमित कार्य करने में मानसिक रूप से अयोग्य करके अस्थाई या स्थाई रूप से ह्रास कर सकेगा ; या

(ट) जो कोई, बालक की मानसिक और शारीरिक अशक्तता का लाभ उठाते हुए बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला करता है ; या

(ठ) जो कोई, उसी बालक पर एक से अधिक बार या बार-बार प्रवेशन लैंगिक हमला करता है ; या

(ड) जो कोई, बारह वर्ष से कम आयु के किसी बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला करता है ; या

(ढ) जो कोई, बालक का रक्त या दत्तक या विवाह या संरक्षकता द्वारा या पोषण देखभाल करने वाला नातेदार या बालक के माता-पिता के साथ घरेलू संबंध रखते हुए या जो बालक के साथ साझी गृहस्थी में रहता है ऐसे बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला करता है ; या

(ण) जो कोई, बालक को सेवा प्रदान करने वाली किसी संस्था का स्वामी या प्रबंध या कर्मचारिवृंद होते हुए बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला करता है ; या

(त) जो कोई, किसी बालक के न्यासी या प्राधिकारी के पद पर होते हुए बालक की किसी संस्था या गृह या कहीं और, बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला करता है ; या

(थ) जो कोई, यह जानते हुए कि बालक गर्भ से है, बालक पर

प्रवेशन लैंगिक हमला करता है ; या

(द) जो कोई, बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला करता है और बालक की हत्या करने का प्रयत्न करता है ; या

(ध) जो कोई, सामुदायिक या पंथिक हिंसा के दौरान बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला करता है ; या

(न) जो कोई, बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला करता है और जो पूर्व में इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध करने के लिए या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन दंडनीय कोई लैंगिक अपराध किए जाने के लिए दोषसिद्ध किया गया है ; या

(प) जो कोई, बालक पर प्रवेशन लैंगिक हमला करता है और बालक को सार्वजनिक रूप से विवस्त्र करता है या नग्न करके प्रदर्शन करता है,

वह गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमला करता है, यह कहा जाता है ।

6. गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमले के लिए दंड – जो कोई, गुरुतर प्रवेशन लैंगिक हमला करेगा वह कठोर कारावास से जिसकी अवधि दस वर्ष से कम की नहीं होगी किन्तु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

ग. – लैंगिक हमला और उसके लिए दंड

7. लैंगिक हमला – जो कोई, लैंगिक आशय से बालक की योनि, लिंग, गुदा या स्तनों को स्पर्श करता है या बालक से ऐसे व्यक्ति या किसी अन्य व्यक्ति की योनि, लिंग, गुदा या स्तन का स्पर्श कराता है या लैंगिक आशय से ऐसा कोई अन्य कार्य करता है जिसमें प्रवेशन किए बिना शारीरिक संपर्क अंतर्ग्रस्त होता है, लैंगिक हमला करता है, यह कहा जाता है ।

8. लैंगिक हमले के लिए दंड – जो कोई, लैंगिक हमला करेगा वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से जिसकी अवधि तीन वर्ष से कम की नहीं होगी किन्तु जो पांच वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

घ. – गुरुतर लैंगिक हमला और उसके लिए दंड

9. गुरुतर लैंगिक हमला – (क) जो कोई, पुलिस अधिकारी होते हुए, किसी बालक पर –

(i) पुलिस थाने या ऐसे परिसरों की सीमाओं के भीतर जहां उसकी नियुक्ति की गई है ; या

(ii) किसी थाने के परिसरों में, चाहे उस पुलिस थाने में अवस्थित हैं या नहीं जिसमें उसकी नियुक्ति की गई है ; या

(iii) अपने कर्तव्यों के अनुक्रम में या अन्यथा ; या

(iv) जहां वह, पुलिस अधिकारी के रूप में ज्ञात हो या उसकी पहचान की गई हो, प्रवेशन लैंगिक हमला करता है ; या

(ख) जो कोई, सशस्त्र बल या सुरक्षा बल का सदस्य होते हुए बालक पर, –

(i) ऐसे क्षेत्र की सीमाओं के भीतर जिसमें वह व्यक्ति तैनात है ; या

(ii) सुरक्षा या सशस्त्र बलों की कमान के अधीन किन्हीं क्षेत्रों में ; या

(iii) अपने कर्तव्यों के अनुक्रम में या अन्यथा ; या

(iv) जहां वह, सुरक्षा या सशस्त्र बलों के सदस्य के रूप में ज्ञात हो या उसकी पहचान की गई हो,

लैंगिक हमला करता है ; या

(ग) जो कोई लोक सेवक होते हुए, किसी बालक पर लैंगिक हमला करता है ; या

(घ) जो कोई, किसी जेल, प्रतिप्रेषण गृह या संरक्षण गृह या संप्रेक्षण गृह या तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा या उसके अधीन स्थापित अभिरक्षा या देखरेख और संरक्षण के किसी अन्य स्थान का प्रबंध या कर्मचारिवृंद होते हुए, ऐसे जेल या प्रतिप्रेषण गृह या संरक्षण गृह या संप्रेक्षण गृह या अभिरक्षा या देखरेख और संरक्षण के अन्य स्थान पर रह रहे किसी बालक पर लैंगिक हमला करता है ; या

(ङ) जो कोई, किसी अस्पताल, चाहे सरकारी या प्राइवेट हो, का प्रबंध या कर्मचारिवृंद होते हुए उस अस्पताल में किसी बालक पर लैंगिक हमला करता है ; या

(च) जो कोई, किसी शैक्षणिक संस्था या धार्मिक संस्था का प्रबंध तंत्र या कर्मचारिवृंद होते हुए उस संस्था में के किसी बालक पर लैंगिक हमला करता है ; या

(छ) जो कोई, बालक पर सामूहिक लैंगिक हमला करता है ।

स्पष्टीकरण – जहां किसी बालक पर, किसी समूह के एक या अधिक व्यक्तियों द्वारा उनके सामान्य आशय को अग्रसर करने में लैंगिक हमला किया गया है वहां ऐसे प्रत्येक व्यक्ति द्वारा इस खंड के अर्थांतर्गत सामूहिक लैंगिक हमला किया जाना समझा जाएगा और ऐसा प्रत्येक व्यक्ति उस कृत्य के लिए वैसी ही रीति से दायी होगा मानो वह उसके द्वारा अकेले किया गया था ; या

(ज) जो कोई, बालक पर घातक आयुध, अग्न्यायुध, गर्म पदार्थ या संक्षारक पदार्थ का प्रयोग करते हुए लैंगिक हमला करता है ; या

(झ) जो कोई, किसी बालक को घोर उपहति कारित करते हुए या शारीरिक रूप से नुकसान और क्षति करते हुए, या उसके/उसकी जननेंद्रियों को क्षति करते हुए लैंगिक हमला करता है ; या

(ञ) जो कोई, किसी बालक पर लैंगिक हमला करता है जिससे –

(i) बालक शारीरिक रूप से अशक्त हो जाता है या बालक मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम, 1987 (1987 का 14) की धारा 2 के खंड (ठ) के अधीन यथापरिभाषित मानसिक रूप से रोगी हो जाता है या किसी प्रकार का ऐसा ह्रास कारित करता है जिससे बालक अस्थायी या स्थायी रूप से नियमित कार्य करने में अयोग्य हो जाता है ; या

(ii) बालक, मानव प्रतिरक्षाह्रास विषाणु या किसी ऐसे अन्य प्राणघातक रोग या संक्रमण से ग्रस्त हो जाता है जो बालक को शारीरिक रूप से अयोग्य, या नियमित कार्य करने में मानसिक रूप से अयोग्य करके अस्थायी या स्थायी रूप से ह्रास कर सकेगा ; या

(ट) जो कोई, बालक की मानसिक और शारीरिक अशक्तता का लाभ उठाते हुए बालक पर लैंगिक हमला करता है ; या

(ठ) जो कोई, बालक पर एक से अधिक बार या बार-बार लैंगिक हमला करता है ; या

(ड) जो कोई, बारह वर्ष से कम आयु के किसी बालक पर लैंगिक हमला करता है ; या

(ढ) जो कोई, बालक का रक्त या दत्तक या विवाह या संरक्षकता

द्वारा या पोषण देखभाल करने वाला नातेदार या बालक के माता-पिता के साथ घरेलू संबंध रखते हुए या जो बालक के साथ साझी गृहस्थी में रहता है, ऐसे बालक पर लैंगिक हमला करता है ; या

(ण) जो कोई, बालक को सेवा प्रदान करने वाली किसी संस्था का स्वामी या प्रबंध या कर्मचारिवृंद होते हुए बालक पर लैंगिक हमला करता है ; या

(त) जो कोई, किसी बालक के न्यासी या प्राधिकारी के पद पर होते हुए, बालक की किसी संस्था या गृह में या कहीं और, बालक पर लैंगिक हमला करता है ; या

(थ) जो कोई, यह जानते हुए कि बालक गर्भ से है, बालक पर लैंगिक हमला करता है ; या

(द) जो कोई, बालक पर लैंगिक हमला करता है और बालक की हत्या करने का प्रयत्न करता है ; या

(ध) जो कोई, सामुदायिक या पंथिक हिंसा के दौरान बालक पर लैंगिक हमला करता है ; या

(न) जो कोई, बालक पर लैंगिक हमला करता है और जो पूर्व में इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध करने के लिए या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन दंडनीय कोई लैंगिक अपराध किए जाने के लिए दोषसिद्ध किया गया है ; या

(प) जो कोई, बालक पर लैंगिक हमला करता है और बालक को सार्वजनिक रूप से विवस्त्र करता है या नग्न करके प्रदर्शन करता है,

वह गुरुतर लैंगिक हमला करता है, यह कहा जाता है ।

10. गुरुतर लैंगिक हमले के लिए दंड – जो कोई, गुरुतर लैंगिक हमला करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से जिसकी अवधि पांच वर्ष से कम की नहीं होगी किन्तु जो सात वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

ङ. – लैंगिक उत्पीड़न और उसके लिए दंड

11. लैंगिक उत्पीड़न – कोई व्यक्ति, किसी बालक पर लैंगिक उत्पीड़न करता है, यह कहा जाता है जब ऐसा व्यक्ति लैंगिक आशय से –

(i) कोई शब्द कहता है या कोई ध्वनि या अंगविक्षेप करता है या

कोई वस्तु या शरीर का भाग इस आशय के साथ प्रदर्शित करता है कि बालक द्वारा ऐसा शब्द या ध्वनि सुनी जाएगी या ऐसा अंगविक्षेप या वस्तु या शरीर का भाग देखा जाएगा ; या

(ii) किसी बालक को उसके शरीर या उसके शरीर का कोई भाग प्रदर्शित करवाता है जिससे उसको ऐसे व्यक्ति या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा देखा जा सके ;

(iii) अश्लील प्रयोजनों के लिए किसी प्ररूप या मीडिया में किसी बालक को कोई वस्तु दिखाता है ; या

(iv) बालक को या तो सीधे या इलेक्ट्रानिक, अंकीय या किसी अन्य साधनों के माध्यम से बार-बार या निरंतर पीछा करता है या देखता है या संपर्क करता है ; या

(v) बालक के शरीर के किसी भाग या लैंगिक कृत्य में बालक के अंतर्ग्रस्त होने का, इलेक्ट्रानिक, फिल्म या अंकीय या किसी अन्य पद्धति के माध्यम से वास्तविक या गढ़े गए चित्रण को मीडिया के किसी रूप में उपयोग करने की धमकी देता है ; या

(vi) अश्लील प्रयोजनों के लिए किसी बालक को प्रलोभन देता है या उसके लिए परितोषण देता है ।

स्पष्टीकरण – कोई प्रश्न, जिसमें "लैंगिक आशय" अंतर्वलित है, तथ्य का प्रश्न होगा ।

12. लैंगिक उत्पीड़न के लिए दंड – जो कोई, किसी बालक पर लैंगिक उत्पीड़न करेगा वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

अध्याय 3

अश्लील प्रयोजनों के लिए बालक का उपयोग और उसके लिए दंड

13. अश्लील प्रयोजनों के लिए बालक का उपयोग – जो कोई, किसी बालक का, मीडिया के (जिसमें टेलीविजन चैनलों या इंटरनेट या कोई अन्य इलेक्ट्रानिक प्ररूप या मुद्रित प्ररूप द्वारा प्रसारित कार्यक्रम या विज्ञापन चाहे ऐसे कार्यक्रम या विज्ञापन का आशय व्यक्तिगत उपयोग या वितरण के लिए हो या नहीं, सम्मिलित हैं) किसी प्ररूप में ऐसे लैंगिक परितोषण के

प्रयोजनों के लिए उपयोग करता है, जिसमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं –

(क) किसी बालक की जननेंद्रियों का प्रतिदर्शन करना ;

(ख) किसी बालक का उपयोग वास्तविक या नकली लैंगिक कार्यों में (प्रवेशन के साथ या उसके बिना) करना ;

(ग) किसी बालक का अशोभनीय या अश्लीलतापूर्ण प्रतिदर्शन करना,

वह किसी बालक का अश्लील प्रयोजनों के लिए उपयोग करने के अपराध का दोषी होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए "किसी बालक का उपयोग" पद में अश्लील सामग्री को तैयार, उत्पादन, प्रस्थापन, पारेषण, प्रकाशन सुकर और वितरण करने के लिए मुद्रण, इलेक्ट्रानिक, कम्प्यूटर या किसी अन्य तकनीक के किसी माध्यम से किसी बालक को अंतर्वलित करना सम्मिलित है ।

14. अश्लील प्रयोजनों के लिए बालक के उपयोग के लिए दंड – (1) जो कोई, अश्लील प्रयोजनों के लिए किसी बालक या बालकों का उपयोग करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से जिसकी अवधि पांच वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा तथा दूसरे या पश्चात्‌वर्ती दोषसिद्धि की दशा में, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

(2) यदि अश्लील प्रयोजनों के लिए बालक का उपयोग करने वाला व्यक्ति धारा 3 में निर्दिष्ट किसी अपराध को, अश्लील कार्यों में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेकर करेगा, वह किसी भांति के कारावास से जिसकी अवधि दस वर्ष से कम नहीं होगी किंतु जो आजीवन कारावास तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

(3) यदि अश्लील प्रयोजनों के लिए बालक का उपयोग करने वाला व्यक्ति धारा 5 में निर्दिष्ट किसी अपराध को, अश्लील कार्यों में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेकर, करेगा, वह कठोर आजीवन कारावास से दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

(4) यदि अश्लील प्रयोजनों के लिए बालक का उपयोग करने वाला व्यक्ति धारा 7 में निर्दिष्ट किसी अपराध को, अश्लील कार्यों में प्रत्यक्ष रूप

से भाग लेकर करेगा, वह किसी भांति के कारावास से जिसकी अवधि छह वर्ष से कम नहीं होगी किंतु जो आठ वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

(5) यदि अश्लील प्रयोजनों के लिए बालक का उपयोग करने वाला व्यक्ति धारा 9 में निर्दिष्ट किसी अपराध को, अश्लील कार्यों में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेकर करेगा, वह किसी भांति के कारावास से जिसकी अवधि आठ वर्ष से कम नहीं होगी किंतु जो दस वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा ।

15. बालक को सम्मिलित करने वाली अश्लील सामग्री के भंडारकरण के लिए दंड – कोई व्यक्ति जो वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए बालक को सम्मिलित करते हुए किसी अश्लील सामग्री का किसी भी रूप में भंडारकरण करेगा, वह किसी भांति के कारावास से, जो तीन वर्ष तक का हो सकेगा या जुर्माने से या दोनों से दंडित किया जाएगा ।

अध्याय 4

किसी अपराध का दुष्प्रेरण और उसको करने का प्रयत्न

16. किसी अपराध का दुष्प्रेरण – कोई व्यक्ति किसी अपराध के किए जाने का दुष्प्रेरण करता है, जो –

पहला – उस अपराध को करने के लिए किसी व्यक्ति को उकसाता है ; अथवा

दूसरा – उस अपराध को करने के लिए किसी षड्यंत्र में एक या अधिक अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के साथ सम्मिलित होता है, यदि उस षड्यंत्र के अनुसरण में, और उस अपराध को करने के उद्देश्य से, कोई कार्य या अवैध लोप घटित हो जाए ; अथवा

तीसरा – उस अपराध के लिए किए जाने में किसी कार्य या अवैध लोप द्वारा साशय सहायता करता है ।

स्पष्टीकरण 1 – कोई व्यक्ति जो जानबूझकर दुर्व्यपदेशन द्वारा या तात्विक तथ्य, जिसे प्रकट करने के लिए वह आबद्ध है, जानबूझकर छिपाने द्वारा, स्वेच्छया किसी अपराध का किया जाना कारित या उपाप्त करता है अथवा कारित या उपाप्त करने का प्रयत्न करता है, वह उस अपराध का किया जाना उकसाता है, यह कहा जाता है ।

स्पष्टीकरण 2 – जो कोई या तो किसी कार्य के किए जाने से पूर्व या किए जाने के समय, उस कार्य के किए जाने को सुकर बनाने के लिए कोई कार्य करता है और तद्द्वारा उसके किए जाने को सुकर बनाता है, वह उस कार्य के करने में सहायता करता है, यह कहा जाता है ।

स्पष्टीकरण 3 – जो कोई किसी बालक को इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के प्रयोजन के लिए धमकी या बल प्रयोग या प्रपीड़न के अन्य रूप, अपहरण, कपट, प्रवंचना, शक्ति या स्थिति के दुरुपयोग, भेद्यता या संदायों को देने या प्राप्त करने या अन्य व्यक्ति पर नियंत्रण रखने वाले किसी व्यक्ति की सहमति प्राप्त करने के लिए फायदों के माध्यम से नियोजित करता है, आश्रय देता है या उसे प्राप्त या परिवाहित करता है, उस कार्य के करने में सहायता करता है, यह कहा जाता है ।

17. दुष्प्रेरण के लिए दंड – जो कोई इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का दुष्प्रेरण करता है, यदि दुष्प्रेरित कार्य दुष्प्रेरण के परिणामस्वरूप किया जाता है, तो वह उस दंड से दंडित किया जाएगा जो उस अपराध के लिए उपबंधित है ।

स्पष्टीकरण – कोई कार्य या अपराध दुष्प्रेरण के परिणामस्वरूप किया गया तब कहा जाता है, जब वह उस उकसाहट के परिणामस्वरूप या उस षड्यंत्र के अनुसरण में या उस सहायता से किया जाता है, जिससे दुष्प्रेरण गठित होता है ।

18. किसी अपराध को करने के प्रयत्न के लिए दंड – जो कोई इस अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध को करने का प्रयत्न करेगा या किसी अपराध को करवाएगा और ऐसे प्रयत्न में अपराध करने हेतु कोई कार्य करेगा वह अपराध के लिए उपबंधित किसी भांति के ऐसे कारावास से, यथास्थिति, जिसकी अवधि आजीवन कारावास के आधे तक की या उस अपराध के लिए उपबंधित कारावास से जिसकी अवधि दीर्घतम अवधि के आधे तक की हो सकेगी या जुर्माने से या दोनों से दंडनीय होगा ।

क्रमशः.......